ISSN 2347-6591

मानव

अद्धवार्षिक सांदर्भिक विद्वत् समीक्षित शोध पत्रिका

वर्ष : 40 अंक : 1 – 2 (संयुक्तांक) जून–दिसम्बर, 2022

इथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी
(लखनऊ)

सीरियलस पब्लिकेशन्स
(दिल्ली)

मानव

अर्द्धवार्षिक सांदर्भिक विद्वत् समीक्षित शोध पत्रिका

'मानव', मानवविज्ञान एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों की हिंदी में राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित होने वाली अंतरानुशासनिक अकादमिक (पीयर रिव्यूड) पत्रिका है। इसमें संबंधित विषयों के शोधपत्र, आलेख, साहित्य समीक्षा, पुस्तक समीक्षा, शोध सूचनाएं आदि प्रकाशित होती हैं। यह पत्रिका 1973 से प्रकाशित हो रही अर्धवार्षिक पत्रिका है जिसे निकट भविष्य में त्रैमासिक छापने का विचार है। इसका प्रकाशन सीरियल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली द्वारा इथनोग्राफ़िक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ के लिए किया जाता है। प्रकाशन के इच्छुक अध्येता अपने शोधपत्र आदि की कम्प्यूटर टंकित सॉफ्ट–कॉपी यूनिकोड में 14 फॉण्ट साइज़ (संदर्भ ग्रंथ सूची ए.पी.ए. प्रणाली) में ई–मेल द्वारा तथा एक हार्ड कॉपी संपादक, मानव, इथनोग्राफ़िक एण्ड फ़ोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ के पते पर भेजने का कष्ट करें। (विस्तृत जानकारी पिछले कवर (अंदर) में दी गई है।) प्रकाशन के संबंध में संपादन मंडल लेखक को यथासमय सूचित करेगा।

© मानव, इथनोग्राफ़िक एण्ड फ़ोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ

संपादक : विनोद चंद्रा (लखनऊ), ई-मेल : vchandra009@gmail.com

सहायक संपादक :

राहुल पटेल (इलाहाबाद), ई-मेल : rahul.anthropologist@gmail.com
प्रमोद कुमार गुप्ता (लखनऊ), ई-मेल : pkguptalu@gmail.com
ज्योति सिडाना (कोटा), ई-मेल : drjyotisidana@gmail.com
नीतू अग्रवाल (लखनऊ), ई-मेल : neetu1501@gmail.com

प्रबंध संपादक : सुकांत कुमार चौधरी (लखनऊ), ई-मेल : sukantkchaudhury@gmail.com

संपादकीय सलाहकार :

नदीम हसनैन (लखनऊ)
आनंद कुमार (दिल्ली)
विवेक कुमार (दिल्ली)
एन.के. वैद्य (दिल्ली)

सदस्यता शुल्क

वार्षिक
व्यक्तिगत : रुपये 400 मात्र
छात्रों के लिए : रुपये 300 मात्र
संस्थागत : रुपये 600 मात्र
विदेश : डॉलर 50 मात्र

त्रैवार्षिक
व्यक्तिगत : रुपये 1000 मात्र
छात्रों के लिए : रुपये 700 मात्र

इथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी

एम.जी.46, सेक्टर-सी, अलीगंज, लखनऊ-226024 (भारत)
दूरभाष : 0522-2324410 ई-मेल : efcs.dnmajumdar@gmail.com
वेबसाइट : www.efcsindia.in

सीरियलस पब्लिकेशन्स

4830/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 (भारत)
दूरभाष : 011-23245225, 23259207, 23272135 ई-मेल : serial@mail.com
वेबसाइट : www.serialjournals.com

मानव

अर्द्धवार्षिक सांदर्भिक विद्वत् समीक्षित शोध पत्रिका

संपादक : विनोद चंद्रा (लखनऊ)

प्रबंध संपादक : सुकांत कुमार चौधरी (लखनऊ)

सहायक संपादक : राहुल पटेल, प्रमोद कुमार गुप्ता, ज्योति सिडाना, नीतू अग्रवाल

वर्ष : 40 अंक : 1 – 2 (संयुक्तांक) जून–दिसम्बर, 2022

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	अनुक्रम	लेखक	पृष्ठ संख्या
1	पॉलिमर प्लैनेट एवं प्लास्टिकीकरण : भारतीय संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	रीता सुभाशीष साहू	01
2	भारत में तिब्बती डायस्पोरा पर मीडिया का प्रभाव	सर्वेश कुमार राहुल पटेल	21
3	किन्नर समुदाय : समाजिक चुनौतियाँ एवं विधिक प्रावधान	दीपशिखा	29
4	श्रमजीवी गिरमिटिया मजदूरों की दास्तानः एक सारगर्भित विवेचन	अनिल कुमार देवी प्रसाद	35
5	जनजातियों की तत्वदृष्टि एवं जीवन दृष्टि के एकीकरण में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका	सुचित्रा शर्मा मंगल शर्मा	47
6	संत रज्जब की सामाजिक विरासत : समाजशास्त्रीय पाठ	विमल कुमार लहरी	56
7	ग्रामीण समुदाय के स्वास्थ्य व्यवहार का अध्ययन : एक साहित्यिक समीक्षा	सीताराम प्रशांत खत्री	66
8	शहरी गरीब : अवधारणा और मुद्दे	प्रखर आनंद सुमित सौरभ श्रीवास्तव	72
9	थारु जनजाति में शोक पर्व दीपावली का बदलता स्वरूप : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	रुपेश कुमार सिंह	81
10	आधुनिक परिप्रेक्ष्य में संस्कृत भाषा एवं संस्कृति की उपयोगिता	निर्भय शर्मा	89
11	जलवायु कार्रवाई में भारतीय युवाओं की भागीदारी : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	रजत पांडेय	94

12	भारत में परिधीय नगरों का विकास एवं उनका सामाजिक महत्त्व : भारत एवं फ्रांस के परिधीय नगरों के बीच तुलनात्मक अध्ययन	पवित्र गोस्वामी	110
13	सहरिया जनजातियों में भूमि अपवर्तन जनित आर्थिक वंचना के सामाजिक–सांस्कृतिक आधार	अरुण कुमार उपाध्याय	121
14	मेलघाट टाइगर रिजर्व क्षेत्र में कोरकू जनजाति के स्वास्थ्य और पोषण स्थिति पर एक अनुभवजन्य अध्ययन	अशोक कुमार यादव सर्वेंद्र यादव	135
15	औरंगाबाद की माटीकला का सांस्कृतिक एवं संज्ञानात्मक पक्ष : नृतत्वशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य	नीतू सिंह	143
16	मलिन बस्ती में महिलाओं की स्थितिः लखनऊ जिले के बालू अड्डा मलिन बस्ती का एक अनुभवजन्य अध्ययन	काव्या पाल	154
	संवाद		
17	नियमगिरि के संदर्भ में लोकतांत्रीकरण	कुमार आदित्य शैलेंद्र कुमार मिश्र	163

रीता[1], शुभाशीष साह[2]

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

पॉलिमर प्लैनेट एंव प्लास्टिकीकरण : भारतीय संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सार संक्षेप

आधुनिक उपभोक्तावाद एक विचारधारा है जोकि असिमित इच्छाओं एंव असंतोश की मनोवृत्ति द्वारा चिन्हित किया जाता है। इसके साथ उपभोग के समाधान को स्वयं में ही समाधान माना गया जो बाध्यता और इसी में लगातार अंत तक संलग्न रहने की जरूरत जैसा था। यहां से उपभोग वास्तव में उपयोगितावादी विचार से आगे निकल गई; एक ऐसी स्थिति जो दर्शकीय उपभोग ;बवदेचपबनवने बवदेनउचजपवदद्ध की अनुभूति कराता है। एक ऐसा समय था जब काष्ठ एंव धातु उपभोक्ता उत्पादों के उपयोग की प्राथमिक वस्तु थी। वर्तमान समय में सर्वव्यापी प्लास्टिक विश्व में सर्वाधिक तीव्र गति से वृद्धि करते बाजारों में से एक है जिसने ध्यानाकर्षण किया है; जिसमें से अधिकांश नकरात्मक हैं। प्लास्टिक सामग्री एक बुटिक पदार्थ के स्थान पर एक द्रव्य के रूप में प्रकट हुई है। यदि उपभोक्ता मांग औद्योगिक क्रांति की कुजी थी तो सामाजिक अनुकरण सामाजिक मांग का मार्ग प्रशस्त करता है। प्लास्टिक अपशिष्ट से लकेर रासायनिक लिचिंग तक प्रत्येक वस्तु पर ध्यान केंद्रित करते हुए प्लास्टिक के विरोध में तरह–तरह के पर्यावरण अभियान शुरू हो गए। यहां तक कि विविध पर्यावरण के लोगों ने इस वस्तु (प्लास्टिक) का अनसुरण करना शुरू कर दिया। महत्वपूर्ण भौतिकवाद का विश्लेषण पर्यावरण समाजशास्त्र में आलोचनात्मक बहस का विस्तार करता है। प्रथमत, यह दिखता है कि कैसे पदार्थ नैतिक एंव राजनितिक रूप से प्रभावकारी बन सकता है। द्वितीय, सामाजिक–पर्यावरणीय निम्नीकरण एंव प्रशासनिक, तकनीक–वैज्ञानिक, राजनैतिक और विधिक कार्यक्षेत्र में होने वाले वाद–विवाद और निर्णयो पर सामाजिक अशांति के मध्य के अंतर्संबंधों को दृढ़ता से निपटाता है। परिणामतः प्रस्तुत लखे एक आगमनात्मक अध्ययन रहा है; जैसा कि अनुभवजन्य तथ्य (इलाहाबाद में) एकत्रित किया गया था। तदुपरान्त वेब्लने, मॉस एंव बेक के जोखिम समाज के व्यापक परिप्रेक्ष्य में संगठित व्याख्या एंव विवेचना किया गया है।

सूचक शब्द : भौतिकवाद, उपभोक्तावाद, प्लास्टिक अपशिष्ट, जोखिम समाज, इलाहाबाद।

पृष्ठभूमि

आधुनिक समाज के लिए कई विशेषणों का प्रयोग किया गया है जिनमें से एक महत्वपूर्ण विशेषण 'उपभोक्तावाद' है। उपभोक्तावाद एक सामाजिक, आर्थिक, एंव सांस्कृतिक विचारधारा है जो वस्तुओं एवं सेवाओं के अधिग्रहण के लिए प्रोत्साहित करती है। चूंकि मानव–जीवन आवश्यकताओं (needs) से घिरा हुआ है जिस कारण आवश्यकता एवं उपभोग (consumption) में

[1]पीएचडी शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.) –211002, ईमेलः singhrita084@gmail.com
[2]सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.) –211002, ईमेलः sahoo79@gmail.com
[3]अनुरूपी लेखक (Corresponding Author).

एक गहन संबंध है। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्तुओं का उपभोग करता है इसलिए उसे उपभोक्ता (consumer) कहा जाता है। बीसवीं शताब्दी के बाद से उपभोग (भौतिक संस्कृति) ने सामाजिक अभिकर्ता का एक महत्वपूर्ण स्वरूप प्राप्त कर लिया है जिसने सामाजिक पहचान एवं सामाजिक संरचनाओं की परिभाषा में योगदान दिया है। सामाजिक जीवन में भौतिक संस्कृति की भूमिका के साथ एक अंतर्संबंध है। इसके अंतर्गत एक केंद्रीय सिद्धान्त यह है कि रोजमर्रा की जिंदगी में भौतिक संस्कृति और सामाजिक संबंध पारस्परिक रूप से गठित होते हैं (मिलर, 1987)। इसी संदर्भ में गिडंसे (1987) एंव बोर्डियो (1973) का विचार है कि, सांस्कृतिक वस्तुओं का उत्पादन समय के निरंतर प्रवाह में लोगो द्वारा गठित किया जाता है। वस्तु का निर्माण एवं उनका दैनिक उपयोग दोनों ही स्थिति सामाजिक प्रथाओं (social practices) के संदर्भ में होते हैं। लेकिन हमें सदैव याद रखना चाहिए कि जहां एक ओर उपभोग प्रत्येक समाज में व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है वहीं उपभोक्ता की मनोदशा 'उपभोक्तावाद' एक सामाजिक समस्या भी है जो वैयक्तिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में विभिन्न प्रकार के दुष्प्रकार्यों को जन्म दे रही है। एक समस्या के रूप में उपभोक्तावाद को उद्घाटित करने से पहले 'उपभोग' एंव 'उपभोक्ता' के अर्थ तथा इनसे संबंधित प्रवृत्तियों को समझना आवश्यक है। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में उपभोग का अर्थ सामाजिक मूल्यों, सांस्कृतिक मान्यताओं एवं विशेषताओं के अनुसार कुछ विशेष वस्तुओं अथवा पदार्थों का उपयोग करने की प्रवृत्ति से लगाया जाता है।

अपशिष्ट की अवधारणा

अपशिष्ट से तात्पर्य उन अनुपयोगी पदार्थों से है जो किसी भी प्रक्रम के अंत में प्राप्त होते हैं या फिर जिन्हें उपयोग में लेने के बाद मानव द्वारा अनुपयोगी मानकर फेंक दिया जाता हैं। यदि शाब्दिक अर्थ कि बात करें तो अपशिष्ट 'अवांछित' और 'अनुपयोगी सामग्री' को इंगित करता है। अपशिष्ट को मुख्य रूप से ठोस अपशिष्ट (solid waste) के रूप मे ं माना जाता है। अपशिष्ट को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। जैव निम्नीकरणीय अपशिष्ट **(Biodegradable waste)** कोई भी कार्बनिक द्रव्य जिनका जैविक प्रक्रम द्वारा अपघटन हो जाता है, जैव निम्नीकरणीय पदार्थ कहलाते है। जैसे–फल एवं सब्जी के छिलके, पेड़–पौधों की पत्तियां, कागज इत्यादि। अजैव निम्नीकरणीय अपशिष्ट **(Non-Biodegradable waste)** वे पदार्थ जिनका जैविक प्रक्रम द्वारा अपघटन नहीं होता है, अजैव निम्नीकरणीय पदार्थ कहलाते है। जैसे–प्लास्टिक, कांच मेटल आदि। प्रस्तुत लेख मुख्यतः अजैव निम्नीकरणीय अपशिष्ट (प्लास्टिक अपशिष्ट) पर आधारित है।

सामाजिक अनुसंधान के विषय वस्तु के रूप में अपशिष्ट

पर्यावरण समाजशास्त्र व्यापक अनुशासन का एक उपक्षेत्र है जिसमें समाज एवं पर्यावरण के बीच संबंधो पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। प्रस्तुत लेख में मुख्य रूप से प्लास्टिक अपशिष्ट से जुड़े मुद्दे का समाजशास्त्रीय संदर्भ में अध्ययन किया गया है जोकि पर्यावरण और समाज से जुड़े विषय का एक मुख्य उदाहरण है। चूंकि समाज संरचनात्मक है अर्थात् अपने विशिष्ट रूप में वह क्रमवार तथा नियमित है। जिस सामाजिक वातावरण में हम रहते हैं वह मात्र कुछ क्रियाओं एंव प्रघटनाओं का मिश्रण नहीं है बल्कि एक प्रकार से 'समाज एंव पर्यावरण' के अंतःक्रिया एंव संबंध में अंतर्निहित प्रतिमान है। सामान्यतः इसमें पर्यावरणीय समस्याओं के सामाजिक कारक,

सामाजिक प्रभाव और समस्याओं को हल करने के प्रयासों के अध्ययन पर बल देते है। अध्ययन में इस तरह के मुद्दों के विश्लेषण के लिए शास्त्रीय सिद्धांत की ओर ध्यान केंद्रित किया गया है। समाजशास्त्री जैसे–वेबर, मार्क्स, दुर्खीम जिन्होनें मानव समाज और प्राकृतिक समाज के बीच संबंधों को ऐतिहासिक परिवर्तन के केन्द्र के रूप में देखा। वास्तव में 19वीं शताब्दी के सामाजिक सिद्धांत इस बात से अधिक चिंतित थे कि कैसे आधुनिक समाज में उद्योग ने पर्यावरणीय गिरावट को जन्म दिया है। दुर्खीम (1895) का तर्क है कि सामाजिक तथ्य सामाजिक परिस्थतियों से अत्यधिक घनिष्ठ रूप से संबंधित है और सामाजिक परिस्थितियां समय–समय पर बदलती रहती हैं। इस कारण सामाजिक तथ्यों के स्वरूप में भी परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है। लेवी स्ट्रेस (1963) के अनुसार, चीजें (things) संरचनात्मक विरोधों को पुनः उत्पन्न करती है, जिससे समाज के लोगों के लिए सटीक प्रतिकिया सक्षम होती है। संरचनावाद में मस्तिष्क वस्तु पर हावी होती है अतः भौतिक संस्कृति संज्ञानात्मक एंव मानसिक संरचनाओं की सार्वभौमिक रूपरेखा के एक परिशिष्ट से अधिक नहीं हैं।

वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति में वे उत्पादक सफल हो रहें हैं जो व्यक्तियों की बदलती जरूरतों एंव मनोवृत्तियों को समझकर वस्तुओं का उत्पादन कर रहे हैं। इसी का परिणाम है कि उपभोग की सामान्य आवश्यकता ने धीरे–धीरे उपभोक्तावाद का स्वरूप ग्रहण कर लिया है जिससे प्रदर्शनवाद भी निरंतर बढ़ रहा है। इस प्रकार उत्पन्न उपभोक्तावादी संस्कृति से उपभोक्तावाद एक समस्या के रूप में उभरा है जिसका एक मुख्य उदाहरण अपशिष्ट है। जैसे–जैसे मानव सभ्यता का विकास हो रहा है वैसे–वैसे पर्यावरण में प्रदूषण की मात्रा बढती जा रही है। इसे बढ़ाने की प्रक्रिया में मानव के क्रियाकलाप और उनकी जीवन शैली काफी हद तक जिम्मेदार है। वर्तमान समय में उपभोक्तावाद के कारण ऐसी वस्तुओं को प्रोत्साहन मिल रहा है जिनसे प्रदूषण एंव अपशिष्ट तेजी से बढ़ रहा है, प्लास्टिक से बनी वस्तुयें इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण है। प्लास्टिक आधुनिक समाज में एक महत्वपूर्ण सामग्री बन गया है। जिसके उपभोग का संबंध सामाजिक, आर्थिक एंव सांस्कृतिक विकास से जुड़ा है। सामाजिक परिदृश्य से यह स्पष्ट रूप से विदित हो रहा है कि प्लास्टिक उपभोग निरंतर बढ़ रहा है। प्लास्टिक उपभोग से समाज में सामाजिक प्रतिस्पर्धा का ही विकास नहीं हों रहा अपितु इससे समस्याओं का भी जन्म हो रहा है जैसे–प्लास्टिक अपशिष्ट। इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती है, पहली यह कि प्लास्टिक उपभोग किसी न किसी प्रकार से लाभकारी साबित हुआ/हो रहा है। दूसरी यह कि इसका समाज पर दुष्प्रभाव भी बना हुआ है।

सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

वर्तमान सामाजिक संरचना में उपभोक्तावाद एक प्रकार का दृष्टिकोण है जिसके अंतर्गत सामाजिक एंव आर्थिक जीवन का संचालन उपभोक्ताओं के लाभ के लिए किया जाता है। ऐसे उपभोग को अमेरिकी अर्थाास्त्री थर्स्टेन वेब्लेन (1953) के शब्दों में दर्शकीय उपभोग (conspicuous consumption) कहा जाता है। जिसके अंतर्गत व्यक्ति/समाज अधिक से अधिक वस्तुओं का प्रयोग लोकोपयोगी एंव रचनात्मक कार्यों की अपेक्षा ऐसे कार्यों में करते हैं जिससे उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हो। विश्व में भौतिक वस्तुओं के प्रति व्यवस्थित रूचि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में व्यक्त की गयी थी। उस समय उत्पादन के औद्योगिक साधनों ने बड़े पैमाने पर उपभोक्ता उत्पादों की एक श्रृंखला प्रदान करना शुरू किया। सभ्यता के विकास के साथ–साथ

मनुष्य ने कई नये आविष्कार किए हैं जिससे औद्योगिकीकरण एंव नगरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है जिसके साथ अनपेक्षित तथा विचारहीन क्षति संबधी पर्यावरणीय मुद्दे भी उजागर हुए हैं। इससे उत्पन्न स्थिति को ''जोखिम समाज'' कहा जा सकता है। उल्रिच बेक (1992) का मानना है की प्रारंभिक अवस्था के साथ औद्योगिक समाज जुड़ा हुआ था जबकि नई उत्पन्न आधुनिकता को ''जोखिम समाज'' (रिस्क सोसाइटी) कहना उचित है। इस संदर्भ में वस्तु भौतिक संस्कृति तक ही सिमित नहीं होनी चाहिए बल्कि इसमें व्यक्ति के बड़े पैमाने पर उत्पादित वस्तुओं के संबंध, खरीदारी की अनुभवों की सर्वव्यापकता, पर्यावरण प्रदूषण एंव विशिष्ट रूप से पारिस्थितिकी शामिल हो। इसके अलावा वर्तमान अध्ययन की रूपरेखा मार्शल मॉस (1925) के लेख 'द गिफ्ट' की ओर ध्यान आकर्षित करती है। तथ्य है कि समाज में गिफ्ट अनिवार्य है और एक बार में कई संस्थायें इससे जुड़ी होती हैं; ऐतिहासिक, राजनितिक, आर्थिक एंव नैतिक संस्थान। अतः यह उत्पादन एंव उपभोग के एक निश्चित तरीके को प्रोत्साहित करता है, वर्गों का निर्माण करता है एंव लोगों के रोजमर्रा की जीवनशैली को प्रभावित करता है। इसलिए मार्शल मॉस के अनुसार गिफ्ट को ''टोटल सोशल फैक्ट'' के रूप मे समझा जा सकता है। अतएव प्लास्टिक से सम्बन्धित मुद्दे को भी टोटल सोशल फैक्ट के रूप में माना जा सकता है क्योंकि यह समाज के कई तत्वों (भाक्ति, संस्कृति, प्रौद्योगिकी) एंव संस्थानों को प्रभावित करता है।

भारत में प्लास्टिक अपशिष्टः कुछ तथ्य

बढ़ते औद्योगिकरण ने प्लास्टिक को जीवन का अविभाज्य अंग बना दिया है। भारतीय शहरों में ठोस अपशिष्ट की वार्षिक मात्रा 1947 में 6 मिलियन टन से बढ़कर 1997 में 48 मिलियन टन हो गयी, जिसकी वार्षिक वृद्धि दर 4.25 प्रतिशत है और इसके 2047 तक 300 मिलियन बढ़ने की उम्मीद है (CPCB, 2004)। प्लास्टिक सूचना रिपार्टे (2017) के अनुसार, यह अनुमान है कि भारत में प्रतिवर्ष लगभग 12.8 मिलियन टन की खपत होती है, जिसमें से लगभग 5 मिलियन टन हर साल अपशिष्ट के रूप में उत्पन्न किया जाता है। इससे प्रतिदिन लगभग 25,000 टन प्लास्टिक अपशिष्ट उत्पन्न होता है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड नई दिल्ली के अनुसार, उत्पन्न अपशिष्ट में से लगभग 94 प्रतिशत थर्मोप्लास्टिक है, जैसे–पॉलिएथिलीन टरे फ्थेलेट (पीईटी) और पीवीसी जो रिसाइकिल करने योग्य हैं। शेष थर्मोसेट एंव प्लास्टिक की अन्य श्रेणियां जैसे–शीट मोल्डिंग कम्पाउंड, फाइबर प्रबलित प्लास्टिक और मल्टीलेयर थर्मोकोल जो गैर–पुनर्नविनीकरण योग्य है।

प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन नियम 2016 के कार्वान्वयन रिपोर्ट के अनुसार देश भर में उत्पन्न प्लास्टिक अपशिष्ट का लगभग आधा भाग महाराष्ट्र एंव गुजरात से आता है।

भारत के शीर्ष 5 प्लाास्टिक अपशिष्ट उत्पादक राज्य

स्रोतः वार्षिक रिपोर्ट, 2015–2016, सीपीसीबी,नईदिल्ली

चित्र 1.1

अध्ययन के उद्देश्य हैं: (1) इलाहाबाद में प्लास्टिक अपशिष्ट एंव प्रंबधंन अभ्यास (practice) का अन्वेषण; (2) प्लास्टिक अपशिष्ट प्रंबधंन अभ्यास को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान; (3) प्लास्टिक अपशिष्ट प्रंबधंन के संदर्भ में बने नीतिगत तंत्र का विश्लेषण। प्रस्तुत लेख के निम्नलिखित प्रश्न हैः (1) प्लास्टिक अपशिष्ट एंव प्रबंधन के बारे में विभिन्न संस्था के लोग (अर्थात् वैज्ञानिक, अधिकारी, मेडिकल प्रैक्टिशनर्स) कैसे समझते और चर्चा करते हैं?; (2) प्लास्टिक एंव इसके उपयोग से जुड़े जोखिमों, नैतिकता एंव विनियमों के बारे में विशेषज्ञों की क्या धारणायें हैं? एंव (3) इलाहाबाद में प्लास्टिक प्रदूषण के खिलाफ सरकार के उपाय (अर्थात् नीतियां एंव कार्यक्रम) कैसे और किस प्रकार से योगदान करते हैं?

पद्धति

प्रस्तुत लेख का अध्ययन आधार अन्वेषणात्मक एंव वर्णनात्मक शोध प्रारूप है। प्रस्तुत लेख प्लास्टिक एंव समाज से संम्बधित विषय–क्षेत्र की धारणा एंव ज्ञान के स्तर से जुड़ी जानकारी पर आधारित है। इलाहाबाद में अध्ययन के संबंध में निदर्शन चयन का आधार बहुस्तरीय यादृच्छिक निदर्शन एंव सुविधाजनक निदर्शन द्वारा किया गया। इसलिए जिन संस्थानों का चयन किया गया उसमें भी विभिन्न स्तर (तालिका 1.1) से (तालिका 1.5) इस प्रकार है। इस अध्ययन में उत्तरदाताओं की कुल संख्या 80 है जिसने इस अध्ययन के निदर्शन के आकार का गठन किया। कुल 80 उत्तरदाताओं में से 20 अधिकारी, 39 वैज्ञानिक एंव 21 मेडिकल प्रैक्टिशनर्स है।

तालिका 1.1 संस्थानों का वितरण

संस्था	संख्या	वैज्ञानिकों / सामाजिक वैज्ञानिकों / अधिकारियों / चिकित्सकों की संख्या
केंद्रीय विश्वविद्यालय (इवीवी)	1	13
सरकारी वित्त पोषित अनुसंधान संगठन (बीएसआई)	1	04
प्रौद्योगिकी संस्थान (एमएनएनआईटी)	1	19
राज्य विश्वविद्यालय (शुआट्स)	1	03
इलाहाबाद नगर निगम	1	20
सरकारी अस्पताल	3	09
निजी अस्पताल	4	12
कुल	**12**	**80**

स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2017–19.

तालिका 1.2 वैज्ञानिकों/सामाजिक वैज्ञानिकों की शैक्षणिक पृष्ठभूमि

संस्थान	संख्या
केमिकल इंजीनियरिगं	7
मैकेनिकल इंजीनियरिगं	5
केमिस्ट्री	6
मटेरियल साइंस	3
सिविल इंजीनियरिगं	3
एन्वायरमेटंल साइंस	3
फूड टेक्नोलॉजी	3
ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज	5
बॉटनी	4
कुल	**39**

स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2017–19.

क्षेत्रीय अध्ययन विभिन्न चरण एंव समय–अन्तराल में पूरा किया गया है। अध्ययन का प्रथम चरण दिसंबर 2018 से फरवरी 2019 है, द्वितीय चरण अगस्त–अक्टबूर 2019 तक एंव अध्ययन का चरण अंतिम चरण नवंबर 2021 में पूरा किया गया है। अध्ययन क्षेत्र इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) शहर में समय, संसाधनों एंव पहुंच के संदर्भ में व्यावहार्यता के उद्देश्य से संचालित किया गया है। अध्ययन के अंतर्गत साक्षात्कार मार्गदर्शिका के माध्यम से डाटा संग्रह किया गया। इस विभिन्न चरण के क्षेत्रीय अध्ययन के पूर्व इलाहाबाद में पायलट अध्ययन के माध्यम से लगभग 20 से 25 उत्तरदाताओं पर साक्षात्कार मार्गदर्शिका को पूर्व–परिक्षण किया गया था।

अध्ययन के लिए प्राथमिक डाटा एकत्र करने के लिए आमने–सामने की गहन साक्षात्कार तकनीक का इस्तेमाल किया गया। इसके अंतर्गत अर्ध–संरचित प्रश्नों को शामिल किया गया जिससे अध्ययन के उद्देश्य पर ध्यान केन्द्रित करते हुये परिवर्तन की अनुमति मिले। साक्षात्कार मौखिक आदान–प्रदान की एक तकनीक है बर्न्स (1997: 329)। यह सामान्यतः आमने–सामने होती है जिसमें एक साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता हैं। प्रस्तुत अध्ययन में इलाहाबाद नगर निगम एंव विभिन्न अस्पतालों में डाटा संग्रह के दौरान अवलोकन तकनीक का प्रयोग किया गया। अवलोकन का मुख्य उद्देश्य संस्थानों के दिन–प्रतिदिन की गतिविधियों का निरिक्षण करना था। द्वितीयक स्रोतों के संबधं में विभिन्न एकेडमिक पत्रिकाओं से साहित्य समिक्षा की गई है जैसे–विभिन्न सरकारी एजेंसी, मत्रांलयों एंव विभागों की वेबसाइट का उपयोग किया गया। पर्यावरण एंव वन मत्रांलय की वार्षिक रिपार्टे, आर्थिक सर्वेक्षण, प्लास्टिक अपशिष्ट एंव प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन पर डाटा एकत्रित करने के लिए नीतियों से संबधित दस्तावेज को शामिल किया गया।

तालिका 1.3 उत्तरदाताओं का प्रारूप

क्रमांक	सस्था	शैक्षणिक पृष्ठभूमि	संबोधित विषय
1.	बीएसआई, इलाहाबाद	टेक्सोनॉमी एंण्ड बायोडायवर्सिटी	सेफ्टी गाइडलाइन्स
2.	बीएसआई, इलाहाबाद	साइटोजेनेटिक एंण्ड प्लांट ब्रिडिंग	रिस्क एसेसमेंट
3.	बीएसआई, इलाहाबाद	एथनो बॉटनी एंण्ड इकोलॉजी	स्ट्रैटजी एंण्ड रिस्क मैनेजमेंट
4.	बीएसआई, इलाहाबाद	बॉटनी	एथिकल रिस्पॉसिबिलिटी
5.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	मटेरियल साइंस	प्लास्टिक रिस्क
6.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	मटेरियल साइंस	स्ट्रैटजी
7.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	मटेरियल साइंस	एन्वायरमेंटल इम्प्लीके ांस
8.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	एन्वायरमेंटल साइंस	प्लास्टिक रिस्क
9.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	एन्वायरमेंटल साइंस	प्लास्टिक पॉल्यूशन
10.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	एन्वायरमेंटल साइंस	टॉक्सिसिटी
11.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	फूड टेक्नोलॉजी	स्ट्रैटजी एंण्ड रिस्क मैनेजमेंट
12.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	फूड टेक्नोलॉजी	रेगुलेशंस
13.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	फूड टेक्नोलॉजी	प्लास्टिक रिस्क
14.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	केमिस्ट्री	प्लास्टिक रिस्क
15.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	केमिस्ट्री	रिस्क एसेसमेंट
16.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	केमिस्ट्री	रिस्क एसेसमेंट एंण्ड रिस्पॉसिबिलिटी
17.	इलाहाबाद वि वविद्यालय	केमिस्ट्री	टॉक्सिसिटी एंण्ड प्लास्टिक रिस्क
18.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	केमिकल इंजीनियरिंग	टॉक्सिसिटी एंण्ड प्लास्टिक रिस्क
19.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	केमिकल इंजीनियरिंग	3 आर (reduce, reuse & recycle)
20.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	केमिकल इंजीनियरिंग	स्ट्रैटजी
21.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	केमिकल इंजीनियरिंग	रेगुलेशंस
22.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	केमिकल इंजीनियरिंग	3 आर स्ट्रैटजी
23.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	केमिकल इंजीनियरिंग	स्ट्रैटजी एंण्ड रिस्क मैनेजमेंट
24.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	केमिकल इंजीनियरिंग	रेगूलेशंस
25.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	मैकेनिकल इंजीनियरिंग	रिस्क एसेसमेंट
26.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	मैकेनिकल इंजीनियरिंग	रेगूलेशंस
27.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	मैकेनिकल इंजीनियरिंग	स्ट्रैटजी रिस्क मैनेजमेंट
28.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	मैकेनिकल इंजीनियरिंग	3 आर स्ट्रैटजी
29.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	मैकेनिकल इंजीनियरिंग	3 आर स्ट्रैटजी प्लास्टिक पॉल्यूशन
30.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	केमिस्ट्री	टॉक्सिसिटी एंण्ड प्लास्टिक रिस्क
31.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	केमिस्ट्री	ऑपरेशन मैनेजमेंट
32.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	सिविल इंजीनियरिंग	रेगूलेशंस
33.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	सिविल इंजीनियरिंग	स्ट्रैटजी एंण्ड रिस्क मैनेजमेंट
34.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	सिविल इंजीनियरिंग	टॉक्सिसिटी एंण्ड प्लास्टिक रिस्क
35.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज	एथिक्स एंण्ड रिस्पॉसिबिलिटी
36.	एमएनएनआईटी, इलाहाबाद	ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज	एथिक्स एंण्ड रिस्पॉसिबिलिटी
37.	भ्याुआट्स, इलाहाबाद	ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज	एथिक्स एंण्ड रिस्पॉसिबिलिटी
38.	भ्याुआट्स, इलाहाबाद	ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज	अकाउन्टबिलिटी
39.	भ्याुआट्स, इलाहाबाद	ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज	3 आर स्ट्रैटजी

स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2017–19

तालिका 1.4 नगर निगम अधिकारियों का वितरण

पद	संख्या
सचिव, शहरी विकास	01
सचिव, नगर आयुक्त	01
सहायक आयुक्त	01
पर्यावरण निदेशक	01
उप पर्यावरण निदेशक	01
सहायक पर्यावरण निदेशक	01
पर्यावरण अभियंता	01
सहायक पर्यावरण अभियंता	01
जूनियर इंजीनियर	02
जोनल अधिकारी	01
उप जोनल अधिकारी	01
सिटी मिशन मैनेजर	01
महाप्रबंधक (जल कल विभाग)	01
निरीक्षण अधिकारी	01
कार्यालय अधीक्षक (OS)-2	01
विधि विभाग	01
खाद्य एंव सुरक्षा निरीक्षक	01
मुख्य स्वच्छता निरीक्षक	01
स्वच्छता निरीक्षक	01
कुल	20

स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2017–19

तालिका 1.5 चिकित्सा क्षेत्र का वितरण

क्र.सं.	चिकित्सा क्षेत्र	संख्या
1.	कमला नहेरू हॉस्पिटल (सरकारी अस्पताल)	3
2.	स्वरूपरानी नेहरू हॉस्पिटल (सरकारी अस्पताल)	3
3.	तेज बहादुर सप्रु हॉस्पिटल (सरकारी अस्पताल)	2
4.	साकेत हॉस्पिटल (निजी अस्पताल)	3
5.	नरायन स्वरूप हॉस्पिटल (निजी अस्पताल)	2
6.	मोहक हॉस्पिटल (निजी अस्पताल)	4
7.	आशुतोष हॉस्पिटल (निजी अस्पताल)	2
8.	अन्य	2
	कुल	21

स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2020–21.

उत्तरदाताओं की सामाजिक–जनसाख्यिकीय प्रोफाइल वैज्ञानिक

कुल 39 उत्तरदाताओं में से 4 महिला वैज्ञानिक एंव 35 पुरूष वैज्ञानिक शामिल थे। 39 वैज्ञानिकों में से 14 वैज्ञानिक 50 वर्ष से अधिक आयु के हैं और 25 लोग 50 वर्ष से नीचे आयु समूह के हैं।

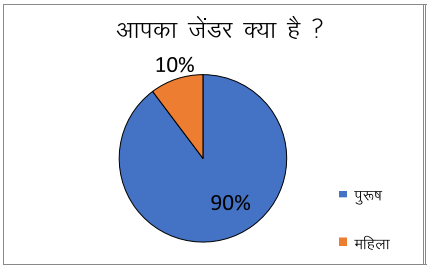

चार्ट 1.1 वैज्ञानिकों का जेंडर वर्गीकरण

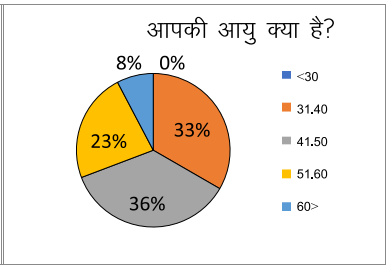

चार्ट 1.2 वैज्ञानिकों की आयु

मेडिकल प्रैक्टिशनर्स

कुल 21 उत्तरदाताओं में से 12 महिला मेडिकल प्रैक्टिशनर्स एंव 9 पुरूष मेडिकल प्रैक्टिशनर्स शामिल है। 21 मेडिकल प्रैक्टिशनर्स में से 10 लोग 41–50 वर्ष की आयु समूह से संबंधित हैं, 31–40 वर्ष की आयु समूह में 7 लोग हैं और 4 लोग 30 वर्ष से नीचे आयु समूह के हैं।

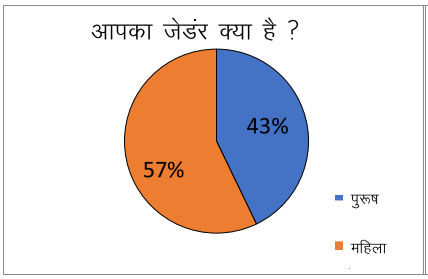

चार्ट 1.3 मेडिकल प्रैक्टिशनर्स का जेंडर वर्गीकरण

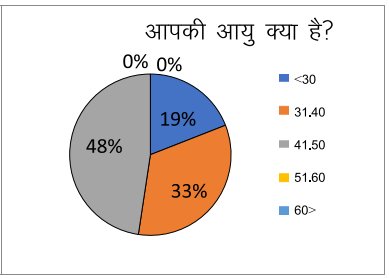

चार्ट 1.4 मेडिकल प्रैक्टिशनर्स की आयु

विश्लेषण एंव परिणाम

97 प्रतिशत वैज्ञानिकों का कहना है कि प्लास्टिक पारिस्थितिकी तत्रं के लिए खतरनाक है, परन्तु पिछले 15–20 वर्षों में इसका उपभोग कई गुना बढ़ा है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एक खाद्य प्रौद्योगिकीविद् ने बताया कि,

'प्लास्टिक बैग एवं पैकेजिंग से प्लास्टिक अपशिष्ट के रूप में पर्यावरणीय समस्यायें होती हैं। हम भी दशकों के सार्वजनिक स्वास्थ्य अनुसंधान से जानते हैं कि ''एक जिम्मेदार नागरिक'' होने के बारे में सांस्कृतिक विचार या अन्य विचारों के साथ परस्पर किया कर सकते हैं जो पर्यावरण के अनुकूल व्यवहार को कमजोर करते हैं।'

सैम हिग्गीबॉटम यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एण्ड साइसेसं स्थित एक वैज्ञानिक का मत है कि;

'एक तरफ प्लास्टिक की थैलियों पर प्रतिबंध और बायोडिग्रडेबल गैर विषैले शॉपिंग बैग का उपयोग करने से हमारी कृषि को बचाया जा सकता है। दूसरी ओर वे नहीं सोचते कि प्लास्टिक बैग पर प्रतिबंध व्यवहारिक है। उन्हें लगता है कि हम लोगों को बेहतर डिस्पोजेबल तरीके के बारे में जागरूक करके अभी भी प्लास्टिक बैग का उपयोग कर सकते हैं।'

मोतीलाल नहेरू नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी इलाहाबाद, में एक रासायनिक वैज्ञानिक का तर्क है कि;

'वर्तमान में हम इतनी प्लास्टिक सामग्री बना रहें हैं कि प्लास्टिक अपशिष्ट से भरा एक अनुमानित अपशिष्ट ट्रक प्रति सेकेण्ड जमीन में प्रवेश कर रहा है। यह न केवल हमारे पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान पहुंचाता है बल्कि हमारे प्राकृतिक संसाधनों की भारी बर्बादी भी करता है। हालांकि प्लास्टिक सामग्री को प्रतिबंधित करने से समाज को इसका विकल्प प्रबंध करना मुश्किल होगा, पर इसके बारे में आवश्यक कदम उठाया जाना अब जरूरी है।'

सैम हिग्गीबॉटम यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एंण्ड साइंसेज के एक अन्य वैज्ञानिक का तर्क है कि;

'प्लास्टिक गैर बायोडिग्रडेबल है और यह मिट्टी में अत्यधिक अवधि तक रहता है जिससे कृषि क्षेत्रों को अकल्पनीय नुकसान होता है। जमीन में जहां प्लास्टिक रहते हैं वहां कृषि फसलें नहीं उग सकतीं क्योंकि प्लास्टिक कचरे के हमेशा मौजूद रहने के कारण उनकी जड़ें नहीं बढ़ सकतीं। कृषि पर प्लास्टिक सामग्री के कई प्रभाव है, जैसे मिट्टी की उर्वरता में कमी, नाइट्रोजन स्थिरीकरण में कमी, मिट्टी में पोषक तत्वों की भारी हानी आदि। प्लास्टिक अपशिष्ट के ये नकारात्मक प्रभाव वास्तव में मिट्टी की उर्वरता को काफी हद तक कम कर देतें है और इस प्रकार प्लास्टिक कृषि उत्पादन की बड़ी मात्रा को कम कर देता है।

अधिकांश वैज्ञानिकों (80 प्रतिशत) ने प्लास्टिक बैग के पुनः उपयोग की पुष्टि की है। 21 प्रतिशत वैज्ञानिकों ने पुष्टि की है कि वे प्लास्टिक को रिसायकल करने की कोशिश करते हैं (अधिकृत संगठन को देते हैं)। यह देखा गया है कि 69 प्रतिशत वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि उनके आवासीय क्षेत्रों में कूड़ेदान मौजूद हैं जबकि केवल 31 प्रतिशत ने उत्तर दिया है कि उनके आवासीय क्षेत्र में कूड़ेदान की व्यवस्था नहीं है। इससे पता चलता है कि शहर के अंतर्गत कुछ क्षेत्रों में कुड़ेदान की व्यवस्था है और कुछ क्षेत्रों में नहीं। अतः वर्तमान अध्ययन में लगभग 90 प्रतिशत वैज्ञानिक प्लास्टिक कचरे को लेकर काफी चिंतित थे।

तालिका 1.3 में दर्शाया गया है कि 31 प्रतिशत वैज्ञानिक खरीदारी के उद्देश्य से अपना बैग लाने के लिये सहमत हुये हैं, 43 प्रतिशत प्लास्टिक कचरे को कम करने के लिये 3 आर स्ट्रैटजी में विश्वास करते हैं, 12 प्रतिशत जागरूकता के साथ हैं और 8 प्रतिशत ने कहा कि प्लास्टिक बैग का उपयोग बंद किया जाना चाहिए। इसके अलावा 5 प्रतिशत वैज्ञानिकों का मानना है कि इसके उत्पादन पर रोक लगना चाहिए। इस तरह न ही प्लास्टिक उत्पादित होगा और न ही लोग उपयोग कर पायेंगें।

तालिका 1.6 चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े उत्तरदाताओं द्वारा जैव चिकित्सा अपशिष्ट संबधी जानकारी

विवरण	संख्या
जैव चिकित्सा अपशिष्ट की जानकारी	21
जैव चिकित्सा अपशिष्ट नियम की जानकारी	16
कलर कोडिंग (डस्टबिन) ज्ञान	18
अपशिष्ट पृथक्करण / स्थायी निपटान संबंधी जानकारी	18

स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2020–21.

60 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने जैव चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन के संबंध में संतोषजनक ज्ञान दिखाया। यदि तुलनात्मक रूप में देखें तो डॉक्टरों के बीच जैव चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन नियम के बारे में ज्ञान विशिष्ट रूप से बेहतर है। इसके अतिरिक्त नर्स, एंव अन्य मेडिकल कर्मचारी (क्रम में) हैं। लगभग 60 प्रतिशत लोग जैव चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन नियम के बारे में सुनते एवं जानते हैं। इसके अलावा केवल 40 प्रतिशत उत्तरदाता अपशिष्ट के पृथक्करण एंव कलर कोडिंग (डस्टबीन) के बारे में जानकारी रखते हैं।

एक निजी अस्पताल स्थित डॉक्टर के अनुसार, पिछले एक वर्ष से इस जैव चिकित्सा क्षेत्र में प्लास्टिक अपशिष्ट की मात्रा बढ़ी है। इसमें भी एकल प्रयोग, चाहे वह पर्सनल प्रोटेक्टिव इक्विपमेंट किट के रूप में हो या मास्क, दस्ताने या फिर फेस शिल्ड के रूप में हो, कोरोना के कारण आजकल बड़ी मात्रा में जैव चिकित्सा अपशिष्ट पैदा हो रहा है। वर्तमान में एकल प्रयोग वाले प्लास्टिक को कोरोना के प्रति सुरक्षा से जोड़ने की बात ने इसे सामाजिक व्यवस्था के लिए और भी दुष्प्रकार्य बना दिया है।

निजी अस्पताल स्थित डस्ट

सरकारी अस्पताल स्थित डस्ट

संकामक/ हानिकारक अपशिष्ट | दूषित प्लास्टिक अपशिष्ट | धातु एंव कांच संबधी अपशिष्ट | शारीरिक, रासायनिक, दवाइयों संबधित एंव प्रयोगशाला अपशिष्ट

चित्र 1–2
स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2020–21

चिकित्सा केंद्र स्थित उत्तरदाताओं के अनुसार इस श्रेणी में प्रतिदिन 30 से 40 किलो अपशिष्ट निकलता है, जिसमें से लगभग 30–35 प्रतिशत अपशिष्ट प्लास्टिक के होते हैं। लगभग 75 से 85 प्रतिशत चिकित्सीय अपशिष्ट उतना ही हानिकारक होता है जितना की अन्य नगरपालिका अपशिष्ट। बाकि 20 से 25 संक्रामक/हानिकारक होते हैं। इसी कारण से अपशिष्ट को वर्गीकृत करने की व्यवस्था लागू की गयी, जिसको कलर कोडिंग डस्टबिन कहते हैं। उपर दिये चित्रों में अपशिष्ट पृथक्करण अंतर देख सकते है। यदि अपशिष्ट संग्रहण की प्रक्रिया की बात करें तो निजी अस्पतालों में यह गंभीरता से किया जाता है, अपशिष्ट को पृथक करने के बाद उसको डिसइन्फेक्ट किया जाता है और स्टोर रूम में रख दिया जाता है। इसके बाद प्रतिदिन नगर निगम की गाड़ियों (फ्रेरा) द्वारा प्लांट (बसवार) तक पहुँचाया जाता है, जहां

पर अपशिष्ट को चैंबर में डालकर नष्ट कर दिया जाता है। सरकारी अस्पतालों से प्राप्त चित्र में साफ दिख रहा की पृथक्करण की व्यवस्थित प्रणाली नहीं हैं और वहां के कर्मचारियों का कहना है कि यहां भी नगर निगम की गाड़ियों (फ्रेरा) द्वारा ही अपशिष्ट को एकत्र किया जाता है।

'चिकित्सा के क्षेत्र में प्लास्टिक से बने सामग्री का उपयोग लंबे समय से किया गया है। परन्तु कोविड–19 महामारी की लहर में प्लास्टिक उद्योग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्लास्टिक ने मानव एंव वायरस के बीच एक सुरक्षात्मक अवरोध उत्पन्न किया है। किन्तु यह भी एक वास्तविकता है कि प्लास्टिक ने जीवन एंव पर्यावरण के लिए दुष्प्रकार्यों को भी जन्म दिया है।

स्वास्थ्य देखभाल क्षेत्र के खतरनाक अपशिष्ट के उपचार और निपटान की प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए बायोमेडिकल कचरे का प्रबंधन स्वास्थ्य कर्मचारियों की सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारियों में से एक है। बायोमेडिकल वेस्ट से संबंधित स्वास्थ्य खतरों के बारे में आम जनता को भी शिक्षित और जागरूक किया जाना चाहिए। अस्पताल का कचरा उन रोगियों और कर्मियों के लिए जोखिम है जो इन वेस्ट को संभालते हैं। इसके अलावा यह सार्वजनिक जीवन और पर्यावरण के लिए भी खतरा है। जैव चिकित्सा अपशिष्ट का सुरक्षित और प्रभावी प्रबंधन भी एक कानूनी आवश्यकता है। उचित अस्पताल अपशिष्ट प्रबंधन में जागरूकता की कमी का सामना करना पड़ रहा है। बायोमेडिकल वेस्ट का उचित संग्रह और पृथक्करण होना चाहिए। अपशिष्ट प्रबंधन योजना का सबसे महत्वपूर्ण घटक शिक्षा, प्रशिक्षण और अस्पताल के कर्मचारियों की लगातार प्रेरणा के माध्यम से एक प्रणाली और संस्कृति विकसित करना है।

अधिकारियों ने सूचित किया है कि शहर से 48018 किलो प्लास्टिक अपशिष्ट प्रतिदिन उत्पन्न होता है, जिसमें से उच्च मूल्य (high value) प्लास्टिक अपशिष्ट ragpickers (प्लास्टिक कचरा बिनने वाले) द्वारा ले जाया जाता है। लगभग 21628 किलो प्लास्टिक इलाहाबाद में स्थित बसवार प्रसंस्करण तक पहुंचाया जाता है। शेष बचे प्लास्टिक अपशिष्ट लोगों द्वारा सीधे खुले जगहों जला दिया जाता है या नालियों आदि में फेंक दिया जाता है।

तालिका 1.7 इलाहाबाद में प्लास्टिक अपशिष्ट उत्पादन

	इलाहाबाद नगर निगम द्वारा एकत्र किया प्लास्टिक अपशिष्ट	मात्रा
1.	इलाहाबाद नगर निगम द्वारा प्रतिदिन एकत्रित ठोस अपशिष्ट	617952 किलो
2.	कुल एकत्रित कचरे में प्लास्टिक का प्रतिशत	3.5%
3.	बसवार प्रसंस्करण (plant) में एकत्रित और प्राप्त प्लास्टिक कचरे की मात्रा	21628 किलो
4.	प्रतिदिन कुल प्लास्टिक अपशिष्ट उत्पादन	48018 किलो

स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2017–19.

इलाहाबाद नगर निगम के एक क्षेत्रीय अधिकारी ने स्वीकार किया कि;

'प्लास्टिक अपशिष्ट में घरों से निकलने वाले अपशिष्ट का सबसे बड़ा प्रतिशत है, जिसमें प्लास्टिक बैग (पॉलिथिन बैग), प्लास्टिक की बोतलें, प्लेट, बाल्टी, टूथब्रश आदि अपशिष्ट के रूप में शामिल हैं। तालिका 1.8 दर्शाता है कि 40 प्रतिशत प्लास्टिक अपशिष्ट घरों से एकत्र किया जाता है, 27 प्रतिशत सड़क के किनारे से, 9 प्रतिशत खाद्य पैकेजिंग, प्लास्टिक रैपर और पानी की बोतलों सहित होटल एंव रेस्तरां से एकत्र किया जाता है। इसके अलावा 13 प्रतिशत

अस्पतालों से एंव 2 प्रतिशत अन्य क्षेत्र जैसे कार्यालय और संस्थानों से एकत्रित किया जाता है।'

तालिका 1.8 इलाहाबाद में प्लास्टिक अपशिष्ट के स्रोत

विवरण	प्रतिशत
घरों से	40 प्रतिशत
सड़क के किनारे से	27 प्रतिशत
होटल एंव रेस्तरां से	9 प्रतिशत
बाजार से	9 प्रतिशत
अस्पताल से	13 प्रतिशत
अन्य	2 प्रतिशत
कुल	100

स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2017–19.

इलाहाबाद नगर निगम के एक अधिकारी ने बताया कि;

'प्लास्टिक अपशिष्ट कई तरह से समस्याएं पैदा करता है जिसमें नालों का बन्द होना, अस्वच्छ पर्यावरण परिस्थिति, पशु स्वास्थ्य का खराब होना, जल निकायों का प्रदूषित होना एवं कृषि भूमि को प्रभावित करना शामिल है।'

तालिका 1.9 में दर्शाया गया है कि लगभग 80 प्रतिशत अधिकारियों ने कहा कि शहर के अंतर्गत प्रतिदिन कचरा संग्रह किया जाता है, जबकि 20 प्रतिशत ने कहा कि कचरा दो दिनों में एक बार एकत्र किया जाता है।

तालिका 1.9 प्लास्टिक अपशिष्ट संग्रह की आवृत्ति

गतिविधी	उत्तरदाताओं का नबंर	प्रतिशत
प्रतिदिन	16	80 प्रतिशत
2 दिन में एक बार	4	20 प्रतिशत
सप्ताह में एक बार	0	0
15 दिन में एक बार	0	0
कोई संग्रह नहीं	0	0
कुल	20	100

स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2017–19.

जैसा कि तालिका 1.10 में दर्शाया गया है, अधिकारियों ने बताया है कि 70 प्रतिशत प्लास्टिक अपशिष्ट संग्रह गतिविधि नगर निगम के कर्मचारियों द्वारा नियंत्रित किया जाता है, 10 प्रतिशत नगर निगम के ठेकेदारों द्वारा और शेष 20 प्रतिशत निजी एजेंसी (इलाहाबाद अपशिष्ट प्रसंस्करण प्राइवेट लिमिटेड) द्वारा किया जाता है।

तालिका 1.10 प्लास्टिक अपशिष्ट संग्रहण सेवा

अपशिष्ट संग्रहण एजेसीं	प्रतिशत
नगर निगम कर्मचारी	70 प्रतिशत
नगर निगम के ठेकेदार	10 प्रतिशत
निवासी स्वयं	0
निजी एजेसीं	20 प्रतिशत
कोई व्यवस्था नहीं	0
कुल	100

स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2017–19.

इलाहाबाद नगर निगम में एक पर्यावरण अभियंता के अनुसार; नगर निगम व निजी एजेसीं द्वारा कूड़ा उठाया जाता है। निजी एजेसीं के अंतर्गत इलाहाबाद वेस्ट प्रोसेसिंग प्राइवेट लिमिटेड (AWP) है। हालांकि अधिकारियों का कहना है कूड़ा ज्यादातर नगर निगम द्वारा ही एकत्र किया जाता है; क्योंकि AWP अभी अपशिष्ट संग्रह में अधिक कुशल नहीं है क्योंकि AWP का कार्य क्षेत्र अभी सीमित है।

इलाहाबाद नगर निगम के एक निरिक्षक अधिकारी ने बताया किः

'इलाहाबाद शहर में प्रत्येक 3–4 महीने में इंस्पेक्शन होता है जिसमें प्रतिबंधित होने के बाद भी उपयोग किए जाने वाले प्लास्टिक सामग्री को जब्त कर लिया जाता है जिसकी मात्रा लगभग 1000 किलो होती है। यह कलेक्शन स्टॉकिस्ट, होलसेलर, रिटेलर और अन्य दुकानों जैसे–किराना स्टोर, सब्जी एंव फल विक्रेताओं से किया जाता है। इन एकत्रित प्लास्टिक सामग्री को नगर निगम द्वारा ठोस अपशिष्ट प्रसंस्करण में भेज दिया जाता है जो इलाहाबाद शहर से 14 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।'

इलाहाबाद नगर निगम (Management & Handling Rules, 2000) नियमों के अनुसार, रंग कोडिंग डिब्बों की व्यवस्था की जाती है, जैसे बायोडिग्रडेबल के लिए हरा और रिसायक्लिंग योग्य के लिए नीला। विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक को अलग–अलग करना महत्वपूर्ण है क्योंकि उन सभी का प्रसंस्करण तापमान अलग–अलग होता है

तालिका 1.11 प्लास्टिक कचरे को कम करने की संभावित रणनीतियाँ

विवरण	उत्तरदाताओं का नबंर	प्रतिशत
जन जागरूकता और भागीदारी	7	35 प्रतिशत
4R सिद्धांत	3	15 प्रतिशत
प्रतिबंध या टैक्स का समर्थन	4	20 प्रतिशत
उपभोग प्रवृत्ति कम करें	0	0 प्रतिशत
इस्तेमाल बंद करें	6	30 प्रतिशत
कुल	20	100

स्रोतः क्षेत्रीय डाटा, 2017–19.

35 प्रतिशत अधिकारी प्लास्टिक कचरे को कम करने के लिए जन जागरूकता और भागीदारी का समर्थन करते हैं। उनके लिए जन जागरूकता का निर्माण और लोगों का सहयोग हासिल करना निश्चित रूप से पर्यावरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। यह लागों को अपशिष्ट इकठ्ठा करने के लिए प्रोत्साहित करेगा, जिससे लोग नकरात्मक पर्यावरणीय प्रभाव को कम कर सकते हैं और स्थानीय पर्यावरण के रखरखाव की जिम्मेदारी ले सकते हैं। 15 प्रतिशत अधिकारी 4R सिद्धांत के समर्थन में है, 20 प्रतिशत अधिकारी कानूनी एंव विधिक नियमों के पक्ष में है जिसमें सिंगल यूज प्लास्टिक और पर्यावरण टैक्स शामिल है। 30 प्रतिशत अधिकारी कचरे को कम करने के लिए उपभोग प्रवृत्ति कोकम की सलाह देते हैं।

भारत में अपशिष्ट प्रबंधन नीतियों का विकास सर्वप्रथम अपशिष्ट का समुचित निस्तारण सुनिश्चित करने के लिए Hazardous Waste (Management – Handling) Rules, 1989 अधिसूचित किया गया।

तालिका 1.12 अपशिष्ट से संबंधित नियम एंव नीतियां

वर्ष	नियम	संकेत
1989	Hazardous Wastes (Management and Handling) Rules	इसमें 44 प्रक्रियाओं की एक सूची प्रदान की गई है जो खतरनाक अपशिष्ट के संग्रह, भंण्डारण, परिवहन, और निपटान से संबंधित विवरण प्रदान करती है।
1998	The Biomedical Waste (Management and Handling) Rules	स्वास्थ्य संस्थानों के लिए कानूनी बाध्यता है कि वे अस्पताल के कचरे के पृथक्करण, संग्रह और उपचार के उचित प्रबंधन की प्रक्रिया को सुनिश्चित करें।
2000	Municipal Solid Wastes (Management and Handling) Rules	इस नियम के तहत देश के सभी नगर निगम अधिकारियों को अपने–अपने अधिकार क्षेत्र में अपशिष्ट के प्रबंधन का निर्देश दिया गया, जिसमें संग्रह, भंण्डारण, परिवहन, उपचार एंव निपटान शामिल है।
2011	Plastic Waste Rules	यह नियम मुख्य रूप से प्लास्टिक बैग की मोटाई को नियमानुसार निर्दिष्ट करते हैं। इस नियम में उपभोक्ताओं, विकेताओं के लिए मुफ्त में कैरी बैग की अनुमति नहीं है। इस नियम के अनुसार, खाद्य पदार्थों को ले जाने या पैक करने लिए पुनर्नविनीकरण प्लास्टिक का उपयोग प्रतिबंधित है।
2016	The New Solid Waste Management Rules (NSWMR)	इस नियम में अपशिष्ट को सेग्रीगेट करना अनिवार्य कर दिया गया है ताकि रिकवरी, रियूज, और रिसाइकिल (3R) करके वेस्ट से वेल्थ में स्थानान्तरित किया जा सके।

स्रोतः शोधकर्ता द्वारा संकलित

प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन की दिशा में सामाजिक–आर्थिक कारकों की भूमिका

अध्ययन में पाया गया कि विशेष रुप से महिलाएं पर्यावरण से भावनात्मक रुप से जुड़ाव व्यक्त करती हैं। महिलाएं (60%) पर्यावरण संरक्षण में अधिक रुचि रखती हैं। महिलाएं (72%) पुरुषों (38%) की तुलना में औसतन प्लास्टिक का पुनः उपयोग करती हैं, जो दर्शाता है कि प्लास्टिक प्रतिबंध लगाने की धारणा में भिन्नता है। हालांकि, महिला एंव पुरुष दोनों ही प्लास्टिक को अपशिष्ट उत्पादन के लिए सबसे महत्वपूर्ण सामग्री मानते हैं। इसके अलावा ये भी मानना है कि ऐसी बहुत सी आवश्यकताएं है जिनके लिए हम प्लास्टिक का उपयोग करने से नही बच सकते। क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि आर्थिक कारक पर्यावरण के प्रति व्यक्ति के व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आर्थिक स्तर जितना उचाँ होता है, उतने ही अधिक अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। यह एकमात्र प्रेरक कारक नहीं है किन्तु यह महत्वपूर्ण कारक है। विभिन्न आय समूहों में प्लास्टिक के उपयोग के प्रतिरुप का अध्ययन करते हुए, यह स्थापित किया गया है कि आय के साथ प्लास्टिक उपभोग परिवर्तित होता है।

लगभग 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि प्लास्टिक अपशिष्ट की मात्रा कम करने के लिए सरकार द्वारा लागू विधिक नियम पर्याप्त नहीं है और जनता के बीच जागरूकता पैदा करने के लिए और अधिक प्रयास किए जाने चाहिए। इलाहाबाद शहर में प्लास्टिक से संबंधित खतरों पर सरकारी/स्थानिय निकायों/गैर सरकारी संगठनों द्वारा आयोजित कार्यक्रम में केवल एक चौथाई उत्तरदाताओं ने भाग लिया है। उत्तरदाताहों ने ऐसे कार्यक्रमों के बारे में सुना भी नहीं है। उत्तरदाताओं का कहना है कि ऐसे कार्यक्रम प्लास्टिक अपशिष्ट से जुड़े खतरों और निपटान के सुरक्षित तरीकों पर लोगों को शिक्षित करने में सहायक होंगे।

हालांकि भारत सरकार 2022 तक प्लास्टिक को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करने की योजना बना रही है; सरकार को उद्योग क्षेत्रों एंव जनता को सूचित करना चाहिए कि प्लास्टिक के उत्पादन और उपभोग दोनों की अनुमति नहीं होगी। 22 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत थे कि प्लास्टिक बैग पर प्रतिबंध से पर्यावरणीय मुद्दों के बारे में जागरूकता बढ़ाने में मदद मिली है, जबकि 78 प्रतिशत उत्तरदाता इस कथन से पूरी तरह असहमत है। क्योकि भारतीय संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न खड़े होते हैं; क्या भारतीय समाज उपयोगी प्लास्टिक का उत्पादन करना बंद कर पाएगा, जैसे चिकित्सा उपकरण? क्या विकल्प समाज के सभी वर्गो के लिए अनुकूल होगा? क्या वे अभिजात वर्गों तक सीमित रहेगा? लागत प्रभावीशीलता के संदर्भ में। इन बड़े मुद्दों को संबोधित करना आवश्यक है और इस संदर्भ में सामाजिक, आर्थिक, कानूनी एंव नैतिक मुद्दों पर सामाजिक विज्ञान अनुसंधान महत्वपूर्ण हो जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन में महत्वपूर्ण मुददे, जैसे कि प्लास्टिक अपशिष्ट प्रंबधन एंव इससे सम्बधित जागरूकता की जांच की गई है। उत्तरदाताओं ने प्लास्टिक उपभोग के अंतर्दृष्टि और प्रासंगिक कारणों का उल्लेख किया है। एक मुख्य विचार यह है कि उपभोग प्रतिरूप एक निश्चित वस्तु नहीं बल्कि विशिष्ट संस्थागत संदर्भ में निहित व्यक्तिगत 'इतिहास का परिणाम है। साक्षात्कार उन व्यक्तिगत इतिहास पर केंद्रित थे जो सामाजिक अधिगम पर सतत् (गैर सतत्) उपभोग पर नई अंतर्दृष्टि उत्पन्न करते है। वर्ष 2000 में जोहान्सबर्ग में सतत् विकास के लिए विश्व शिखर सम्मेलन ने उपभोग और उत्पादन के अस्थिर प्रतिरूप को बदलने की आवश्यकता को मान्यता

दी। इस कार्यान्वयन की योजना में विश्व शिखर सम्मेलन से उभरने वाले मुख्य दस्तावेज वैश्विक नेतृत्वकर्ता समाजों में उत्पादन एवं उपभोग के तरीकों में मौलिक परिवर्तन का आह्वान करते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर खपत के पर्यावरणीय दबावों के साथ–साथ सामाजिक और आर्थिक प्रभावों की सीमा को समझना एक चुनौती है। पर्यावरण नीति के गठन पर विचार आमतौर पर बदलते पर्यावरण और सामाजिक संबंध में स्थापित हो सकते हैं। यह समझा जाता है कि पर्यावरण और समाज एक दूसरे की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। पर्यावरण सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का एक संयुक्त हिस्सा है। इससे प्रभावित होने और बदले में इसे प्रभावित करने के कारण समय के साथ और स्पष्ट हो गये हैं। पर्यावरणीय गिरावट के दिन प्रतिदिन की अभिव्यक्तियों ने पर्यावरण को धीरे–धीरे भारत जैसे विकासशील देश में मुख्यधारा के नीतिगत एजेंडे में अपना रास्ता खोजने के लिए प्रेरित किया है।

निष्कर्ष एंव सुझाव

इस अध्ययन के दौरान उत्तरदाताओं (वैज्ञानिक, अधिकारी एंव मेडिकल प्रैक्टिशनर्स) का कहना है कि, प्लास्टिक उपभोग और प्लास्टिक प्रदुषण के क्षेत्र में विनियमन जवाबदेही और व्यवस्थित कार्यान्वयन को मजबूत बनाने की आवश्यकता है। लगभग 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार, प्लास्टिक पर पर्यावरण कर के विनियमन को मजबूत करने से सरकार सभी प्लास्टिक अपशिष्ट के संग्रह को प्रबंधित करने में सक्षम हो सकती है। इस अध्ययन के निष्कर्ष का तर्क है कि, अपशिष्ट प्रबंधन की लागत को पुरा करने में योगदान के लिए कंस्यूमर गुड्स कंम्पनी को भी शामिल किया जाना चाहिए, केवल टैक्स लगाने से ही लक्ष्य हासिल नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा टैक्स के स्थानीय नगर निगम अधिकारियों से अपेक्षा की जाती है कि वे प्रतिबंध एंव जुर्माना दोनों लागू करें जिससे लोगों की उपभोग संबंधित मानसिकता में परिवर्तन आ सके।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, भारत सरकार, द्वारा जारी प्लास्टिक बैग प्रतिबंध अधिसूचना में विकल्पों (alternatives) का उल्लेख किया गया है। यहां बड़ा सवाल यह उठता है कि विकल्प कहां है ? वस्तुतः उत्तरदाताओं द्वारा इस प्रश्न पर तर्क दिया गया है कि, या तो सब्सिडी का अभाव या प्लास्टिक पैकेजिंग के विकल्प के लिए सब्सिडी की कमी। पर्यावरण के अनुकूल विकल्प (जैसे–कपड़ा, कागज, जूट बैग, पत्ते के प्लटे) एंव नवाचार (innovation) (हरित पैकेजिंग जैसे–केले के पत्ते, बांस के पत्ते इत्यादि) को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक और वित्तिय सहायता को मजबुत किया जाना चाहिए। इस विषय में, आर्थिक मामले की मंत्रीमंडलीय समिति द्वारा 2016 में जूट के बैग में खाद्य उत्पादों को पैक करने का आदेश जारी किया। अतः उद्देश्य भले ही जूट उद्योग को बढ़ावा देने का हो, लेकिन यह एक ऐसा कदम है जिससे प्लास्टिक प्रदूषण कम किया जा सकता है। विकल्प का आधुनिकीकरण (जैसे–कपड़ा, कागज, जूट, कांच) और इनके लिए एक बाजार बनाने से रोजगार सृजन बढ़ेगा; वर्तमान अध्ययन में 90 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यही सुझाव दिया है। इसके अलावा स्वच्छ भारत मिशन का विस्तार प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन तक किया जाना चाहिए। 6 दिसंबर 2017 को केन्या के नैरोबी में आयोजित तीसरी संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सभा में भारत सहित 193 देशों में एक स्थायी जीवन शैली और प्लास्टिक प्रदूषण से मुक्त ग्रह की दिशा

में काम करने का संकल्प लिया गया।

घरेलू एंव व्यावसायिक स्तर पर प्लास्टिक से मुक्त होने के सर्वोत्तम तरीकों में से एक है; धातु, लकड़ी व कांच जैसी पारंपरिक सामग्रियों से बने उत्पादों का चयन करना, जो निर्माण में एंव निपटान में आसान हैं। कांच, एल्युमिनियम और स्टील जैसी धातुओं के साथ अनिश्चित काल के लिए पुनर्नवीनीकरण किया जा सकता है; जिसका अर्थ है उन्हें लैंडफिल में समाप्त नहीं करना पड़ता है। ये उत्पाद आमतौर पर महंगे होते हैं किन्तु उनकी स्थायित्व और जीवनचक्र उचित होते हैं। हालांकि मिट्टी एंव चीनी मिट्टी की वस्तुओं के लिए अधिक श्रम एंव आर्थिक क्रियाओं की आवश्यकता होती है, यह एक कारण है कि कई विक्रेता पेपर एंव प्लास्टिक बैग की तरफ परिवर्तित हुए हैं। कुल्हड़ (मिट्टी के बर्तन) का पुनर्नवीनीकरण नहीं किया जा सकता है; यही (अय्यर, 2019) ने भी तर्क दिया है। इसके विपरित कागज के बैग को पुर्नचक्रित करके पुनः कागज के थैले बनाए जा सकते हैं। यहां तक कि कुछ प्लास्टिक, विशेष रूप से पीईटी, को भी पुनः बैग के स्वरूप में परिवर्तित करने के लिए पुनर्नवीनीकरण किया जा सकता है। इनके अनुसार, ऐसे समय में जब म्युनिसिपल सॉलिड वेस्ट निपटान पहले से ही एक बड़ी पर्यावरणीय समस्या है, वहीं लाखों कुल्हड़ अतिरिक्त अपशिष्ट का स्वरूप बन सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन में (86 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का मानना है कि यह किफायती; पर्यावरण के अनुकूल विकल्पों की अनुपस्थिति है जो व्यक्ति के दैनिक जीवन में पर्यावरण पर अधिक ध्यान देने से रोकता है। इसके अलावा पर्यावरण की एक व्यापक अवधारणा सततता (sustainability) है जो एक तर्क के रूप में व्यक्त की जाती है (एजमैन एंण्ड इवांस; 2004)। यह तर्क स्थायी विकास में स्पष्ट संदर्भ देते हैं ताकि संसाधन वितरण में अंतः पीढ़ी समता एंव पर्यावरण क्षमता पर ध्यान शामिल हो।

वर्तमान अध्ययन में लगभग 97 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि इलाहाबाद में प्लास्टिक प्रतिबंध की विफलता के पिछे प्रमुख कारणों में से एक विकल्प की कमी रही है। जहां एक स्ट्रीट वेंडर 40–50 रूपये में लगभग 100 प्लास्टिक बैग खरीद सकता है, जबकि कपड़े या जुट के सिर्फ एक बैग की किमत 15–20 रूपये है। प्रतिबंध को सफल करने के लिए इन विकल्पों पर सब्सिडी दी जानी चाहिए।

प्लास्टिक के व्यापक उपयोग व प्लास्टिक पर जन सामान्य की निर्भरता में इसके मूलभूत गुणों के प्रति जीवन को सहज व सुलभ बनाने की भूमिका है। विविध क्षेत्रों में प्लास्टिक के व्यापक उपयोग को न्यून करना अपने आप में एक बड़ी चुनौती है। घरेलू व औद्योगिक क्षेत्रों के साथ ही यदि चिकित्सा क्षेत्र में प्लास्टिक उपयोग का अध्ययन करें तो प्लास्टिक का कोई भी प्रभावी विकल्प सामने नहीं आता, जिससे जीवनप्रदाता सेवाओं में उपयोग किए जाने वाले सीरिंज, ग्लव्स, ग्लूकोस की बोतलें, पाइप, दवाइयों की पैकेजिंग के साथ विभिन्न मॉनिटरिंग मशीनों के अलावा ऐसी कई महत्वपूर्ण वस्तुएं हैं जो प्लास्टिक निर्मित हैं। अतः प्लास्टिक के उपयोग–प्रतिबंध पर बहस से अधिक आवश्यक प्लास्टिक के ऐसे प्रभावी विकल्पों की खोज व चिंतन करना है जो न सिर्फ पर्यावरण हितैषी हों अपितु प्रभावी रूप से जीवन के हर क्षेत्र को ऐसे सुगम व सहज बना सकें जिससे जनसामान्य की मूलभूत आवश्यकताएं अप्रभावित रहें।

हालांकि यह सुनिश्चित करना होगा की इन नियमों को कैसे लागू किया जाता है। केवल

प्रतिबंध शायद कभी अनुकूल नहीं होगा। यदि हम नैतिक संदर्भ में बात करें तो अंतिम उपयोगकर्ता की ओर से जागरूकता अभियान महत्वपूर्ण है। इसके अलावा प्लास्टिक के उपयोग एंव उसके परिणाम की शिक्षा देने की जरूरत है। इसे पर्यावरण शिक्षा पर पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाने की आवश्यकता है ताकि जनता/उपभोक्ता जिम्मेदार अपशिष्ट प्रबंधन अभिवृत्ति प्रतिक्रिया अपना सके। स्कूली शिक्षक, सरकार, जनसंचार माध्यम एंव सार्वजनिक स्तर तक पर्यावरण के अनुकूल जागरूकता फैलाना आवश्यक है। इससे पर्यावरण नैतिकता के सवाल से भी निपटा जा सकता है।

मानव उपभोग व्यवहार को परिवर्तित करना कतिपय सरल कार्य नहीं है किंतु इस क्षेत्र में यदि मजबूत इच्छाशक्ति के द्वारा काम लिया जाए तो भारत के गिने–चुने पूर्ण सिंगल यूज प्लास्टिक उपयोग मुक्त राज्यों की तरह संपूर्ण भारत पर्यावरणीय शत्रु रूपी प्लास्टिक पदार्थों से मुक्त हो सकता है। भारत में प्लास्टिक के विकल्पों का जन–सामान्य के बीच लोकप्रिय न हो पाने के अनके कारणों में से सर्वप्रमुख कारण राजनीतिक व प्रशासनिक प्रतिबंधों के अप्रभावी संचालन के साथ ही अधिकांश शिक्षित व अशिक्षित जनसंख्या का प्लास्टिक के दुष्प्रभावों के प्रति अज्ञानता व पर्यावरण संरक्षण के प्रति उदासीनता है। वैज्ञानिकों का मत है कि विकसित देशों में नीति निर्माता अपशिष्ट प्रबंधन के संबंध में कोई भी नीतिगत निर्णय लेते समय सामाजिक वैज्ञानिकों को शामिल करते हैं; चाहे प्लास्टिक अपशिष्ट हो या नगरपालिका ठोस अपशिष्ट। लेकिन भारत में ऐसा नहीं हो रहा है; उदाहरण के लिए; वर्तमान अध्ययन में इलाहाबाद नगर निगम के नेतृत्व वाली समितियों में सामाजिक वैज्ञानिकों की भागीदारी नहीं पायी गयी। चूंकि वर्तमान में 'थ्रो अवे कल्चर' के दुष्प्रकार्य परिणाम पर्यावरण क्षरण के रूप में सामने नजर आ रहे हैं और अपशिष्ट की मात्रा बढ़ती जा रही है।

आभार

प्रस्तुत पाठ्य–सामग्री इलाहाबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय में प्रथम लेखक के डॉक्टरटे शोध प्रबंध से प्राप्त हुयी है। यह अध्ययन राजीव गांधी पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी संस्थान (रा.गा.पे.प्रौ.सं), जैस द्वारा आयोजित सेमिनार (2018) में प्रस्तुत एक लेख का संशोधित संस्करण है। लेखक प्रो. एन जयराम, प्रो. आर. एस संधू, डॉ. सीतल मोहंती एंव डॉ. अनिर्बान मुखर्जी को उनके सुझावों के लिए धन्यवाद देना चाहते हैं। इसके अलावा प्रो. विनोद चंद्रा को धन्यवाद देना चाहते हैं जिन्होने सबसे पहले हमें अंग्रेजी के अलावा हिन्दी लेखन के लिए प्रोत्साहित किया। अन्ततः प्राप्त कोई भी त्रुटि लेखकों की जिम्मेदारी है।

संदर्भ–

वेब्लेन, टी. (1953) 1899,. द थियरी ऑफ द लीजर क्लासः एन इकोनॉमिक स्टडी ऑफ इंस्टीट्यूशंस. न्यूयॉर्कः द मैकमिलन कम्पनी।

स्ट्रॉस, एल. सी. (1963). स्ट्रक्चरल एन्थ्रोपोलॉजी. न्यूयॉर्कः बेसिक बुक्स। बोर्डियो, पी. (1977).

रिप्रोडक्शन इन एजुकेशन, सोसाइटी एंण्ड कल्चर. लंदनः सेज पब्लिकेशन। दुर्खीम, एम. (1987). (1938), 1895,. द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मैथड. न्यूयॉर्कः द फ्री प्रेस।

मिलर, डी. (1987). मटेरियल कल्चर एंण्ड मास कंसम्प्शन. न्यूयॉर्कः बी ब्लैकवले।

गिडेन्स, ए. (1987). सोशल थियरी एंण्ड मॉडर्न सोशियोलॉजी. कैलिफोर्नियाः स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी।

मॉस, एम. (1990), 1925,. द गिफ्टः फॉर्म्स एंण्ड फंक्शन्स ऑफ एक्सचेजं इन आर्किक सोसाइटीज. लंदनः रूटलजे। बेक, यू. (1992). रिस्क सोसाइटीः टुवर्ड्स अ न्यू मॉडर्निटी. लंदनः सेज पब्लिकेशंस। बर्न्स, आर. बी. (1997). इंट्रोडक्शन टू रिसर्च मैथड्स, मेलबर्नः एडिसन विस्ले लॉगमैन।

बायोमेडिकल वेस्ट (मैनेजमेटं एण्ंड हैंडलिगं, 1998) रूल्स. नई दिल्लीः मिनिस्ट्री ऑफ एन्वायरमेटं एंण्ड फॉरेस्ट नोटिफिकेसंश, गर्वनमेटं ऑफ इंडिया पब्लिकेशंस।

एएमसी. (2003). रिपोर्ट. (अनपब्लिस्ड). इलाहाबाद म्युनिसिपल कार्पोरेशनः इलाहाबाद.

एजमैन, जे. इवांस, बी. (2004). जस्ट सस्टेनिबिलिटीः द इमर्जिंग डिस्कोर्स ऑफ एन्वायरमेटं इनजस्टीस इन ब्रिटने? द जियोग्राफिकल जर्नल. 170 (2)।

यूनाईटडे नेशन्स प्रोग्राम. (2014). एन्वायरनमेंटल जस्टिस कम्परेटिव एक्सपीरिएंसेस इन लीगल एम्पावरमेटं. न्यूयॉर्क प्रेस। सीपीसीबी. (2015). मैनेजमेंट ऑफ म्युनिसिपल वेस्ट. सेंट्रल पॉल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड, नई दिल्लीः गवर्नमेटं ऑफ इंण्डिया।

..... (2017). प्लास्टिक वेस्ट मैनजे मेटं रूल्स. सेंट्रल पॉल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड. नई दिल्लीः गवर्नमेटं ऑफ इंण्डिया।

..... (2017). सेंट्रल पॉल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड, कन्ट्रोल बोर्डः मिनिस्ट्री ऑफ एन्वायरमेटं, फॉरेस्ट एंण्ड क्लाइमेट चेंज. गवर्नमेटं ऑफ इंण्डिया।

अय्यर, एस. एस. ए. (2019). हाऊ नॉट टू क्रिएट जॉब्स. द इकोनॉमिक टाइम्स, 29 अगस्त. (लखनऊ एडिसन)।

सर्वेश कुमार[1], डॉ. राहुल पटेल[2]

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

भारत में तिब्बती डायस्पोरा पर मीडिया का प्रभाव

सार संक्षेप

प्रस्तुत शोध–पत्र भारत में तिब्बती डायस्पोरा पर मीडिया के प्रभावों का विश्लेषण करता है। भारत के हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला क्षेत्र में प्रवासरत तिब्बती प्रवासी लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर मीडिया की भूमिका, उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन तथा निर्वासन में तिब्बतियों के जीवन पर मीडिया के प्रभावों का विश्लेष्ण करता है। शोध अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग, गुणात्मक विधि, मानववैज्ञानिक शोध–पद्धति तथा अवलोकन व साक्षात्कार तकनीक एवं असंरचित साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। तिब्बतियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर मीडिया का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। निर्वासन में रह रहे तिब्बतियों के जीवन में मीडिया एक असाधारण भूमिका निभा रही है। मीडिया ने निर्वासित तिब्बतियों को समाज एवं अन्य राष्ट्रों तक अपनी बात पहुँचाने की ताकत दी है। निष्कर्षतः तिब्बती डायस्पोरा एक सक्रीय डिजिटल समहू के रूप में उभर रहा है और मीडिया फ्री तिब्बत मूवमेंट में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

सूचक शब्द : मीडिया, डायस्पोरा, तिब्बती, मानववैज्ञानिक शोध पद्धति, फ्री तिब्बत मूवमेंट, सक्रीय डिजिटल समुदाय, सीटीए इत्यादि।

डायस्पोरा :–

जब कोई मानव समूह अपने मूल देश से अन्य देशों में किसी कारणवश विस्थापित होकर बस जाते हैं तथा अपने मूल देश से किसी न किसी रूप से जुड़े होते हैं उन्हें 'डायस्पोरा' कहते हैं। डायस्पोरा शब्द मूलतः ग्रीक भाषा के 'Diaspora' शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है प्रसार अथवा प्रकीर्णन। 'डायस्पोरा' शब्द का विच्छेद करने पर दो शब्द बनते हैं। डाया और स्पेरिओ, जिसका अर्थ है बीजों का बोना, बिखेरना या फैलाना। डायस्पोरा शब्द का प्रयोग 586 ईपू में बेबीलोनिया द्वारा यहूदियों के निष्कासन के संदर्भ में किया गया था।

विलियम सैफरन (1991) ने डायस्पोरा के पाँच लक्षण बताये हैं, जिनमें से सभी या कुछ लक्षण से युक्त हों तो वह डायस्पोरा के श्रेणी में रखा जाएगा।

1. मूल देश से दो या अधिक देशों में बिखर गए हों।
2. पृथक भौगोलिक निवास स्थानों के बाद भी अपनी स्वभूमि के बारे में सामूहिक स्मृति अथवा

[1]**सर्वेश कुमार – शोधछात्र, मानवविज्ञान विभाग, इलाहाबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज**
ईमेल– sarvesh.anthropologist@gmail.com
डॉ. राहुल पटेल (शोध–निर्देशक)– सहायक आचार्य, मानवविज्ञान विभाग, इलाहाबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज
ईमेल– rahul.anthropologist@gmail.com

मिथक से आपस में जुड़े हुए हों।

3. उनका यह विश्वास हो कि वे मेजबान समाजों द्वारा कभी स्वीकार नहीं किए जाएंगे, अतः उन्होंने अपनी स्वायत्त सांस्कृतिक और सामाजिक आवश्यकताएं विकसित कर रखी हों।

4. मूल देश के विकास के लिए निरंतर सहयोग प्रदान किया जा रहा हो और सामूहिक चेतना एवं एकता इन गतिविधियों को बढ़ावा देने में सहायक हो रही हों।

5. मूल देश में वापस लौटने के आदर्श इच्छा।

किसी भी डायस्पोरा की असली पहचान उसके मूल देश, धर्म, भाषा, संस्कृति, साहित्य, पहनावा, रिति–रिवाज, जीवन शैली अथवा संपूर्ण लोकाचार से होती आई है। तिब्बती डायस्पोरा भी इसका अपवाद नहीं है। तिब्बती जहां भी गए अपनी आधारभूत पहचान, प्रतीकों और लक्षणों को अपने साथ लेकर पहुंचे।

तिब्बती डायस्पोरा :–

तिब्बत पर चीनी आक्रमण और दलाई लामा के निर्णय के परिणाम स्वरूप सन् 1959 में भारत में तिब्बती शरणार्थियों के जन प्रवाह ने तिब्बती डायस्पोरा को जन्म दिया। तिब्बती समाज अपने मूल स्थान को छोडक़र अपनी सस्कृति और सभ्यता को संरक्षित करते हुए धर्मशाला सहित भारत के अन्य राज्यों में भी शरण लिए हुए हैं। वर्तमान समय में लगभग 90,000 रजिस्टर्ड तिब्बती शरणार्थी भारत में रह रहे हैं। भारत सरकार द्वारा तिब्बती विभिन्न सेटलमेंट में बसाए गए हैं। सन् 1960 से धर्मशाला में उनकी निर्वासन में सरकार है जो निरतंर उनके अपने मलू देश वापस लौटने के लिए अथक प्रयास कर रही है। वर्तमान समय में तिब्बती डायस्पोरा विस्थापन एवं पुनर्बसाहट का सफल उदाहरण पेश कर रहे हैं।

मीडिया :–

आज हम मीडिया क्रांति एवं मीडिया कन्वर्जेंस के युग में जी रहे हैं। मीडिया की भूमिका एवं महत्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। मीडिया सूचना के प्रचार एवं विचारों के भयमुक्त आदान–प्रदान का एक ऐसा जरिया है जिसने मानव समाज के हर पहलू को प्रभावित किया है। मीडिया अपने विभिन्न मीडिया माध्यमों जैसे अखबार, टी.वी., रेडियो, इंटरनेट इत्यादि के द्वारा लोगों के विचारों को आकार देने का कार्य करता है। यह आधुनिक समाज का एक ऐसा अटूट रूप है जिसके बिना समाज अपने विभिन्न कार्यों को सही ढंग से क्रियान्वित नहीं कर सकता है। समाज चाहे जटिल हो या सरल उन्हें संचार माध्यमों की आवश्यकता होती है जिससे उसकी विभिन्न संस्थाएं सुचारू रूप से कार्य कर सकें। मीडिया केवल समाज के प्रत्येक व्यक्ति को होने वाले खतरों से बचाने एवं अच्छे कार्यों के विभिन्न क्षेत्रों में अवसर ही नहीं बल्कि युवा मंच भी प्रदान करता है, जहां विभिन्न प्रासंगिक मुद्दों पर विचार–विमर्श के द्वारा समाज को एक नई दिशा दी जा सकती है।

मीडिया वह माध्यम है, जिसके द्वारा व्यक्ति सभी छोटी–बड़ी जानकारी प्राप्त करता है जो कि उसके व्यक्तित्व निर्माण में मदद करती है। साथ ही यह सामाजिक मुद्दों पर व्यक्ति की सोच को आकार देता है। वर्तमान समय में मीडिया समाज में एक शक्तिशाली हथियार की तरह है।

मीडिया का मुख्य उद्देश्य आस–पास की निगरानी करना, समाज के विभिन्न हिस्सों के बीच संबंध स्थापित करना तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सामाजिक विरासत का प्रसारण करना है। (हैराल्ड लासवेल, 1948)

आज के समय में ज्यादातर समाज का हर भाग मीडियाटाईजशेन की प्रक्रिया में है। मीडिया ने संचार की प्रक्रिया को आसान बनाया है। संचार समाज के विकास में उत्प्रेरक का कार्य करता है। मीडिया न केवल अपने दर्शकों को बल्कि समाज के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक ढांचे को भी व्यापक रूप से प्रभावित करता है।

उद्देश्य :– प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य भारत के हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला क्षेत्र में प्रवासरत तिब्बती प्रवासी लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर मीडिया की भूमिका, उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन करना तथा निर्वासन में तिब्बतियों के जीवन पर मीडिया के प्रभाव का पता लगाना है।

पद्धति :– प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों जैसे इंटरनेट व शोधपत्रों इत्यादि द्वारा भी आंकड़े एकत्रित किये गए हैं। अध्ययन को पूरा करने के लिए गुणात्मक विधि, मानववैज्ञानिक शोध–पद्धति तथा अवलोकन व साक्षात्कार तकनीक एवं असंरचित साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। सिंपल रेंडम सेम्पलिंग के द्वारा 80 सूचनादाताओं का चयन किया गया तथा जानकारियां लिखी व रिकॉर्ड की गईं हैं।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :–

डायस्पोरा तिब्बतियों के इतिहास में एक अध्याय जैसा है जिसने उसके सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन जीने के तरीकों पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है। तिब्बती प्रवासी अपनी मलू संस्कृति को बनाए एवं जीवित रखने के लिए हर संभव कोशिश कर रहे हैं। तिब्बती जैसी छोटी शरणार्थी आबादी के लिए यह किसी चुनौती से कम नहीं है। निर्वासन में तिब्बती समाज और संस्कृति को जस का तस बनाए रखना तिब्बतियों के लिए बहुत अहम है। लेकिन संस्कृति–संक्रमण/परसंस्कृतिकरण (एकल्चरेशन) के द्वारा इसमें कई बदलाव भी हुए हैं। तिब्बती एकल विवाह एवं बहुविवाह दोनों में विश्वास रखते हैं। तिब्बती मुख्य रूप से बौद्ध धर्म का अनुसरण करते हैं। भारत में हर बौद्ध प्रधान क्षेत्र में तिब्बती देखने को मिलेंगे। वह मुख्य रूप से तिब्बती भाषा बोलते हैं तथा हिंदी का व्यावसायिक भाषा के रूप में मुख्य रूप से प्रयोग करते हैं। तिब्बतियों का रोजगार मुख्यतः कृषि एवं व्यापार है। वह अपनी पारंपरिक वेश–भूषा में नजर आते हैं।

तिब्बती डायस्पोरा पर मीडिया का प्रभाव :–

वर्तमान समय में मीडिया एक ऐसी शक्ति है जिसने दुनिया के प्रत्येक समाज एवं संस्कृति को कम या ज्यादा रूप से प्रभावित किया है। प्रेस, फिल्म, रेडियो, टीवी तथा इंटरनेट ने बड़े आयाम पर जनसंपर्क को आसान बनाया है। जैसे–जैसे डिजिटल टेक्नोलॉजी विकसित हुई है, संचार सुविधाएं आसान होती गयी हैं और विचारों के इस बढ़ते आदान–प्रदान ने प्रत्यके व्यक्ति, समाज, संस्कृति तथा सामाजिक घटनाओं को प्रभावित किया है और पूरे विश्व के सामने प्रस्तुत

भी किया है। तिब्बती डायस्पोरा के विषय में मीडिया का बहुत ही वृहत स्तर पर प्रयोग एवं प्रभाव देखने को मिलता है। नए तकनीकी संचार माध्यमों ने शरणार्थियों के कार्य, स्थिति एवं सोशल सपोर्ट स्ट्रक्चर को प्रभावित किया है। सैटेलाइट, टीवी और डी.टी.एच. ने निर्वासन में रह रहे तिब्बतियों एवं उनके हामेलैंड के बीच मीडिएटर का कार्य किया है एक डायस्पोरिक समुदाय द्वारा मीडिया के बड़े आयाम पर प्रयोग ने डिजिटल डायस्पोरा जैसे कांसेप्ट को जन्म दिया है और निर्वासन में रह रहे तिब्बती डिजिटल डायस्पोरा का सबसे सफल उदाहरण पेश कर रहे हैं। आज तिब्बतियों का समाज एवं संस्कृति का हर कोना नई मीडिया सुविधाओं से प्रभावित है। भारत में रह रहे तिब्बती शरणार्थी अपने मूल्यों, परंपराओं और संस्कृति को जिंदा रखने के लिए, अपनों से जुड़ने के लिए, तिब्बत के विषय में अपना विचार रखने के लिए तथा विकास की मुख्य धारा से जुड़ने के लिए विभिन्न डिजिटल टेक्नोलॉजी मीडिया प्लेटफॉर्म का प्रयोग कर रहे हैं। मीडिया ने निर्वासन में तिब्बती जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है। निर्वासन में रह रहे तिब्बती डिजिटली एडवांस हैं। अपनों से बातचीत के लिए विभिन्न चैटिंग ऐप्स का प्रयोग करते हैं, जिसमें 'वी–चैट' सबसे अधिक लोकप्रिय है। वे अन्य सोशल मीडिया ऐप्प जैसे– फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर इत्यादि का भी इस्तेमाल अपनों से जुड़े रहने के लिए करते हैं और तिब्बत या उससे जुड़ी हर खबर पर अपनी प्रतिक्रिया इन मीडिया प्लटेफॉर्म के द्वारा देते हैं। आज ज्यादातर तिब्बती लोग घर में टीवी सेट, रेडियो, न्यजूपेपर का प्रयोग करते दिखते हैं। यह मीडिया का ही असर है कि कम शिक्षित तिब्बती भी स्मार्टफोन, वॉइस टाइपिंग और वॉइस मेल के जरिए अपनों को संदेश भेजते दिखते हैं। फुटपाथ पर सामान बेचने बैठे आम तिब्बती व्यक्ति भी खाली समय में स्मार्टफोन चलाते दिखते हैं। मीडिया ने तिब्बती समाज के हर एक पहलू पर असर डाला है। आज तिब्बती शादी के लिए मैट्रिमोनियल वेबसाइट जैसे 'चेंजेस डॉट ओआरजी' का उपयोग करते हैं। ऑनलाइन शॉपिंग साइट्स जैसे फ्लिपकार्ट, अमेजॉन के द्वारा शॉपिंग करते हैं। लोगों के अंदर धार्मिक चेतना को जगाए रखने के लिए स्वयं तिब्बती धर्मगुरु दलाई लामा अपने अनमोल संदेश सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के जरिए आम लोगों तक पहुंचाते हैं। निर्वासन में अपने सामाजिक हितों को जानने एवं इसे अपनों तक पहुंचाने में तिब्बती समाज में मीडिया ने प्रमुख भूमिका निभाई है। आज तिब्बती चाइनीज वस्तुओं के बहिष्कार के लिए, चाइनीस सरकार के खिलाफ आंदोलन को जन–जन तक पहुंचाने के लिए पारंपरिक एवं आधुनिक मीडिया माध्यमों का प्रयोग करते हैं। केवल भावनात्मक स्तर पर ही नहीं बल्कि राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर भी मीडिया के जरिए तिब्बती संघर्ष की चेतना को दुनिया में बसे तिब्बतियों तक पहुंचाया जा रहा है। तिब्बतियों द्वारा किए गए राजनीतिक एवं सामाजिक आंदोलनों से दूर होते हुए भी तिब्बती मीडिया के द्वारा खुद को जुड़ा महसूस कर रहे हैं। विभिन्न मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे ट्विटर, फेसबुक, यूट्यूब आदि के जरिए अपने विचार व्यक्त कर रहे हैं जिससे एक सामूहिक चतेना का आभास होता है ।

निर्वासन में कई ऐसे संचार माध्यमों का जन्म हुआ है जो तिब्बतियों की विशिष्ट जरूरतों पर आधारित हैं। विभिन्न प्रिंट मीडिया जैसे 'शेजा' ऐसे न्यजू पेपर हैं जो तिब्बतियों से जुड़े समाचार छापते हैं। 'टिबेटन बुलेटिन' नामक मासिक पत्रिका तथा 'टिबेटन क्वार्टरली ब्रीफ' नामक तिमाही पत्रिकाएँ इत्यादि प्रकाशित किये जाते हैं। सीटीए (सेंट्रल तिब्बेतन एडमिनिस्ट्रेशन) द्वारा विभिन्न वेबसाइट जैसे 'टिबेट डॉट नेट' एवं एप्लीकेशन डिजाइन किए गए हैं जिससे तिब्बती डायस्पोरा से जुड़ी हर खबर आमजन तक पहुंच सके। निर्वासन में रह रहे तिब्बती टीवी पर

मुख्यतः टीवी न्यूज़, म्यूजिक एवं डेली शो देखना पसंद करते हैं। पुरानी पीढ़ी आज भी इससे जुड़ी हुई है और नई पीढ़ी मीडिया के जरिए अपने कला एवं संस्कृति को जान पा रही है। निर्वासन में तिब्बती संघर्ष को दिखाने के लिए विभिन्न सोशल मीडिया अभियान जैसे जिसमें विभिन्न प्लेटफार्म से हजारों फॉलोवर्स जुड़े हैं, के जरिए तिब्बती अपनी रोजाना की जिंदगी, प्रतिदिन के जीवन संघर्ष तथा एन्जॉयमेंट को दुनिया भर में पहुंचा रहे हैं। तिब्बती डायस्पोरा पर आधारित फिल्म का मचंन न्यू एशिया सिनेमा एक्रॉस बॉर्डर फिल्म फेस्टिवल के द्वारा किया जा रहा है जिससे लोग निर्वासन में तिब्बतियों की जिंदगी को जान सकें। आज डायस्पोरा में बसे तिब्बती मीडिया के सबसे एडवांस रूप का प्रयोग कर रहे हैं लेकिन उन्हें उनके नकारात्मक पक्ष को भी ध्यान में रखने की जरूरत है। तिब्बती युवा आज कुछ ज्यादा ही स्मार्टफोन की दुनिया में व्यस्त रहते हैं। कई बार यह पाया गया है कि अपनी सहूलियत के चलते वह प्राइवेसी भी दाँव पर लगा देते हैं जिससे उनके फोन आसानी से हैक हो जाते हैं। इस दिशा में जागरूकता फैलाने के

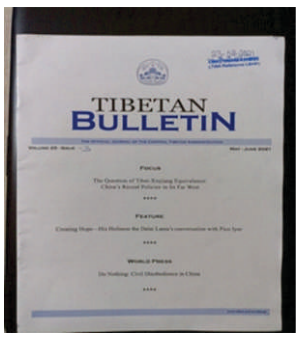

छायाचित्र 1: तिब्बती बुलेटिन।

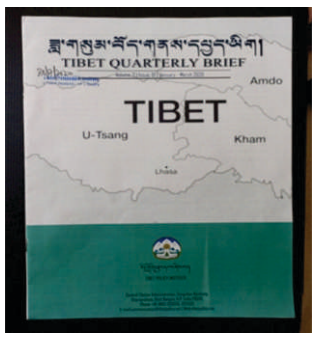

छायाचित्र 2: तिब्बत क्वार्टरली ब्रीफ।

छायाचित्र 3: द तिब्बत म्यूजियम न्यूज़ लेटर।

छायाचित्र 4: मोबाइल पर सोशल मीडिया का उपयोग करता हुआ मोंक।

छायाचित्र 5: मोबाइल मीडिया से संदेश साझा करते तिब्बती।

लिए सीटीए विभिन्न तिब्बती एक्टिविस्ट और एनजीओ वाले इंटरनेट के जरिए इंटरनेशनल अवेयरनेस अभियान चला रहे हैं। निर्वासन में तिब्बती समाज के संघर्ष एवं संस्कृति को दुनिया तक पहुंचाने में मीडिया का प्रमुख योगदान है और इस प्रक्रिया में मीडिया तिब्बती संस्कृति को पुनरुत्पादित कर पुनः लोगों के समक्ष प्रस्तुत कर रही है।

डिपार्टमेंट ऑफ इंफॉर्मेशन एंड इंटरनेशनल रिलेशन एक मीडिया ब्यूरो चलाता है जो कि तीन भाषाओं यथा तिब्बती, चाइनीज़ तथा इंग्लिश में न्यजू का प्रसार करते हैं। संचार व्यवस्था :–

निर्वासन में रह रहे तिब्बती विभिन्न मीडिया माध्यमों के द्वारा बाहर से सूचना प्राप्त कर रहे हैं जैसे अखबार, टी.वी., इंटरनेट इत्यादि के द्वारा। साथ ही आपसी बातचीत के द्वारा भी वे कुछ मीडिया माध्यमों के द्वारा जानकारी प्राप्त करते हैं। जिनमें प्रमुख हैं– किसी व्यक्ति के द्वारा निर्वासन क्षेत्र में आने पर, पोस्टल माध्यम द्वारा तथा मास मीडिया द्वारा। इन सभी संचार माध्यमों में मास मीडिया सबसे प्रमुख है जिसे दो भागों में बांटा जा सकता है–

1. फोक मीडिया (पारंपरिक मीडिया),
2. आधुनिक मीडिया।

पारंपरिक मीडिया का उपयोग तिब्बती समाज में सामूहिक चेतना व जागरूकता फैलाने के लिए किया जाता है लेकिन निर्वासन में आधुनिक मीडिया का प्रयोग पारंपरिक मीडिया से अधिक है आधुनिक मीडिया का प्लेटफार्म जैसे– रेडियो, टीवी, इंटरनेट इत्यादि तिब्बतन डायस्पोरिक समुदाय में काफी विख्यात हैं।

तिब्बत एक पहाड़ी देश होने के कारण वहाँ संचार सुविधाएं निम्न स्तर की थी। दो पड़ोसी जिलों के बीच संपर्क बहुत कठिन था। वह बाहरी लोगों से बातचीत के माध्यम से जानकारी प्राप्त करते थे लेकिन निर्वासित जीवन उससे काफी भिन्न है। मीडिया अब उनके जीवन का हिस्सा बन गया है। तिब्बती समाज निर्वासन में विचार आदान–प्रदान करने के लिए पूर्ण रूप से मीडिया माध्यमों से जुड़ा है। तिब्बत में जहां सामान्य संचार माध्यम की तुलना में अखबार–रेडियो बहुत कम उपयोग में दिखाई देते हैं, भारत में स्थिति इसके विपरीत है जहां सभी तिब्बती परिवार में रेडियो, टीवी, डीटीएच सुविधा के साथ स्मार्टफोन देखने को मिलता है। अखबार, पत्र–पत्रिका का उपयोग रोजमर्रा में अपने आस–पास की जानकारी को प्राप्त करने के लिए करते हैं तथा विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का प्रयोग कर अपने विचारों को समाज के सामने रखते हैं। प्रिंट मीडिया के अलावा तिब्बती निर्वासन में अपनी पारंपरिक सांस्कृतिक सभ्यता को जिंदा रखने तथा समाज में जागरूकता पैदा करने के लिए फोक मीडिया का भी प्रयोग करते हैं। इस प्रकार निर्वासन में मीडिया एक ब्रिज की तरह भारत में रह रहे तिब्बती और मूल तिब्बतियों को जोड़कर रखा है।

यह शोध तिब्बती डायस्पोरा के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर मीडिया के प्रभाव को जानन` एवं समझने के लिए किया गया है। यह पाया गया कि निर्वासन में रह रहे तिब्बती जीवन पर मीडिया का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। मोबाइल फोन, इंटरनेट, अखबार आदि सुविधाओं के कारण अब वे आसानी से दूसरों से जुड़ पा रहे हैं और यह उन्हें समाज में नए विचार, नए तरकीब अपनाने में मदद कर रहे हैं। यह पाया गया कि निर्वासन में रह रहे तिब्बती चाहे वे किसी भी आयु

वर्ग, पेशे से सम्बन्ध रखने वाले, भिक्षु, बच्चें, व्यापारी, तिब्बत के प्रशासनिक वर्ग के लोग, सभी मीडिया के रीसेंट मॉडर्न टेक्नोलॉजी से लैस हैं तथा उसका प्रयोग भली–भांति जानते हैं। वे तिब्बती खबरें, तिब्बती एवं हिंदी गीत सुनते हैं। तिब्बती, अंग्रेजी एवं हिंदी भाषा में अखबार एवं पत्रिकाएं क्षेत्रीय और देश–विदेश की जानकारियां प्राप्त करने के लिए पढ़ते हैं। इसके साथ ही वह फोक मीडिया प्लेटफॉर्म का प्रयोग निर्वासन में अपनी कला तथा संस्कृति को जीवित रखने के लिए करते हैं।

तिब्बती समाज में मीडिया प्लेटफॉर्म का प्रयोग अपने लोगों के बीच शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के प्रति जागरूकता फैलाने के अलावा मीडिया का मुख्य उपयागे तिब्बती संघर्ष को जन–जन तक पहुंचाने, अपनी कहानी दुनिया के सामने रखने तथा अपनी मातृभूमि में हो रहे सामाजिक–राजनीतिक उलटफेर को समझने–जानने का सबसे प्रमुख जरिया है कि तिब्बती सरकार आजादी के लिए क्या कदम उठा रही है। अतः इस प्रकार मीडिया तिब्बती जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि तिब्बतियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर मीडिया का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। निर्वासन में रह रहे तिब्बतियों के जीवन में मीडिया एक असाधारण भूमिका निभा रही है। मीडिया ने निर्वासित तिब्बतियों को समाज तक अपनी बात पहुंचाने की ताकत दी है। मीडिया तिब्बती जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है क्योंकि इसने उन्हें वह मंच दिया है जहां वे लोगों के विचार जान सकते हैं और फ्री तिब्बत मूवमेंट पर अपने विचार साझा कर सकते हैं।

भारत में तिब्बती समाज एक सक्रिय ऑनलाइन समुदाय के रूप में उभर रहा है। सभी मीडिया माध्यमों में ये सोशल मीडिया का प्रयोग अपने विचारों को साझा करने के लिए सबसे अधिक प्रयोग में लाते हैं। यह वह माध्यम है जिसके द्वारा निर्वासन में पैदा हुआ तिब्बती वास्तविक तिब्बत को जान और समझ पाता है। यह मीडिया का ही प्रभाव है कि पारंपरिक वेश–भूषा में आधुनिक संचार उपकरणों का प्रयोग करते तिब्बती भिक्षु नजर आते हैं। तिब्बती निर्वासन में रह रहे समाज के प्रत्येक वर्ग के लोग मीडिया के विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करते दिखते हैं। तिब्बती डायस्पोरा पर मीडिया का सकारात्मक प्रभाव ज्यादा देखने को मिलता है क्योंकि यही वह माध्यम है जिसके द्वारा समाज की मुख्य धारा से अलग–थलग रह रहे तिब्बती अपने विचारों को शब्द दे पा रहे हैं, अपनी शर्तों पर अपनी कहानी लोगों तक पहुंचा पा रहे हैं और अपनी मातृभूमि की आजादी के इस संघर्ष को आम जनमानस तक पहुंचा पा रहे हैं ।

संदर्भ

न्वाबुज़, चिनेन्ये (2005) मास मीडिया ऐंड कम्युनिटी मोबिलाइजेशन फॉर डेवलपमेंट : ऐन एनालिटिकल अप्रोच, यूनिवर्सिटी ऑफ़ नाइजीरिया, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ कम्युनिकेशन, ISSN: 1597–4324 ।

लासवेल, हैरोल्ड (1948) द स्ट्रक्चर एंड फंक्शन ऑफ़ कम्युनिकेशन सोसाइटी, इन लीमन

ब्रीसन, द कम्युनिकेशन ऑफ़ आईडियाज़, इंस्टिट्यूट ऑफ़ रेलिजियस स्टडीज़, न्यूयॉर्क, पेज 37–51 ।

वोन, बर्नस्टोफ्फ़ वेल्क हर्बर्टस (2003) एक्साइल ऐज़ चैलेंज : द टिबेटन डायस्पोरा, ओरियंटेशन ब्लैक स्वेन, हैदराबाद।

दिब्येश आनंद, (2009) जियोपोलिटिकल एक्सोटिका : तिबेट इन वेस्टर्न इमैजिनेशन, साउथ एशिया, रूटलेज, नई दिल्ली।

आनंद, (2012) टिबेटन रिफ्यूजीज़ सर्च फॉर एक्सीटेंस, नेहा पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

आर्डली, जेने (2015) द टिबेटन इंडिपेंडेंस मवू मेंट : पोलिटिकल, रिलीजियस ऐंड गांधीयन पर्सपेक्टिव, रूटलेज, नई दिल्ली।

गोल्ड, पीटर (1981) रिसर्चिंग टिबेटन आट्र्स इन इंडिया, कॉलेज आर्ट असोसिएसन, पेज 166–167

सैफरन, विलियम (1991) डायस्पोरा इन मॉडर्न सोसाइटी : मिथ्स ऑफ़ होमलैंड एंड रिटर्न्स, पेज 83

माउस्टोगिनी, जी एस (2007) टिबेटन, बट नोट फ्रॉम तिबेट, राजनीति विज्ञान विभाग, लुंड यूनिवर्सिटी

https:/tibet.net

https:/thediplomat.com

www.migrationpolicy.org

दीपशिखा

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

किन्नर समुदाय : सामाजिक चुनौतियाँ एवं विधिक प्रावधान

सार संक्षेप

मानव होने की संपूर्णता हमारी संवेदनशीलता में निहित है। जब समाज का एक वर्ग हमारी संवेदनहीनता के चलते बद्दतर जीवन जीने को मजबूर हो तो यह हमारे मानव होने की संपूर्णता पर प्रश्न–चिन्ह खड़ा करता है। कई कलात्मक प्रतिभाओं और गुणों से पूर्ण होने के बावजूद यदि किन्नर समुदाय अपनी पहचान और विकास के लिए आज भी तरस रहा है तो इसमें सामाजिक स्वीकार्यता न मिलने की बहुत अहम भूमिका है। जन्म के साथ हम एक जैविक लैंगिक पहचान लेकर पैदा होते हैं। वह जैविक पहचान हमारे जननांग के माध्यम से हमें नर या मादा प्रजाति से जोड़ती है। ये हमारी लैंगिक पहचान ही होती है कि हम जानते हैं कि हम स्त्री, पुरुष या किन्नर हैं। 15 अप्रैल 2014 को सुप्रीम कोर्ट ने किन्नरों को तीसरे लिंग के रूप में कानूनी पहचान दी। केंद्र तथा राज्य सरकारों को निर्देश दिया गया कि किन्नरों को अपना अलग आधार कार्ड, पहचान पत्र, ड्राइविंग लाइसेंस, पासपोर्ट आदि बनाने का हक है। न्यायालय ने उन्हें सम्मान से जीने के लिए ये अधिकार दिए हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में भारतीय किन्नरो की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक सहभागिता तथा सरकार द्वारा किए जाने वाले उत्थान के प्रयासों का विश्लेषण किया जाएगा।

सूचक शब्द : किन्नर समुदाय, संवेदनशीलता, सामाजिक स्वीकार्यता, उच्चतम न्यायालय, उत्थान.

आमुख

किन्नर समुदाय सामाजिक संरचना में स्त्री–पुरूष की पहचान से भिन्न अपनी पहचान रखने वाला एक समुदाय है। एकलैंगिक विकृति के कारण यह समुदाय अपनी पहचान 'तृतीय लिंग' के रूप में रखता है। एस० के० शर्मा ने अपनी कृति 'हिजराजः द लेबिल्ड डेविएंस' में कहा है कि समाज में प्रचलित सामान्य मान्यताओं के विपरीत अपनी पहचान रखने के कारण इनको समाज से अलग तृतीय श्रेणी में रखा गया है। आम इंसान की तरह तृतीय लिंगी भी हमारे ही समाज का हिस्सा हैं। इनको आधुनिक समाज में सम्मान की नजर से नहीं देखा जाता, बल्कि लिंग भेद के कारण उपेक्षित, तिरस्कृत और हेय दृष्टि से देखा जाता है, जबकि ये भी इन्सान हैं। समाज में इस वर्ग को उपहास पूर्वक मोगा, बीच वाला, मामू, गुउ, नपुंसक, छक्का, किन्नर, हिजड़ा आदि नामों से पुकारा जाता है। सबको दुआ, बधाई और शुभ आशीष देने वाला यह हाथ अपनी मूलभूत सुविधाओं के साथ पहचान, अधिकार और सम्मान से भी वंचित है। साथ ही, सामाजिक बहिष्करण, लिंग भेदभाव एवं मानसिक उत्पीड़न का शिकार है. सेरेना नंदा (1999) ने 'नाइदर मैन नॉर वुमन : द हिजराज ऑफ इंडिया' में बताया है कि ये शारीरिक रूप से पुरुष होते है तथा इनकी लैंगिक पहचान स्त्रियों की होती है। इनमे स्त्रियोचित गुण पाये जाते है, अतः ये

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
ईमेल–shikhabanda@gmail-com; mob. no.– 8543088388.

अपनी पहचान के संकट से जूझ रहे होते है। यू०एन०डी०पी० के अनुसार "हिजड़ा" शब्द ऐसा पद है जो सभी लैंगिक अल्पसंख्यकों के लिए प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में हिजड़ा शब्द असामान्य समूह के लिए प्रयोग किया जाता है, जिसमें लिंग परिवर्तित व्यक्ति, प्रतिजातीय वेशधारी महिला और पुरुष, वे महिला और पुरुष जो लैंगिक अनुकूलन से बेपरवाह व्यवहार करते है, जिनका रंग–रूप या विशेषताएं लैंगिक असामान्यता दर्शाते है, आते है।

भारतीय समाज में किन्नर समुदाय का अस्तित्व सदैव से रहा है प्राचीन धार्मिक महाकाव्यों में भी किन्नर समुदाय का उल्लेख मिलता है। (नंदा 1996; कृष्णा एवं गुप्ता 2002) वैदिक काल तथा पौराणिक साहित्यों में इस वर्ग को 'तृतीय प्रकृति' अर्थात 'नपुंसक लिंग' के रूप में संबोधित किया गया है।

मुगल काल के दौरान उन्हें 'ख्वाजासरा' (फारसी का शब्द, रनिवास का मुखिया) की पदवी से नवाजा गया, जिसका काम राजा के 'हरम' (रनिवास) की रक्षा करना था. यह ख्वाजासरा वही हो सकता था जो राजा का विश्वासपात्र हो (रहमान, 2009), हिजड़ों को गुलामों की तरह खरीदा और बेचा भी गया (टपरिया,2011), मुगल काल में कुछ माता–पिता मुगलिया सल्तनत की छत्रछाया और रोजगार पाने के लिए खुद ही अपने बच्चों का 'बधियाकरण' कर देते थे (पटेल, 2012)। समय के साथ जैसे–जैसे रियासतों का पतन होता चला गया, उनकी रहनुमाई में भी गिरावट आई। इस गिरावट के साथ ही हिजड़ा समुदाय की आर्थिक स्थिति भी निरन्तर कमजोर होती गयी (जामी, 2005)।

औपनिवेशिक शासन (ब्रिटिश रूल) के दौरान हिजड़ा समुदाय को 'अपराधिक–जनजाति अधिनियम (सी.टी.ए.) के तहत 'आपराधिक जनजाति' घोषित किया गया। कालांतर में इस कानून को निरस्त (1952) कर दिया गया, लेकिन इसके बावजूद समाज की सामूहिक चेतना में हिजड़ा समुदाय अछूत एवं अमानवीय बना रहा। हिजड़ा समुदाय समाज के हाशिये पर घोर गरीबी में जीवन व्यतीत करता रहा है। जिसे जीवन के बुनियादी अधिकारों से वंचित रखा गया जैसे– भोजन और आवास, जिससे जीवन को बेहतर और गरिमामय बनाया जा सकता है। ये लगातार हिंसा का सामना करते रहते हैं। इनके साथ बलात्कार, उत्पीड़न, शारीरिक शोषण, मानसिक शोषण, भद्दी गाली–गलौज और छेड़खानी जैसे अपराध निरंतर होते रहते हैं। समाज के सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों और असहिष्णुता के भयावह रूपों, सामाजिक अलगाव को झेलते हुये हिजड़ा समुदाय समाज की मुख्यधारा से अलग मलिन बस्तियों में रहने के लिए विवश हैं। हमारे समाज में हिजड़ा समुदाय को लेकर बहुत सारी भ्रांतियाँ फैली हैं, जैसे हिजड़े बच्चों (पुरुष) का अपहरण कर अपने समुदाय की सदस्य संख्या बढ़ाने के लिए बच्चों का बधियाकरण कर देते हैं (पेत्तिस, 2004)।

हमारे समाज में किन्नर समुदाय का एक बड़ा हिस्सा हाशिये पर जीवन व्यतीत कर रहा है। सामाजिक अस्वीकार्यता कि वजह से रोजगार के सामान्य अवसर भी इनके हाथ से छिन जाते हैं। इनकी अशिक्षा अधिकारों की लड़ाई में इन्हें अक्षम बनाती है, हालांकि वैश्विक परिदृश्य में इस तरह के लोगों के संगठित होने से तृतीय लिंग की स्थिति में बदलाव दिखाई दे रहे हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि वर्तमान समय में तृतीय लिंग समुदाय की स्थिति में बदलाव आया है। वे अपनी अस्मिता और अधिकारों को लेकर गम्भीर हुए हैं, साथ ही पारम्परिक रूप से जो

सांस्कृतिक घेरा बनाया गया है, उनके काम को लेकर जीविकोपार्जन के साधन को लेकर आज उनमें भी बदलाव आ रहा है और यह समुदाय शिक्षा और स्वरोजगार के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं।

परिवर्तित होते परिवेश में किन्नर समाज आत्मसचेत हुआ है। दिसंबर 2002 में बंगलुरु में किन्नर समाज द्वारा 'विविधा' नामक संस्था का गठन किया गया। जिसमें I.P.C. की धारा 377 को खत्म करने की मांग की गई थी। यह धारा भारतीय दंड संहिता में अंग्रेजों द्वारा वर्ष 1871 में शामिल की गई थी। इसके अनुसार समलैंगिकता को गैर कानूनी माना गया है। इसके पूर्व वर्ष 2001 में नाज फाउंडेशन नामक एक गैर–सरकारी संस्था ने धारा 377 को दिल्ली हाईकोर्ट में चुनौती दी थी। अक्तूबर, 2012 में इन्होनें एक समिति नालसा (राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण) के माध्यम से अपनी पहचान एवं अधिकारों की मांग की थी। निरंतर संघर्षरत प्रयासों के परिणामस्वरूप भारतीय शीर्ष न्यायिक व्यवस्था ने अप्रैल 2014, में देश के इन नागरिकों को 'तृतीय लिंग' के रूप में पहचान दी है। भारतीय शीर्ष न्यायिक व्यवस्था के इस कदम ने किन्नरों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सशक्तता और सभी विधिक एवं संवैधानिक अधिकार प्रदान किये है। इस विधेयक के अंतर्गत किन्नरों के सशक्तिकरण के लिए पहचान पत्र, मतदान का अधिकार (1994) तथा बैंक, चुनावी प्रक्रिया, जनगणना (2011) व सभी सरकारी दस्तावेजों में तृतीय कॉलम का प्रावधान किया गया है। पारित विधेयक में सामाजिक समावेशन, अधिकार एवं सुविधा, आर्थिक और कानूनी सहायता, शिक्षा, विकास कौशल, हिंसा और शोषण रोकने का प्रावधान किया गया है। विधेयक में उनके लैंगिक समानता के अधिकार और शिक्षा तथा रोजगार में आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। इसमें किन्नरों के लिए एक राष्ट्रीय आयोग की बात भी है हालांकि तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल तथा केरल आदि राज्यों में उनके कल्याणार्थ हेतु वेलफेयर बोर्ड गठित है। लेकिन सभी किन्नरों को समानता के अवसर उपलब्ध कराने हेतु राष्ट्रीय स्तर पर आयोग बनाये जाने की आवश्यकता है। इनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु चिकित्सीय सुविधा का प्रावधान किया गया। इनको मुख्यधारा में लाने के लिए कल्याणकारी योजनाओं को केंद्र–राज्य स्तर पर संचालित किया जायेगा। Rights of Transgender Person Bill–2014 में शिक्षा, रोजगार, आरक्षण, सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थ्य आदि सुविधाओं का प्रावधान किया गया है। ट्रांसजेंडर पर्सन्स (प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स) बिल– 2016 के द्वारा किन्नरों को मुख्य धारा से जोड़ने की कोशिश की जा रही है। इसमें भेदभाव पर प्रतिबन्ध, निवास का अधिकार, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आइडेंटिटी सर्टिफिकेट, दण्ड व् अन्य कल्याणकारी योजनाओं को प्रस्तुत किया गया। इसके अतिरिक्त उज्जैन के सिंहस्थ महाकुम्भ में देश का पहला किन्नर अखाड़ा देखने को मिला। 2019 में ट्रांसजेंडर पर्सन (अधिकार संरक्षण) कानून बना, 2020 में ट्रांसजेंडर काउन्सिल का गठन किया गया। इन सभी कानून और नीतियों ने ट्रांसजेंडर समुदाय को उनका हक और अधिकार दिया, लेकिन जमीनी स्तर पर ऐसा नहीं हो पाया।

आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण के लिए शिक्षा तथा रोजगार में आरक्षण की व्यवस्था की गई है। अस्मिता बोध के कारण सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित इस सामुदाय के कुछ लोंगो में राजनीतिक चेतना बढ़ी हैं। सन् 1994 में मुख्य चुनाव आयुक्त द्वारा इन लैंगिंक विकलांगों के मतदान के अधिकार को मंजूरी मिली। इससे उनके लिए राजनीति के रास्ते खुल गए। मतदाता

के तौर पर किन्नरों को महिलाओं के रूप में दर्ज किया जाने लगा, परन्तु Right to Transgender Person Bill, 2014 में इनके लिए अलग कॉलम का प्रावधान किया गया है। राजनीति में प्रथम सफलता प्राप्त करने वाली किन्नर शोभा नेहरू एवं देश की प्रथम किन्नर विधायक शबनम मौसी और देश की प्रथम दलित किन्नर मेयर मधु किन्नर आदि ने राजनीति में ऊँचा मुकाम हासिल किया है। किन्नर गुरु पायल सिंह, सोनम चिश्ती आदि किन्नर राजनीति में सक्रिय हैं।

वर्तमान में सुप्रीमकोर्ट द्वारा दिए गये एक निर्णय के आलोक में उत्तर प्रदेश ने 'किन्नर कल्याण बोर्ड' का गठन किया है, जिसके द्वारा किन्नरों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं पर काम करते हुए नीतिगत एवं संस्थागत सुधारों के लिए सरकार को सुझाव दिया जायेगा। इससे पहले बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, झारखण्ड भी यह बोर्ड गठित कर चुका है। तमिलनाडु पहला राज्य है जहाँ 'किन्नर कल्याण बोर्ड' की स्थापना की गयी।

न्यायालय ने उन्हें सम्मान से जीने के लिए ये अधिकार दिए हैं। साथ ही अपने जीवन जीने के बारे में निर्णय लेने का अधिकार भी दिया है। शीर्ष न्यायलय ने संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 19(1)(क) और 21 के अंतर्गत देश के व्यक्तियों/नागरिकों को प्रदत्त सभी मूल अधिकारों को किन्नरों के भी पक्ष में प्रस्तुत किया। संविधान के अनुच्छेद 14 में कानून के समक्ष समानता की बात कही गयी है, संविधान के अनुच्छेद 15 के अंतर्गत कानूनी रूप से लिंगीय भेदभाव को प्रतिबंधित किया है। अनुच्छेद 19(1)(क) आम लोगों के साथ–साथ किन्नरों को भी स्व–पहचानीकृत लिंग एवं आत्म–अभिव्यक्ति कि स्वतंत्रता देता है तथा अनुच्छेद 19(2) ऐसे व्यक्तियों की व्यक्तिगत प्रस्तुति या वेशभूषा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाता है। अनुच्छेद 21 इनको गरिमा का अधिकार प्रदान करता है। इस प्रकार भारतीय संविधान में देश में यौन स्थिति के कारण सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े तृतीय लिंग के पुनर्वास, उनके जीवन स्तर में सुधार, सामाजिक संरक्षण आदि के लिए सरकारी स्तर पर प्रयास किया गया है।

इस समुदाय की समस्याओं को समझने में सबसे बड़ी बाधा, इस समूह द्वारा स्वयं को गोपनीय बनाये रखने की है। किन्नर समुदाय के इतिहास में एक महत्वपूर्ण समय अप्रैल 2014 में आया। जब उच्च न्यायालय ने, जिनकी पहचान किन्नर के रूप में होती थी। उन्हें 'तीसरे लिंग' के मान्यता देते हुए 'अन्य पिछड़ा वर्ग' (OBC) में शामिल किया। भारतीय जनगणना 2011, ने भी तीसरे लिंग' की कुल जनसंख्या ज्ञात करने का प्रयास किया, जिसमें इनकी कुल जनसंख्या 4,90,000 होने का अनुमान लगाया गया। इनके साथ–साथ 'अखिल भारतीय हिजड़ा कल्याण सभा' (AIHKS) ने खुद के द्वारा किये गये 2005 के अध्ययन में अकेले दिल्ली में 30,000 के आस–पास अपनी संख्या होने का अनुमान लगाया, जिसमें 1000 नौजवान ऐसे थे जो लगभग प्रतिवर्ष 'यूनक में परिवर्तित' हुए।

समाज ने उन्हें उपेक्षित और बहिष्कृत करके रखा है। उनके मानवाधिकार का उल्लंघन भी होता है, उनके साथ गलत होता है तो कोई सुनता नहीं। उनके साथ गलत हुआ है पहले तो यही साबित करने में, यही बताने में उनको कितनी तकलीफें आती हैं, क्योंकि उनकी कोई सुन नहीं रहा, उनको इंसान के तौर पर कोई देख नहीं रहा। अगर हम आज भी इनकी जीवनशैली पर नजर डालें तो पाएंगे कि इनकी स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया है। वे आज भी बहुतायत मात्रा में ट्रेनों और बाजारों में गाना बजा कर भीख मांगते नजर आ जाते हैं और इसका

सबसे बड़ा कारण समाज का उनके प्रति नजरिया है। समाज कि मानसिकता अभी भी उनके प्रति रुढ़िवादी बनी हुई है। डॉ. रमाकांत राय ने भी वाङ्ग्मय पत्रिका के एक लेख में इस बात को स्पष्ट करते हुए बताया है कि "हिजड़ा होना प्राकृतिक है, शरीर विज्ञान के दृष्टिकोण से देखें तो यह गुणसूत्रों के असंतुलन से आई एक विशिष्टता है।" लेकिन सामाजिक दृष्टिकोण से देखे जाने के तमाम सामाजिक–ऐतिहासिक उदहारण भरे पड़ें हैं। वर्तमान में भी सुप्रीमकोर्ट के द्वारा किन्नरों को तीसरे लिंग के रूप में मान्यता दिए जाने के बावजूद इनकी सामाजिक स्वीकार्यता और समाज में भागीदारी को लेकर संकट बना हुआ है। किन्नर समुदाय पूरी ताकत से अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है. प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' उपन्यास को पढ़कर एक मुख्य बात और सामने आती है वह यह है कि ऐसे लोगों के पास समाज में अपनी पहचान के साथ ही एक बड़ा संकट अपनी जीविका को लेकर बना रहता है। किन्नरों का जीवन क्या है और कैसे गुजर–बसर होता है, इसी पर आधारित है तीसरी ताली। तीसरी ताली में अकेलापन है, जिसे सभी चरित्रों के जीवन में देखा जा सकता है, समाज में बस उनकी आवाज और तालियाँ ही सुनाई देती है, समाज के लिए वे या तो एक 'विषय' है या 'विशेष', परन्तु व्यक्ति बिल्कुल नहीं है।

निष्कर्ष

किसी भी समाज के विकास के लिए उसके सभी समुदायों, क्षेत्रों, वर्गों, उपवर्गों अर्थात् समाज के प्रत्येक वर्ग का विकास आवश्यक है। जब तक सभी वर्गों, उपवर्गों का विकास नहीं होगा तब तक सम्पूर्ण समाज का विकास नहीं हो सकता। भारत में किन्नर समुदाय पिछड़ा हुआ है, इस वर्ग का शोषण, उत्पीड़न, सामाजिक बहिष्कार होता रहा है। समाज द्वारा इसके विकास के रस्ते में बधाएं खड़ी की गयी हैं, इसी कारण यह वर्ग विकास के पथ पर आगे नहीं बढ़ पाया और दबा कुचला वर्ग बन के रह गया। उसके परिवार ने ही उसे नहीं अपनाया तो समाज ने भी इस वर्ग को दुत्कार दिया। समाज में इस वर्ग का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शारीरिक आदि प्रकार से शोषण होता है, फिर भी इस गंभीर विषय में भारत में अकादमिक शोध बहुत कम हुए हैं और जो शोध हुए भी हैं वे सामाजिक क्षेत्र में न होकर अधिकांशतः चिकित्सीय क्षेत्र में हुए हैं। किन्नर समुदाय के अध्ययन के द्वारा इनकी समस्याओं को जानकर और उन्हें दूर करके ही इस समुदाय का विकास संभव है और मेरा यह अध्ययन इस दिशा में एक कदम मात्र है। मेरे अध्ययन के द्वारा इनकी समस्याओं को समाज के सामने लाने तथा अकादमिक क्षेत्र में समाजशास्त्रीय विवेचना द्वारा इस विषय पर शोध को बढ़ावा देने का एक प्रयास है।

सन्दर्भ

Agrawal, A. (1997)- Genderd bodies : The case of the (third gender) in india- Contributions to Indian Sociology.

Nanda, S. (1999)- Neither Man nor Woman : The Hijras of India- Toronto : Wadsworth Publishing Company.

Sharma, S.K. (2000)- Hijras : The labelled deviance- New Delhi : Gyan Publishing House.

Jami, H. (2005)- Condition and Status of Hijras (Transgender, Transvestites etc.) in pakistan, National Institute of Psychology, Quaid-i-Azam University, Islamabad, pakistan.

Nanda, S. Third Gender : A Qualitalive Study of the EÛperiance of Individuals Who Identify

as Being Neither Man Nor Woman.

Mukherji, R. - Agrawal, Bharat : Unifide Sociology.

Journals :

Sahu, Anil Kumar, Kinnar Vimarsh, Bohal Shodh Manjusha: Kinnar Maha & Visheshank, March 2021(47-50), Vol-13, Issue-3.

Reports :

Rights of Transgender Person Bill, 2014.

Rights of Transgender Person Bill, 2016.

Magazines & News Papers :

Janadesh (Magazine), 23 Oct- 2016

Drishti : Current Affair Today (Magazine), sept 2016, Pg No. 38, 39, 40, 41.

Times of India (News Paper), 23 sept. 2016, Pg. No. 6.

Times of India (News Paper), 30 may 2014.

Internet Surfing :

http://samaytimes.blogspot.in/2010/04/blog-post.html.

http://www.amarujala.com/news/samachar/reflections/editorial/they-have-got-their-right/ www.census2011.co.in/transgender.php.

http:/IndianeÛpress.com/article/lifestyle/fashion/dhwayah-queen-2017-kerala-to-host-its-first-transgender-beauty-contest-in-june-4664241/.

http://www.panjabkesari.in/aapki-kalam-se/news/hijra-community-of-india-733928.

@http://www.apnimaati.com/2018/02/blog-post_90.html\m¾1

डॉ0 अनिल कुमार – देवी प्रसाद

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

श्रमजीवी गिरमिटिया मजदूरों की दास्तानः एक सारगर्भित विवेचन

सार संक्षेप

प्रस्तुत लेख में गिरमिटिया मजदूरों की सामाजिक संघर्षों के विभिन्न सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए एक सारगर्भित विश्लेषण प्रस्तुत करना है। जहां एक तरफ, गिरिराज किशोर द्वारा लिखित उपन्यास 'पहला गिरिमिटिया' के माध्यम से गिरमिटिया मजदूर के लिए आर्थिक दृष्टि से संपन्न लोगों के सामाजिक संघर्षों के कुछ अनछुए पहलुओं से अवगत कराना है। वहीं दूसरी तरफ, प्रस्तुत शोध पत्र में सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा गिरमिटिया समाज (श्रमजीवी मजदूरों) के संघर्षों पर भी प्रकाश डाला गया है। जो कि अनेक सामाजिक–आर्थिक जद्दोजहद के बाद पराई धरती को ही अपनाने में अपनी भलाई समझते हुए, मारीशश, सूरीनाम, त्रिन्दाद, गुयाना, जमैका, फिजी आदि देशों बस गए। आज सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में उनकी महती भागीदारी है तथा छोटे नौकरशाही पदों से लेकर आज वे प्रधानमंत्री जैसे उच्च पदों को भी सुशोभित कर भारत का नाम रोशन कर रहे हैं।

सूचक शब्द : बंधुआ मजदूरी, जाति, महात्मा गांधी, सामाजिक संघर्ष, आजादी,

प्रस्तावना

साधारण शब्दों में, भारत छोड़कर विश्व के दूसरे देशों में जा बसे लोगों को प्रवासी भारतीय कहते हैं। ये विश्व के अनेक देशों में फैले हुए हैं। 48 देशों में रह रहे प्रवासियों की जनसंख्या करीब 2 करोड़ है। यदि हम इतिहास के पन्नों को पलटें तो हमें ज्ञात होता है कि औपनिवेशिक काल के दौरान, हिंदी भाषी बेल्ट से उत्तर भारतीय श्रमिक कुछ अनुबंधों के तहत दूसरे देशों में बेहतर जीवन की तलाश में गए। जिसके कारण इन्हें इंडेंटचर लेबर (गिरमिटिया) के नाम से भी संबोधित किया गया। गिरमिट शब्द अंग्रेजी के 'एग्रीमेंट' शब्द का अपभ्रंश बताया जाता है। जिस कागज पर अंगूठे का निशान लगवाकर हर साल हजारों मजदूर दक्षिण अफ्रीका या अन्य देशों को भेजे जाते थे, उसे मजदूर और मालिक 'गिरमिट' कहते थे। इस दस्तावेज के आधार पर मजदूर गिरमिटिया कहलाते थे (राय, 2017)। यह ज्वलंत मुद्दा को इतिहासकारों तथा अन्य समाजिक चिंतकों के बीच उपेक्षित रहा।

राजनीतिक परिवर्तन

1820 के दशक में यूरोप में कुछ बदला हुआ नव उदार मानवतावाद ने जन्म लिया जिसमें मानव के खरीद–फरोख्त को 1830–1860 के बीच ब्रिटिश, पुर्तगाल तथा फ्रांसिसिओं ने

समाजशास्त्र विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, गचिबोली, हैदराबाद–500046
ईमेलः dpsocio@gmail-com
हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, गचिबोली, हैदराबाद–500046.
ईमेलः anilkumarjeee@gmail.com

अपने–अपने क्षेत्र में गुलामी पर प्रतिबन्ध लगा दिया। जिसके कारण उन्हें कानूनी तरीके से एक नए शोषण का इजाद किया, जिसे अग्रीमेंट (अनुबंध) कहा गया तथा अनुबंध करने वाले इसे स्थानीय भाषा में 'गिरमिट' कहकर संबोधित करते थे। स्थानीय जमींदार इन अनुबंध करने वाले गरीब मजदूरों को हेय दृष्टि से देखते थे तथा कालांतर में ऐसे लोगों को 'गिरमिटिया' कहा जाने लगा।

प्रवजन के उद्देश्य

मनोज सिंह (2017) लिखते हैं कि गुलामी प्रथा के कानूनी रूप से ख़ात्मे के बाद ब्रिटिश व डच उपनिवेश मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना, जमैका, फिजी आदि एक दर्जन देशों में खेती के लिए मजदूरों की कमी हो गई। तब अंग्रेजी हुकूमत ने भारत से क़रीब 12 लाख मजदूरों को इन देशों में भेजा। इनके प्रवजन का प्रमुख कारण प्राथमिक क्षेत्र में श्रम की आपूर्ति करना था। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था (खेती या बागान) में मजदूरों की कमी को पूरा करने के लिए ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान उत्प्रवास की यह प्रक्रिया शुरू की गई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद (कोलोनियल पीरियड) के नियंत्रण के दौरान मजदूरों को ज्यादातर फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद और मॉरीशस जैसे औपनिवेशिक देशों में रखा गया था। क्योंकि ये क्षेत्र चीनी, रबर, चाय और कॉफी जैसी वृक्षारोपण फसलों का उत्पादन करने के लिए अनुकूल जलवायु और मौसम की स्थिति में थे।

आज भी भरतीय जनमानस कई देशों में एक बेहतर जीवन की तलाश में जाता है। आज भी भारतीय मजदूर गल्फ कोपरेशन काउन्सिल (जीसीसी) वाले देशों में जाने के लिए उत्सुक रहता है। इन देशों में जाने वाले लोगों की संख्या दिनों–दिन बढती जा रही है। दुनिया में चीन (लगभग 50 मिलियन) के बाद भारत दूसरा सबसे बड़ा प्रवासी (लगभग 30 मिलियन) देश है। खाड़ी देश दुनिया के प्रमुख प्रवास गलियारों में से एक हैं। जिसकी एक झलक नीचे दिए गए टेबल में दी गई है–

टेबल (1): जीसीसी देशों में भारतीय प्रवासी

क्रं.सं.	देश	एन.आर.आई. या प्रवासी भारतीय	पी.आई.ओ.	कुल प्रवासी भारतीय (मिलियन में)
1.	सऊदी अरब	2800000	13	2 |800013
2.	युएई	2000000	2349	2 |002349
3.	कुवैत	758615	1096	|759711
4.	ओमान	707850	880	|708730
5.	क्वातार	600000	677	|600677
6.	बहरीन	350000	2500	|352500
	योग	**7216465**	**7515**	**7 |223980**

स्रोतः एमओआईओ, 2015

गिरमिटिया समुदाय का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उदाहरण

मॉरीशस की आबादी में गिरमिटिया (प्रवासी भारतीय) लगभग 68 प्रतिशत हैं। इनमें से आधे से ज्यादा उत्तर भारत के (लगभग 52 प्रतिशत) लोग हैं, जिनके पूर्वज भोजपुरी बोलते थे। यह वही प्रवासी उत्तर भारतीय श्रमिक हैं, जिनके पूर्वज प्रतिकूल परिस्थितियों में काम करते थे। लेकिन यह मॉरीशस की सहिष्णुता भी थी कि गिरमिटिया भारतीयों को पनपने और बढ़ने का मौका दिया (ओझा, 2019)। इसका एक उदाहरण माननीय शिवसागर रामगुलाम हैं, जो मॉरिशस को ब्रिटिश दासता से मुक्त करने के बाद पहले प्रधानमंत्री बने थे। उन्होंने मॉरीशस में राष्ट्रपिता का दर्जा प्राप्त किया।

इंडेंचरड श्रमिक के कुछ अन्य सामाजिक–आर्थिक पहलू

स्लेव (गुलाम) पैसे का भुगतान करने से मुक्त नहीं हो सकता, लेकिन इंडेंचरड (गिरमिटिया) लोगों के साथ केवल इतना था कि उन्हें (सिर्फ कागजी रूप से) पांच साल के बाद रिहा किया जा सकता था। गिरमिटिया को छूट दी जा सकती थी, लेकिन भारत लौटने के लिए उसके पास पैसे नही रहता था। उनके पास अपने मालिक के साथ काम करने या किसी अन्य मालिक द्वारा गिरफ्तार किए जाने के अलावा कोई विकल्प नही था। जरूरत पड़ने पर इन्हें भी बेचा गया। उन्हें जबरन काम करने के लिए यातना दी जा सकती थी। आम तौर पर, गिरमिटिया महिला या पुरुष को शादी करने की अनुमति नहीं थी। यहां तक कि अगर कुछ गिरमिटिया नियमों को तोड़कर विवाह किए, तो उनके ऊपर कड़े नियम लागू किए गए।

औरतों को किसी के हाथ बेंचा जाता, तो बच्चों को किसी और के हाथों बेचा जाता था। लगभग चालीस प्रतिशत महिलाएं गिरमिटिया पुरुषों के साथ आती थीं। युवतियों को ब्रिटिश मालिकों द्वारा 'गुलाम' की तरह रखा जाता था। शारीरिक आकर्षण समाप्त हो जाने पर इन महिलाओं को मजदूरों के हवाले कर दिया जाता था। गिरमिटिया के बच्चे मालिकों की संपत्ति माने जाते थे। गिरमिटिया लोगों को केवल खाने योग्य भोजन और कपड़े दिए जाते थे। वे शिक्षा, मनोरंजन आदि जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित थे। वे प्रतिदिन 12 से 18 घंटे कड़ी मेहनत करते थे। अमानवीय परिस्थितियों में काम करते हुए हर साल सैकड़ों मजदूरों की अकाल मृत्यु हो जाती थी तथा मालिकों के अत्याचारों की कोई सुनवाई नहीं होती थी।

फिजी गिरमिटिया का पहला ठिकाना था। 18 वीं शताब्दी में गिरमिटिया मजदूरों की खेप फिजी पहुंच गई थी। भारतीय मजदूरों को गन्ने के खेतों में काम करने के लिए ले जाया गया, ताकि इंग्लैंड की स्थानीय कृषि संस्कृति को बचाया जा सके और यूरोपीय मालिकों को भी फायदा हो सके। आज, फिजी में 9 लाख की आबादी में भारतीय मूल के साढ़े तीन लाख से अधिक लोग हैं, जो की विभिन्न उद्योग धंधे में लगे हैं (बिसराम, 2016)। यहां तक कि फिजी की भाषा भी फिजियन है।

टेबल (2): औपनिवेशिक काल के दौरान फिजी में उत्तर प्रदेश के गिरमिटिया मजदूरों की संख्या

क्र. सं.	जिला	लोगों की संख्या	क्रं. सं.	जिला	लोगों की संख्या
1	बस्ती	6,415	12	बाराबंकी	769
2	गोंडा	3,489	13	बहराईच	750
3	फैजाबाद	2329	14	वाराणसी	672
4	सुल्तानपुर	1747	15	लखनऊ	613
5	आजमगढ़	1716	16	कानपूर	583
6	गोरखपुर	1683	17	उन्नाव	556
7	प्रयागराज	1218	18	आगरा	549
8	जौनपुर	1188	19	मिर्जापुर	527
9	गाजीपुर	1127		योग =	28012
10	रायबरैली	1087			
11	प्रतापगढ़	891			

स्रोतः लाल, बी.वी. (2000)

पढ़ा–लिखा गिरिमिटिया (गांधी) की दक्षिण अफ्रीका का यात्रा वृतांत

वरिष्ठ लेखक गिरिराज किशोर द्वारा लिखित उपन्यास 'पहला गिरिमिटिया' मोहनदास करम चन्द गांधी के दक्षिण अफ्रीकी संघर्ष की कहानी है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक हमें तत्कालीन राजनीतक परिस्थिति से अवगत कराता है। गांधी जी पहली बार ब्रिटेन की यात्रा उस समय करते हैं, जब वे वकालत की पढ़ाई करना चाहते थे। परिवार के लोगों ने इजाजत तो दे दी, किन्तु समाज ने बहिष्कृत कर दिया। बहन–बहनोई के द्वारा किये गये बर्ताव ने गांधी को समाज का पहला पाठ पढ़ाया था। तभी से भारतीय समाज के प्रति उनकी आस्था बढ़ती गयी। ब्रिटेन से वकालत करके लौटे तो परिवार को उनसे बड़ी उम्मीद जगी, किन्तु कुछ ही दिनों बाद निराशा हाथ लगी, जब मोहनदास वकालत के पेशे में बुरी तरह असफल हो गये। बड़े भाई लक्ष्मीदास ने अफ्रीकी व्यवसायी अब्दुल करीम जावेरी के निकट सहयोगी दादा अब्दुल्ला के मुकदमें की पैरवी के लिए अफ्रीका जाने की सलाह दिया। मजबूर और बेरोजगार मोहनदास करम चन्द गांधी एक साल के अनुबंध पर अफ्रीका की यात्रा पर निकल पड़े।

यात्रा की तकलीफों को सहते वे 8 मार्च 1893 ई० को एक अनजान देश में उतर गए। पूरी तरह से विदेशी रंग में रंगा मोहनदास अलग लग रहा था। तट पर आगवानी करने के लिए दादा अब्दुल्ला स्वयं मैजूद थे। उन्होंने पता लगा रखा था कि मिस्टर गांधी का हुलिया कैसा होगा? टुरो जहाज से उतरते दादा ने आगे बढ़कर हाथ मिलाया और अस्फुट शब्दों में कहा– 'इस सफेद हाथी का मैं क्या करूं' मोहनदास ने सुना और मुस्कुरा कर रह गए। दादा के साथ अफ्रीका की बड़ी हस्ती पारसी जी रुस्तम और दो लोग और आये थे।

दादा अब्दुल्ला नेटाल के सबसे बड़े भारतीय व्यवसायी थे। उनका व्यवसाय कई सारे देशों के साथ चलता था। दादा को पहला भारतीय सिंदबाद जहाजी कहा जाता था। वे तीस साल पहले मारिशस से अफ्रीका आये थे। कहते हैं कि इन दिनों सफलता, दादा की पालतू कबूतर बन गयी थी। आठ से दस पानी के जहाज थे जो अब्दुल्ला एंड कंपनी के कार्य को संचालित करते थे। दादा अपना व्यवसाय ब्रिटेन, स्पेन, पुर्तगाल, अमेरिका, कनाडा, भारत, मारिशस, सूरीनाम जैसे देशों के साथ करते थे।

उन्ही के रिश्तेदार प्रिटोरिया के सेठ तैयब जी थे। जो दूसरे सबसे बड़े व्यवसायी थे। दादा अब्दुल्ला और तैयब जी के बीच व्यवसाय में लेन–देन के चलते मुकदमा चल रहा था। जिसका निर्णय होना मुश्किल हो चला था। दोनों को अफ्रीकी अदालतों में बहुत पैसे खर्च करने पर भी न्याय न मिल सका था। तैयब जी के ऊपर दादा के चालीस हजार पौंड की रकम थी जिसे वे देना नहीं चाहते थे। दादा ने मोहनदास को सारी बातों से अवगत करा दिया। दादा अब्दुल्ला मोहनदास के कहने पर दूसरे दिन नेटाल के कोर्ट रूम को दिखाने चले गए थे। जिस समय वे दोनों पहुँचे किसी मुकदमे की सुनवाई चल रही थी। दादा अब्दुल्ला और गाँधी जी जाकर एक कोने में बैठ गए। कोर्ट मजिस्ट्रेट की निगाह बार–बार मोहनदास की पगड़ी पर चली जाती थी। मजिस्ट्रेट ने हाथ उठाकर कहा– 'नौजवान तुम अपनी पगड़ी उतार दो' गाँधी जी विरोध करते हुए कोर्टरूम से उठकर बाहर चले आए। यह बात गाँधी जी को चुभ गयी थी। पगड़ी गाँधीजी की नहीं उनके देश की उछाली गयी थी। उन्होंने मसौदा तैयार करके 'नेटाल मरक्युरी' अखबार के पास भेज दिया। दूसरे दिन के अखबार मोहनदास की खबरों से रंगे पड़े थे। अपनी तरह की यह पहली घटना थी। गाँधी का यह अफ्रीका के सामाजिक–राजनीतिक तालाब में फेंका गया पहला कंकण था। इस घटना के बाद दादा अब्दुल्ला गाँधी जी के व्यक्तित्त्व से खासा प्रभावित हुए थे, उन्होंने यह समझ लिया था कि उन्होंने मोहनदास का सही चुनाव किया है।

दादा अब्दुल्ला दूरदर्शी व्यक्ति थे। उन्होंने प्रिटोरिया के बारे में मोहनदास को विस्तार से बता दिया था। और उनके वहाँ जाने के लिए ट्रेन के प्रथम श्रेणी के टिकट की व्यवस्था भी करवा दी थी। अब्दुल्ला ने मोहनदास को हिदायत दी थी कि यहाँ सिर्फ गोरे ही प्रथम श्रेणी में यात्रा करते हैं और किसी भारतीय को प्रथम श्रेणी में पांव रखने का प्रावधान (परमीशन) नही है। इसके वाबजूद मोहनदास ने प्रथम श्रेणी में जाने का निश्चय किया।

रेलगाड़ी में प्रथम सीख

नेटाल की राजधानी पीटर मेरित्ज्बर्ग थी, जहां से प्रिटोरिया के लिए जाया जाता था। मोहनदास को छोड़ने दादा स्वयं आये थे। ट्रेन की बोगी में बैठने से पहले दादा ने गांधी को सारी हालात से परिचय करा दिया था कि यहाँ सिर्फ गोरे ही 'फ्रस्ट क्लास' (प्रथम श्रेणी) में यात्रा करते हैं, 'संभल के जाना'। हुआ वही जिसका अब्दुल्ला को डर था। गोरों ने मेरित्ज्बर्ग में गाँधी को धक्के मार कर बाहर फेंक दिया था। जून के महीने में अफ्रीका में बहुत ठण्ड पड़ती है। गांधी का सामान स्टेशन मास्टर के पास जमा करा दिया गया और गांधी तेज सर्द हवाओं में बीच खुले आसमान के आगोश में रात काटने पर मजबूर हो गए थे। इस बात ने गांधी के आत्मसम्मान को पूरी तरीके से झकझोर दिया। हालाँकि किसी कुली (दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को कुली कहा जाता था) को ऐसे अपमानित करना उनके लिए आम बात थी। खुले आसमान को देखते–देखते

गांधी की आँखें लग गई तथा कुछ भारतीय वहाँ पर आये और सोते हुए गांधी के ऊपर कम्बल डाल कर चले गए।

राजनीतिक पहल

दादा अब्दुल्ला ने सुना तो मेरित्ज्बर्ग के भारतीय व्यवसाइयों को तार पहुंचा दिया और रेल विभाग से पैरवी करके उसी टिकट पर जोहांसबर्ग भेजने के लिए दूसरे दिन की गाड़ी मुकर्रर करवाई। गांधी के पास वहाँ के व्यवसाइयों से बात करने का समय मिल गया था। गांधी ने रेल विभाग को चिट्ठी लिखकर बताया कि वह बैरिस्टर लन्दन से पास हैं, साम्राज्ञी की सरकार में ऐसा तो कोई आदेश नही है कि किसी को इस तरह रंगभेद का शिकार होना पड़े। गांधी का खत जब रेल विभाग में गया तो वहाँ काफी उथल–पुथल मच गयी। अंततः यह तय हुआ कि साफ–सुथरे रहने वाले भारतीय ही फ्रस्ट क्लास में अब यात्रा कर सकते हैं। अफ्रीकी अखबारों के लिए यह दूसरी सबसे अजूबे वाली बात हुई थी जिसकी चर्चा ने सब अखबारों में खूब धमाल मचाया।

जोहान्सबर्ग से प्रिटोरिया ट्रेन नहीं जाती थी। इसलिए आगे की यात्रा बग्घी से तय करनी थी। इस सफर में गांधी को एक गोरे यात्री ने बुरी तरह पीट दिया। प्रतिक्रिया में, दुबले–पतले गांधी ने उसे दूसरा गाल बढ़ा दिया था और कहा कि 'इस गाल पर भी आप मार सकते हैं'! जिससे वह गोरा बहुत शर्मिंदा हुआ था। यहीं से गाँधीजी के भीतर अन्याय से खिलाफ 'अहिंसा' का विचार आया तथा बिना हथियार लड़ने की शक्ति मिली थी। आगे की यात्रा में दादा का तार आगे–आगे मोहनदास पीछे–पीछे चलते थे।

सेठ अब्दुल्ला की तरफ से नामित वकील से जब गाँधी मिलने पहुँचे तो देखा कि यह वकील दोनों सेठों के झगड़े की ओर ध्यान न देकर ईसाई धर्म के प्रचार का कार्य ज्यादा महत्त्वपूर्ण मानता है। अब्दुल्ला को तार देकर अनुमति ले ली कि वह सेठ तैयब जी से मिलना चाहते हैं। वे सेठ तैयब जी के पास पहुँचे और उनसे तरह–तरह की बातों के बीच मुकदमे की बात भी कर बैठे और सारी स्थिति सामने रख दी। सेठ तैयब ने पहले तो इधर–उधर की बात की किन्तु गाँधी के तर्कों से परास्त हो गए और यह निर्णय लिया गया कि दोनों के बीच आपसी समझौता हो जाय। दोनों सेठों को यह यकीन नहीं हो रहा था कि वास्तव में ऐसा भी हो सकता है। फैसला हुआ सेठ तैयब पर सैंतीस हजार पौंड का उधार बच रहा था। सेठ उद्विग्न हो उठा, गाँधी ने दोनों परिवारों के बीच यह भी करार करवाया कि तैयब सेठ बकाये की रकम किस्त में देंगे जिससे उनको दिवालिया होने से बचाया जा सके। बात मान ली गयी और दोनों रिश्तेदार फिर से एक हो गए।

राजनीतिक हलचल एवं कुछ अन्य तथ्य

गाँधी साल भर के एग्रीमेंट (जिसे स्थानीय भाषा में गिरमिट कहा जाता था) पर अफ्रीका आए थे। वे इस मायने में पहले गिरमिटिया थे, जिन्होंने अपना अनुबंध (गिरमिट) सफलता पूर्वक पूरा किया था। सालभर में गाँधी यहाँ के भारतीयों को कुछ ही जान पाए थे। जितना जाना था, उसका सार यही था कि वे यहाँ भारतीय बहुत ही नारकीय जीवन व्यतीत करते थे। सालभर जो मुकदमा चला था वह भी पूरा हो चला था। गाँधी की वापसी की तैयारी दादा अब्दुल्ला के घर पर नेटाल में हुई थी। बहुत सारे मेहमानों के बीच गाँधी का गुणगान करते दादा न थकते थे। खान–पान की मेज पर उस दिन का रखा अखबार देखा तो गाँधी चौंक पड़े। लोगों ने पूछा क्या

हुआ? तो उन्होंने बताया कि नेटाल संसद में 'भारतीय मताधिकार बिल' पेश हो रहा है, तफसील से जानकारी ली तो स्थिति साफ हो गयी कि यह कानून बनाकर भारतीय लोगों को उनके अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। सारे व्यवसाइयों ने निर्णय किया कि इसकी लड़ाई गाँधी के निर्देशन में लड़ी जायेगी, मगर गाँधी का करार तो खत्म हो गया था। दादा अब्दुल्ला एक नंबर के कांइयाँ आदमी थे। उन्होंने चोट मार दी कि गाँधी भाई का अनुबंध खत्म हो गया तो इनके बारे में भी कुछ ध्यान दिया जाय। लोगों ने बात समझी और गाँधी को एक स्वर से अफ्रीका में काम देने की बात सामने रखी।

मताधिकार और राजनीतिक मसौदे

गाँधी ने बहुत से दस्तावेजों को पढ़ा, बुजुर्ग लोगों से बात की और मताधिकार के बारे में जानकारी हासिल की। आनन–फानन में सरकार के खिलाफ मसौदा तैयार किया गया और नेटाल में रह रहे दस हजार हस्ताक्षर एकत्र कर लिए। गाँधी को पहली बार विभिन्न भाषाओं में लिखे शब्दों को देखकर लगा कि वो हिन्दुस्तान में अपनों के बीच हैं। सौ पृष्ठों का मसौदा जब सरकार के सामने पेश हुआ तो संसद अध्यक्ष हैरान रह गए। किन्तु तब तक देर हो गयी थी और कानून की आगे की कार्यवाही हेतु लन्दन को इत्तिला कर दिया गया था। मोहनदास ने दूसरा मसौदा तैयार करके साम्राज्ञी के पास लन्दन भेज दिया। बहुत कड़े संघर्ष के बाद बिल को निरस्त कर दिया गया तो भारतीय समुदाय में खुशी का ठिकाना न रहा, तथा वहाँ के अखबारों में और गोरे समुदाय में भूचाल आ गया।

राजनीतिक उठापटक

भारतीय इतिहास में गदर को एक रेखा मान लें तो यहाँ से दुनिया के बारे में स्थिति साफ हो जाती है। इस समय तक संसार में दास और गुलाम बनाकर रखने की लम्बी फेहरिस्त मिलती है। इसी तरह अमरीका को ब्रिटिश हुकूमत ने गुलाम बनाया तो वहाँ के ढाई लाख रेड इंडियनों को मौत के घाट उतार दिया गया। बचे हुए अश्वेत समुदाय को गुलाम बनाकर खरीद–फरोख्त का धंधा शुरू किया गया। उन्हीं अश्वेतों के द्वारा अफ्रीकी लोगों की पहचान बतायी जाती है। ये लोग वतनी कहे जाते थे। जब गोरे लोग अफ्रीकी धरती पर आये तो यहाँ की खूबसूरती और उपजाऊ जमीन देखकर इस रीझ गये। उन लोगों ने अश्वेत अफ्रीकी लोगों से कृषि कार्य हेतु मजदूर उपलब्ध कराने की मांग की तो साफ मना कर दिया गया। अफ्रीकी उस समय कबीलों में रहा करते थे। वे अपने सरदार की बात को भगवान् की लेखनी मानते हैं। गोरा समुदाय इनसे कोई काम लेने में नाकाम रहा, तथा उन्हें उल्टे यह भय सताता रहा कि इनके साथ जबरदस्ती की गयी तो परिणाम उल्टा भी हो सकता है।

भारतीय मजदूरों का काला अध्याय

अफ्रीकी अंग्रेजों ने लन्दन को खत लिखकर जमीनी हालात से रूबरू कराया और माँग की कि ब्रिटिश–भारत सरकार से करार करके मजदूर भेजे जायें। ब्रिटिश सरकार ने माँग मंजूर कर लिया। किन्तु अफ्रीका के गोरों में इस बात को लेकर उठा–पटक जारी थी कि बाहरी मजदूर न बुलाया जाय। किन्तु बाद में सर्वमान्य निर्णय यही लिया गया कि मजदूर आने चाहिए। जिससे कृषि कार्य को बढ़ावा मिले और अफ्रीका के कबीलों को अच्छा जवाब भी दे दिया जाय।

सहमती के पाँच साल बाद 1859 ई० में भारतीय मजदूरों का पहला जत्था लगभग साढ़े तीन सौ लोग इकट्ठे हुए और कलकत्ता बंदरगाह से हिन्द महासागर के रास्ते अफ्रीका को चल पड़े थे। अनेक मुश्किलात का सामना करते हुए जब वे अफ्रीका की सरजमीं पर पहुँचे तो उन्हें पछतावा हुआ और अपने को बुरी तरह फँसा हुआ पाया। अब क्या करें आगे कुआँ पीछे खाई की हालत हो गयी थी। सुना था कि यहाँ बिना खाए कोई नहीं सोता, कहाँ बिना खाए हफ्तों गुजर जाते थे।

मानवाधिकार के लिए लड़ाई

गांधी ने सारे रिकार्ड्स देखे तो दंग रह गये थे। पाँच साल का एग्रीमेंट उनमें भी तरह–तरह की शर्तें कुल मिलाकर उन्हें सदा के लिए गुलामों से भी बदतर जीवन दिया जा रहा था। विभिन्न प्रकार की बंदिशें लगा दी गयी थीं। इन्हें कुली (भार वाहक) नाम से पुकारा जाता था। गांधी ने मजदूरों के मानवाधिकार के लिए लडाई छेड़ दी और उन्हें सफलता भी मिली। सरकार गाँधी के संघर्षों में बौखला गयी तथा संसद में नया कानून पेश किया कि जितने गिरमिट से मुक्त हुए भारतीय हैं उनको नेटाल में रहना हो तो पच्चीस पौंड का 'पोल–टैक्स' (प्रति व्यक्ति) देना पड़ेगा। भारतीय समुदाय ने इसका भी विरोध किया और गाँधी ने ब्रिटेन की महारानी को खत लिखा तथा साथ ही भारतीय लोगों से इसका विरोध करवाने के लिए कुछ लोग भारत के लिए चल पड़े। उधर नेटाल सरकार की ओर से दो प्रतिनिधि भारतीय गवर्नर लार्ड एल्गिन से मुलाकात की। इधर गाँधी ने देश के वरिष्ठ लोगों–बाल गंगाधर तिलक, गोखले, बदरुद्दीन तैयब, महादेव गोविन्द रानाडे, सर फिरोज मेहता, भंडारकर से मुलाकात करके हालात के बारे में जानकारी दी। एक लम्बी लड़ाई के बाद यहाँ भी नेटाल सरकार पराजित हुई।

अफ्रीकी भारतीयों में आजादी का सूरज

एड्वेंचर्ड कानून, एशियाटिक कानून, जूलू विद्रोह, आदि जैसे भयानक तथा काले कानून और परिस्थितियों से टकराते विजय और पराजय का स्वाद चखते सत्य व अहिंसा के द्वारा भारतीय लोगों को एकता के सूत्र में बाँधकर मोहनदास इक्कीस वर्ष के भीषण संघर्ष के बाद आजादी का सूरज अफ्रीकी भारतीयों को सौंप कर वापस भारत लौट आये। अफ्रीका छोड़ते हुए वहाँ के लोगों की तरफ से सरकार को सन्देश दिया कि– 'मेरे देश के ये सच्चे, बेबस, प्यार के भूखे और गरीब लोग हैं! इनके प्रति इंसानी नजरिया रखें...उन्हें समझने की कोशिश करें...इनके दिलों में झाँककर देखें। आपकी खानों में हीरा है, इनके दिल हीरे हैं। बस पहचानने की जरूरत है' (पहला गिरमिटिया, 902)। दुसरे शब्दों में, गाँधी के नेतृत्व में स्थानीय भारतीय गिरमिटिया मजदूरों के भारी विरोध के कारण उस समझौते और अनुबंध को 1917 में रोक दिया गया। इस सन्दर्भ में जन–लोकप्रिय ये दो पंक्तियाँ अपने आप में ही बहुत कुछ कह जाती हैं– "आजादी का उड़ा तिरंगा बापू चलते चले गये। लिया स्वराज्य अहिंसा से इतिहास बदलते चले गये।"

गिरमिटिया मजदूरों की सामाजिक दास्ताँ के कुछ अन्य पहलू

जाति चेतना

मॉरीशस, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद, फिजी में बड़ी संख्या में गिरमिटिया मजदूर बिहार

और उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे तथा जिसमें ज्यादातर दलित और पिछड़े वर्ग से थे। पांच साल के अनुबंध की समाप्ति के बाद, अधिकांश गिरमिटिया उन्हीं देशों में बस गए, लेकिन अपने देश और गांव लौटने का पूरा जीवन उन्होंने सपना देखा। उनमें से कुछ को वापस लौटने के लिए मौका मिला, लेकिन वहां से वापस आने के बाद वे अपने गांव और परिवार को नहीं पा सके। इन देशों में बसे इन मजदूरों का निवास स्थान आज भी जाति समूह पर आधारित है, क्योंकि जाति की धारणा अभी भी उनके बीच मौजूद है।

गिरमिटिया तथा लोकगीत

भारत में लोकगीत दलित–बहुजन जमात के साथ हमेशा से एक अभिन्न अंग रहा है और अधिकांश गिरमिटिया भी इसी श्रमजीवी समुदाय से था। इसलिए, वाद्य–यंत्र जैसे ढोलक, हारमोनियम आदि के साथ धनताल को उनकी सांस्कृतिक प्रथाओं में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, डंडाटाल पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक संगीत वाद्ययंत्र है, जिसे अब परिष्कृत रूप में सूरीनाम में परिष्कृत किया गया है। पूर्वी उत्तर प्रदेश से सुरीनाम जाने वाले गिरमिटिया कार्यकर्ता भी इस यंत्र को अपने साथ ले गए थे। एक प्रसिद्द रंगकर्मी राजमोहन पुराने डंडाताल पर के बारे में बताते हैं कि लोक कलाकार जीवनलाल और उनके साथी जो गाजीपुर से धोबिया नृत्य करने के लिए आए थे, उनका यह डांडाटाल था। उन्होंने डंडाटाल को अपने जीवन की एक बड़ी उपलब्धि के रूप में देखने का वर्णन किया और कहा कि वह सूरीनाम जाएंगे और लोगों को इसकी एक तस्वीर दिखाएंगे (प्रसाद, 2006)।

सुरेश ऋतुपर्ण लिखते हैं कि पराई धरती पर भारत की मिटटी की सोंधी सुगंध को मूर्तरूप प्रदान कर देने वाले स्वर विभिन्न लोकगीतों में व्यंजित हुए हैं, जिसे इन पंक्तियों (प्रवासी आल्हा) के माध्यम से समझा जा सकता है–

"देश भी छूटा, रैइयत छूटी, छूटा सारा कुटुंब हमार।

मैया छूटी, भौजी छूटी, बाबा दद्दा सब गए छूट...पुनः मिलन हमरौ होई जइहै रात भयंकर बीत।"

वेदना गीत

"एक राम मोर गइले विदेसवा, सकल दुखवा देई गईले हो राम।

ए राम सासु ननदिया बिरही बोलेली, केकर कमाई खइबू हो राम (68)। ।"

बिरहा

सुरज लाल को घेरे बदरिया, घेरे बदरिया, घेरे बदरिया, घेरे बदरिया हो।

बकी लंका घेरे हनुमान... तैसेई ग्वालिन को कन्हैया, घेरे कन्हैया, घेरे कन्हैया हो।"

टेबल (3): श्रमिक वर्ग में प्रचलित लोकगीत तथा जातीय पहचान

जातियां	लोकगीत
अहीर / यादव	बिरहा, लोरिक, फरुआहि
कुम्हार और कहार	कहरवा
पासी / पासवान	पासिओटा
मुसहर / बनमानुष	दीना–भद्री गीत
बढई	गोपी ठाकुर

प्रसाद एवं यादव (2017)

उपरोक्त तालिका में विभिन्न जातियों के बीच प्रचलित लोकगीतों का वर्णन किया गया है। आज भी उत्तर भारत के ग्रामीण क्षेत्र तथा फिजी व सूरीनाम जैसे देशों में अहीर, पासी, गड़ेरिया, धोबी तथा अन्य श्रमजीवी जातियों में खासकर प्रचलित इन स्थानीय सम्प्रेषण की विधाओं को गायक अपने अन्य पांच या छह साथियों (गायक–मंडली) के साथ कुछ वाद्य–यंत्रों– ढोलक, हारमोनियम, घुंघरू और करताल आदि की सहायता से प्रस्तुतीकरण करता है (पांडेय, 2019; प्रसाद एवं यादव 2017)। प्रमुख समाजशास्त्रियों– मिलटन सिंगर एवं राबर्ट रेड्फील्ड ने इन श्रमजीवी वर्ग की लोकगीतों (विरहा, नकटा, नौटंकी, मल्हार आदि) को "लिटिल ट्रेडिशन" की अवधारणा में गुंफित किया। ये गायन व सम्प्रेषण की लोक विधाएं मौखिक होती हैं तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में लयबद्ध होकर गीतों के माध्यम से प्रवाहित होती रहती हैं। इन गीतों में आम जनमानस की अपबीती से लेकर दैनिक जीवन की जद्दोजहद तक का सजीव चित्रण होता है (सिंह, 2016)। होली, दीपावली, पंचमी, रक्षा बंधन जैसे त्यौहार आज भी उनके बीच लोकप्रिय हैं (हिंदुस्तान, 2010)।

निष्कर्ष

जर्मन चिंतक कार्ल मार्क्स का मानना था कि मजदूर वर्ग का शोषण हमेशा से शासक तथा पूंजीपती वर्ग करता आया है। मार्क्स का संघर्ष सिद्धांत हमें धरातल पर भी नजर आता है। हालाँकि भारतीय सन्दर्भ में जाति व्यवस्था को भी इस सिद्धांत के साथ जोड़ना होगा। अन्यथा श्रमजीवी वर्ग की असली पीड़ा को समझने में हम विफल हो जायेंगे। सर्वहारा विवेकानंद शर्मा कृत 'अनजान क्षितिज की ओर' उपन्यास का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होता है कि इन बहुजन जातियों को फंसाने के लिए अरकाटिओं (एजेंट के अधीनस्थ दलाल) का जाल बिछा हुआ था। जो प्रायः स्थानीय प्रभु जातियों से थे। इनके जाल में फंसकर दलित–पिछड़ा समाज 'अनुबंध' करने पर मजबूर हो जाता था। उच्च जाति के अरकाटिओं का मुख्य कार्य पीड़ित–शोषित व दबी–कुचली जातियों को भविष्य के सुनहरे सपनों को दिखाकर तथा बाझ की तरह झपट्टा मारकर शिकार (मजदूरों) को एजेंट तक पहुँचाना था। यात्रा प्रायः समुद्री जहाज से होती थी। कई मजदूर रास्ते में मर जाते थे और उन्हें जानवर की तरह समुद्र में फेंक दिया जाता था। जहाँ एक तरफ, भारत का यह श्रमिक वर्ग उच्च जातिओं के उत्पीणन से मर रहा था और उसे 'कफन'

भी नसीब नहीं हो पाती थी। उन सामाजिक परिस्थितिओं को साहित्यकार प्रेमचंद्र ने अपनी कृतियों में बखूबी चित्रित किया है।

हालाँकि थका–हारा यह कमेरा वर्ग हमेशा उपजातियों में बंटा हुआ था। जिसके फलस्वरूप इसका शारीरिक एवं मानसिक शोषण उच्च–जातियों के द्वारा होता रहा। इस संदर्भ में माननीय कांशीराम कहते थे कि 'बहुजन समाज की परिस्थिति दरबे में बंद उन मुर्गों की तरह है, जो कसाई के कैद में तो हैं पर उन्हें दूसरे के दर्द से लेना–देना नही है। जिस मुर्गे की कटने की बारी आती है, सिर्फ वही मुर्गा बचाओ–बचाओ चिल्लाता है और अन्य बचे हुए मुर्गे चुपचाप दाना–चुनने (अपनी स्वार्थपूर्ति) में लगे रहते हैं। उसे यह मालूम नहीं रहता कि एक दिन उसका भी नंबर आने वाला है' (प्रसाद, 2020)।

जैसे कि यह विदित है कि श्रमजीवी वर्ग हमेशा नई चुनौतिओं से सामना करने के लिए तैयार रहता है। वह कभी हार मानकर नहीं बैठता है और जो थक–हार कर यथा–स्थितिवाद को स्वीकार नहीं करते उन्हें मंजिल तक पहुँचाने वाले सारथी मिल ही जाते हैं। महापुरुषों जार्ज वाशिंगटन, अब्राहम लिंकन, मार्टिन लूथर किंग, गांधी, नेल्सन मंडेला, भीमराव अंबेडकर आदि ने इसे सिद्ध भी किया तथा समय–समय पर इनके विचार लोगों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित भी करते रहते हैं। बहुजन समाज के गिरमिटिया मजदूरों ने भी हर परिस्थिति में आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त किया और तिनका–तिनका जोड़कर इन देशों में जमीन–जायदात भी खरीदे तथा इतिहास के काले पन्नों में अपना स्वर्णिम नाम अंकित कर दिया (ओझा, 2019)।

गिरमिटिया मजदूरों के अनेक सामाजिक–आर्थिक व सांस्कृतिक पक्षों पर प्रकाश डालने के साथ ही साथ मोहनदास के बरगदमयी व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाला 'पहला गिरमिटिया' एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है। जो विभिन्न घटनाओं को अपने में समेटे हुए इस श्रमजीवी वर्ग के दैनिक जद्दोजहद का सजीव चित्रण करता है और यह बताने में सफल रहा कि किस तरह इक्कीस वर्ष के लम्बे संघर्ष के बाद अफ्रीकी भारतीयों को आजादी सौंप कर भारत को विदेशी शासन से आजाद कराने का संकल्प लेकर सन उन्नीस सौ पंद्रह (1915) में अफ्रीकी सरजमीं को सदा के लिए मोहन दास करमचन्द 'गांधी' जी अलविदा कहकर अपनी मात्रभूमि पर वापस लौट आये। इसी क्रम में रूहानी खुशबू के अल्फाजों के साथ अपनी बातों को अल्पविराम देना चाहूँगा–

"बुरा होना मुश्किल नहीं/कवायद तो अच्छाई बचने की है/सुनाई देंगी खामोशियाँ भी/देर बस कोहराम मचने की है/टूटे रूठे रिश्ते फिर हो जाएँ गुलजार/कोशिश बस खामियां पचाने की है/जिस्म से इश्क हो तो रूहानियत नदारद/मशक्कत तो रूह में जँचाने की है/बहुत झूमे औरों की तरन्नुम पे/अब जिद अपनी ताल पे नाचने की है/मुद्दतों से नजरअंदाज किया खुद को खुशबू/आरजू अब अपने खिलाफ साजिशें रचाने की है"।

संदर्भ

ओझा, एस.डी. (2019) गिरमिटिया मजदूर जो यूपी और बिहार से निकलकर फिजी, मारीशस, सूरीनाम और त्रिनीदाद आदि में छा गए, Retrieved on 11/02/2021 from http://marginalised in/2019/04/15/girmitiya-up-bihar-fiji-mauritius-surinam/

किशोर, गिरिराज (2011) पहला गिरमिटिया। भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।

मनोज सिंह (2017) सूरीनाम में सरनामी भोजपुरी का सुरीला गिरमिटिया, http://thewirehindi.com/6917/rajmohan-a-girmitiya-majdoor-musician-in-suriname/

पांडेय, राकेश (2019) गिरमिटिया मजदूरों को समर्पित होगा लोक रंग, https://www-amarujala.com/uttar-pradesh/kushinagar/11554228813-kushinagar-news

प्रसाद, देवी – यादव सविता (2017) ग्रामीण परिवेश में बिरहा लोकगीतः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण. भारतीय समाजशास्त्र समीक्षा, अंक 4 (2), जुलाई–दिसम्बर.

प्रसाद, देवी (2020) बहुजन जमात के विकास में 'अम्बेडकरवाद' की प्रासंगिकता. हाशिये की आवाज, अंक 15 (4).

प्रसाद, राजेंद्र (2006) Tears in Paradise – Suffering and Struggles of Indians in Fiji 1879-2004". गलैद प्रकाशन, नई दिल्ली.

बिसराम, विष्णु (2016) गिरमिटिया मजदूर बिहारी उद्यमिता के प्रतीक, Retrieved on 15/01/2021 from https://www.prabhatkhabar.com/news/bihar/story/850429.html

राय, ललित (2017) जानें, भारत और मॉरीशस के रिश्ते में 'गिरमिटिया' क्यों है महत्वपूर्ण, Retrieved on 15/01/2021 from https://www.jagran.com/news/national-jagran-special-girmitia-is-bonding-factor-in-india-mauritius-relations-16952386.html

लाल, बी. वी. (2000) Chalo Jahaji: On a Journey through Indenture in Fiji, Canberra: Australian National University E Press.

सिंह, बिक्रम (2016) गिरमिटिया मजदूर' महज शब्द नहीं, 180 साल का वो घाव है, जो अंग्रेजों ने हमें दिया, Retrieved on 10/02/2021 from https://hindi.scoopwhoop.com/ girmitiya-labours-has-a-painful-past/#.6ktab4qrj

हिंदुस्तान (2010) गिरमिटिया मजदूरों के जरिए कैरेबियाई देश पहुंचा था फाग, Retrieved on 11/02/2021 from https://www.livehindustan.com/news//article1-story-96880.html

डॉ. सुचित्रा शर्मा[1], डॉ. ए. एन. शर्मा[2]

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

जनजातियों की तत्वदृष्टि एवं जीवन दृष्टि के एकीकरण में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका

सार संक्षेप

जनजाति समाज अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण हमेशा से ही हमारे सभ्य और सुसंस्कृत समाज को, चाहे वह पत्रकार हो, सैलानी हो, लेखक या शिक्षाविद् हो, आकर्षित करता रहा है। फिर सबकी यही मिलीजुली कोशिश रहती है कि उनकी विलक्षणताओं के अनोखेपन को जाने पहचाने और सबके सामने लायें। हम सभ्य लोग उनके जीवन की मौलिकताओं को अपने नजरिये और कभी मनोरंजन की दृष्टि के दायरे में रखकर देखते हैं। उनके रीतिरिवाजों और परम्पराओं में निहित गुदगुदाने वाले और सनसनी खेज ब्यौरे दुनियाँ के सामने लाने के प्रयासों में अपने नागरिक कर्तव्य की सीमा तय कर लेते हैं। उनके जीवन के अछूते पहलुओं, अलौकिक विश्वास, जादूटोने और विलक्षण अनुष्ठानों का आँखों देखा हाल बयान प्रस्तुत कर प्रशंसित होना चाहते हैं, पर उनकी इस प्रत्यक्ष जिंदगी के पीछे का जीवन संघर्ष और पारिवारिक जीवन की व्यथा कितने उतार चढ़ावों से भरी है, यह समझने और आत्मसात करने के लिए एक तार्किक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

आज इन्हें विकास की मुख्यधारा में जोड़ने के अनेकों प्रयास शासन प्रशासन द्वारा योजनाओं के क्रियान्वयन के माध्यम से किये जा रहे हैं, पर कहीं न कहीं इन सरकारी संगठनों की कुछ सीमाएं होती हैं जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से इनके विकास में अवरोधक होती हैं। ऐसे में स्वैच्छिक सेवा भाव से कार्य करने वाली संस्थाओं की आवश्यकता होती है जो कड़ी या माध्यम का काम करें। गैर सरकारी संगठन वे ही माध्यम हैं जो सेतु का काम कर जनजातीय विकास में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं। आज इस बात पर काफी जोर दिया जा रहा है कि सतत् विकास और सामाजिक तकनीकी हस्तांतरण में इन संगठनों की भूमिका सार्थक है।

प्रस्तुत शोधपत्र में यही जानने का प्रयास किया गया है कि जनजातियों की मूलभूत मौलिक विशेषताओं तथा प्रकट में दिखने वाली विशेषताओं को एकीकृत किस तरह किया जाए कि उनके विकास को उन्हीं के संदर्भ में प्रासंगिक और फलीभूत बनाया जा सके जिसमें गैर सरकारी संगठनों की अपनी भूमिका सार्थक परिणाम परिलक्षित कर सकती है।

सूचक शब्द : तत्वदृष्टि, जीवनदृष्टि, एकीकरण, जनजातीय विकास, गैर सरकारी संगठन।

भूमिका

किसी भी समाज का अतीत वर्तमान की आधारशिला होती है। जनजातीय समाज भी विशाल भारत का अभिन्न अंग है, जिसकी अपनी पृथक पहचान है। अपनी उद्विकासीय यात्रा में जनजातियाँ आज भी स्वयं को विकास से जोड़ नहीं पाई हैं। वजह है इनके समक्ष उत्पन्न नवीन

[1]शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)
[2]शासकीय नवीन महाविद्यालय, बोरी दुर्ग (छत्तीसगढ़)

चुनौतियाँ। जहां एक ओर ये अपनी मूल प्रकृति, परम्पराओं और मान्यताओं के बीच पिछड़े और शोषित समूह के रूप जीवन गुजार रहे हैं। वहीं तेजी से इनके जीवन में घुसपैठ बनाती सभ्य समाज की संस्कृति ने इन्हें दोराहे पर ला खड़ा किया है।

जंगलों और पहाड़ों पर निर्भर प्रकृति पूजक यह जनजातीय समाज एकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है। वैरियर एल्विन (संदर्भ) ने इन्हें पृथक समूह के रूप में स्वीकार किया। ''द लास आफ नर्व'' में उन्होंने कहा कि ''यदि आदिवासियों का समावेश हिन्दू जातियों से हो जाये तो उनकी धड़कन बंद हो जायेगी। आदिवासी मूलतः प्रकृति प्रेमी है और हिन्दू जातियों से उनका कोई सरोकार नहीं है।'' नेहरू जी ने एल्विन की सलाह से पंचशील सिद्धांत को रखा, जिसमें उल्लेख था कि ''आदिवासी जंगलों और पहाड़ों पर रहने वाले हैं और हिन्दुओं के रीतिरिवाजों और जीवन पद्धति को हमें इन लोगों पर लागू नहीं करना चाहिये। इसका विकास तो इनकी प्रकृति के अनुसार होना चाहिए।''

इसी संदर्भ में अपने अध्ययन 'नावेन' में ग्रेगरी बेटसन[1] ने 'ईथास' (Ethos) जीवनदृष्टि और ईडास (Eidos) तत्वदृष्टि संप्रत्ययों को प्रस्तुत किया। ईडास किसी भी संस्कृति के मूलतत्वों का समाहित रूप है। प्रत्येक संस्कृति चाहे वह किसी भी परिवेश की हो उसकी अपनी मौलिक विशेषताएं, चिंतन और स्वभाव है जो उस संस्कृति में निहित होते हैं। प्रत्येक जनजाति समाज की अपनी मौलिकता उनकी तत्वदृष्टि है जो अप्रत्यक्ष या छुपी हुई होती है जबकि ईथास प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला व्यवहार है जो प्रत्येक समाज में भिन्न–भिन्न होता है।

किसी भी जनजाति के सांस्कृतिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि उनकी तत्वदृष्टि यथावत् बनी रहे, पर परिवर्तनों की सार्वभौमिकता को नकारा नहीं जा सकता। सभ्य संस्कृतियों के संपर्क में कई कारकों के चलते जनजातियों की मौलिकता प्रभावित होती ही है। इस बात की पुष्टि क्रोबर[2] ने भी अपने अध्ययनों में की है। 'प्रबलता' और 'चरमावस्था' सांस्कृतिक विकास में दिखाई देती ही है। इसे उन्होंने अपनी कृति 'संस्कृति की समाकृति' में विशेषणात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। यहां शेक्सपियर[3] के एक प्रसिद्ध नाटक 'दी टेम्पेस्ट' का उल्लेख समीचीन है। यह एक सशक्त रूपक की भांति है जिसमें इस दंश को दिखाया गया है कि जनजाति समाजों की मौलिकता को किसी 'वस्तु' के रूप में नहीं समझा जाना चाहिये उनके जल, जंगल और जमीन के संघर्ष को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है। इनकी यही तत्वदृष्टि उनके जीवन का मूलाधार है।

वस्तुतः जनजातीय एकीकरण की प्रक्रिया के संबंध में दो बातें दिखाई देती है। एक तो उन्हें मुख्यधारा से पृथक रखा जाए और दूसरी कि उन्हें मिला लिया जाए। एफ. जी. वेली[4] ने माना कि जनजातियां सांस्कृतिक एकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रही हैं। अधिकांश वेत्ताओं का मानना है कि जनजातियों का विकास उनकी एथनिसिटी (Ethnicity) के संदर्भ में ही होना चाहिए। इस बात को सुसना देवाले[5], सुरजीत सिन्हा[6], और एस. सी. दुब[7] ने अपने अध्ययनों में जोर दिया है। बी. के. रायबर्मन (संदर्भ) ने कहा कि जनजातियों को हमें उनकी राष्ट्रीय पहचान और राष्ट्रीय समाज के संदर्भ में ही समझना चाहिये, क्योंकि जनजातीय समाज अपनी वैचारिकी, गैर बराबरी सोच, पृथक धार्मिक व्यवस्था, एथनिसिटी, प्रजातीय विशेषताएँ पहनावा, भोजन, अंर्तविवाही और वधुमूल्य जैसी विशेषताओं के कारण हमसे पृथक हैं।

कई विचारकों ने यह माना कि इनके विकास हेतु जितने भी कार्यक्रम और योजनाएं लागू की जा रही हैं उनसे इन प्रकृतिपुत्रों का जीवन काफी दुःखदायी हो गया है। पीपल आफ इंडिया (POL) परियोजना में के. एस. सिंह[8] ने बताया कि इन योजनाओं का लाभ सभी को समान रूप से नही मिला है। इन कार्यक्रमों ने गैर बराबरी को पाटने की अपेक्षा उसे बढ़ाया ही है।'' ये आदिवासी जब गैर आदिवासियों के संपर्क में आते हैं तो उनकी लास आफ नर्व यानी नाड़ी की धसकन शुरू हो जाती है। परिणाम स्वरूप भूमि, जंगल की स्वतंत्रता, आर्थिक गरीबी, शिकार के त्यौहार का गायब होना, जनजातीय उद्योगों का पतन तथा मानसिक और नैतिक थकान आदि विभिन्न प्रकार की समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

हालांकि घुरिये ने इन्हें भारतीय समाज से पृथक नहीं बल्कि समाज का ही एक अंग माना। डी. एन. मजूमदार[9] ने हो जनजाति के अध्ययन में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि सभ्यता के संपर्क से ये जनजातियाँ भ्रमित हो गई हैं। वे अपने कल्याण और हित के बारे में खुद सोच नहीं सकती। ऐसी स्थिति में जनजाति समाज का संपर्क अन्य समूहों से बिल्कुल टूट जाए यह ठीक नहीं है क्योंकि सभ्य समाजों में बहुत कुछ ऐसा है जो उनके लिए हितकर है। इसे मजूमदार ने वरणात्मक एकीकरण (Selection Integration) कहा है।

एकीकरण का सामान्य अर्थ है कि आदिवासियों को अपनी संस्कृति और एथनिसिटी के परिप्रेक्ष्य में जीवन पद्धति अपनाने की आवश्यकता है। जहाँ तक उनकी सांस्कृतिक और परम्परागत विशेषताओं का सवाल है, राज्य को इससे कोई सरोकार नहीं है, परंतु जब देश की अर्थव्यवस्था, राजनीति, न्याय और प्रशासनिक प्रणाली का सवाल है इन्हें नकारा नहीं जा सकता। जैसे मद्यपान इन जनजाति समाजों में परम्परा है परंतु सामाजिक विकास हेतु इन्हें मद्यपान छोड़ना होगा। नेहरू ने कहा भी था कि जनजातियों का विकास अवश्य किया जाए पर उनकी पहचान भी बराबर बनी रहे ऐसा प्रयास हमें करना होगा। फूको[10] ने भी अपने सिद्वान्त में स्वीकारा है कि ''एक व्यक्ति की पहचान के कई आयाम होते हैं जो उसके धर्म, राज्य आदि विभिन्न आयामों से जुड़ी हुई है।''

वर्तमान परिस्थितियों में विकास के लिए खनिज संपदा और जंगल पहाड़ के क्षेत्र राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि हेतु उपयोगी और अनिवार्य माने जा रहे हैं। जो कि इन जनजातियों के निवास स्थल है। जनजातियों की अर्थव्यवस्था इन्हीं वनों और कृषि पर आधारित है। आज इन क्षेत्रों में अवैध हस्तांतरण वनोपज एकत्र करने के अधिकारों पर प्रतिबंधों से इनकी अर्थव्यवस्था तथा गैर जनजातियों की सांस्कृतिक विशेषताओं की दखलदांजी से जनजाति जीवन बुरी तरह प्रभावित हुआ है। आज ये अपने अस्तित्व को बचाये रखने हेतु संघर्षरत हैं। बाहरी प्रदेशों से आने वाले तथाकथित विद्वान और शहरी इन्हें तरह–तरह के पूर्वाग्रहों के साथ देखते हैं।

ऐसा नहीं कि इन्हें और इनकी संस्कृति को समझने और बचाने के प्रयास नहीं हुए। कई मानवशास्त्रीय और समाजशास्त्रीय अध्ययन इस दिशा में हुए। मेलिनोवास्की, रेडक्लिफ ब्राउन, घुरिये, वैरियर एल्विन, क्रोबर क्लूखान, दुर्खीम, एन. के. बोस, प्रोमिला थापर, रामचंद्र गुहा और ब्रह्मदेव शर्मा आदि के अध्ययनों से जनजातीय संस्कृति के विभिन्न अछूते आयाम हमारे सामने आये।

निर्मल कुमार बोस[11] ने उड़ीसा की 'जुआंग' जनजाति के अध्ययन में पाया कि जनजातियों

को मुख्यतः जातिगत समाज की कृषि और शिल्प पर आधारित अर्थव्यवस्था की ओर धकेला जा रहा है। किस तरह यह अत्यंत आदिम जनजाति हिन्दूत्व की छाया से अनंत काल से बाहर रहने के बाद भी ब्राह्मणवादी प्रभावों से अपने को बचा नहीं सकी। अतः आज इस पर पुनः चिंतन की आवश्यकता है कि जनजातियों के विकास को किस तरह दिशान्मुख किया जाए।

महात्मा गांधी ने इन्हें हरिजन की संज्ञा दी और स्वीकार किया कि उनके लिए कुछ कर नहीं पाये। जनजातियों के जीवन तत्वों को हम अपने नजरिये से देखते हैं। हम चाहते हैं कि वे भी विकास की मुख्यधारा से जुड़े परंतु उनकी दिनचर्या और सांस्कृतिक विशेषताएं यथावत् बनी रहे। आज विकास के नाम पर इनकी प्राकृतिक संपदा के साथ छेड़छाड़ जारी है। इन्हीं के लिए योजनाएं बनाई और क्रियाशील की जाती रहीं। जिनमें इन प्रकृतिपुत्रों की कोई भागीदारी नहीं।

जिन आदिवासियों ने प्रकृति से संघर्ष कर उसे अपने अनुकूल बनाया, सुरक्षित आवास बनाकर प्राकृतिक विपदाओं से बचने से उपाय ढूंढ निकाले और प्राकृतिक संपदा को दैनिक जीवन के लिए उपयोगी बनाते हुए अनेक प्रकार की कलाओं को जन्म दिया, आज उन्हीं के अस्तित्व के संकट की स्थिति दिखाई देने लगी है। इनकी गरीबी और बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। शिक्षा और स्वास्थ्य सुधार में कोई इजाफा नहीं दिखता। जंगल जल और जमीन पर तथाकथित सभ्य समाजवालों के बीच ये अपने आपको असहाय, अलग और कमजोर महसूस करने लगे हैं। इनकी अशिक्षा, गरीबी, रहन–सहन, पिछड़ी अर्थव्यवस्था, संस्कृति और परंपराओं से जुड़ाव के कारण शासन द्वारा इनके कल्याण के लिए चलाई गई जनजाति विकास की नीतियां इनकी पहुँच के बाहर है।

जानकारी होने के बाद भी योजनाओं के क्रियान्वयन की जटिल प्रक्रिया इन्हें विकास से जोड़ नहीं पा रही है। गैर आदिवासी चाहे वह कितना भी विद्वान और सक्षम हो तथ्य प्रस्तुत करने में उनकी भोगी हुई संवेदना से विलग ही होगा। इसलिए जिनके लिए विकास के प्रावधान किये जा रहे हैं उनकी भागीदारी जमीनी स्तर पर योजनाओं का हिस्सा हो, क्योंकि अपने आप में अनूठी विभिन्नताएं लिये हुए यह जनजाति समाज सांस्कृतिक सरंक्षण की समस्या से जूझ रहा है।

जनजातीय एकीकरण एवं गैर सरकारी संगठन –

सुपर टेक्नालाजी के इस युग में हम विकास के चरम स्तर को पाना चाहते हैं और वैश्विकता के संदर्भ में ले जाना चाहते हैं। देश के विकास की बात जब भी होती है तब हमें इन क्षेत्रों का ख्याल आ जाता है। प्राकृतिक संपदा से भरपूर इन क्षेत्रों को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में छेड़ने में जरा भी संकोच नहीं होता है। विविधताओं से भरा जनजाति समाज अपने आप में एकता को समाहित किये हुए हैं। हम उन्हें आदिम सभ्यता का प्रतीक मान सकते हैं परंतु असभ्य या बर्बर नहीं। खान–पान, पूजा–पाठ, रीति–रिवाज, मेला, उत्सव, हाट–बाजार, दवा इत्यादि क्षेत्रों में इन प्रकृति पुत्रों की अपनी मौलिकताएं है जो इनका मूलाधार हैं।

आज जनजाति समाज सभ्यता के संपर्क में आकर संशयपूर्ण स्थिति में है।इतने बड़े जन समाज को विकास की मुख्यधारा से जोड़ना और उस तक विकास की पहुँच बनाना विकास वेत्ताओं के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। यह कार्य अकेले सरकार या नौकरशाही व्यवस्था के

द्वारा संभव नहीं है। जनजातियां आज गैर जनजातीय संपर्क में आ रही हैं। ऐसी स्थिति में न केवल विकासवेत्ता बल्कि स्वयं जनजातीय समाज भी भ्रमित है। ऐसी स्थिति में उनकी मौलिक विशेषताएं बनी रहें और नये परिवर्तन इनकी इन मौलिकता को प्रभावित न करें, इसके लिए प्रयास करना होगा। इस प्रयास में सरकार के साथ गैर सरकारी प्रयास जनजातियों के इस एकीकरण को अप्रभावित बनाये रखने में उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकते हैं।

गैर सरकारी संगठन –

तीसरे सेक्टर के रूप में मान्य गैर सरकारी संगठन अपने संसाधनों स्वयं जुटाकर सेवाभाव से कार्य करने वाले प्रयास हैं। इन्हें कई नामों से संज्ञापित किया गया है। यथा– स्वैच्छिक संगठन (VOS), ऐच्छिक अधिकरण (VAs), ऐच्छिक विकास संगठन (VDOs) समुदाय आधारित संगठन (CBO), निजी विकास संगठन (PDO) लोक सेवा संगठन (PSO), गैर सरकारी विकास संगठन (NGDO) वोलेग्स (Volages) इत्यादि। संयुक्त राष्ट्र संघ की शब्दावली में इन्हें गैर सरकारी संगठन (NGOS) के नाम से संज्ञापित किया गया है।

गैर सरकारी संगठन जिस संदर्भ में कार्य करते हैं उसी के अनुरूप बदलाव भी होता रहता है। हालांकि कुछ संगठन ऐसे भी होते हैं जो समुदाय की जरूरत के अनुसार अपने क्रियाकलापों में परिवर्तन लाते हैं या फिर धनराशि पाने के लिए फेरबदल भी कर लेते हैं।

इस तरह गैर सरकारी संगठन निम्न स्तर पर कार्यकर्ताओं द्वारा एक साथ कार्य करने हेतु संगठित किया गया एक समूह होता है। जिसके अंतर्गत जनसमूह स्वैच्छिक संगठन, स्वैच्छिक ऐजेन्सी समाज कल्याण समूह आदि सभी आते हैं। इन समूहों की तीन मुख्य विशेषताएं होती हैं–

1. लाभ की लालसा या इच्छा का अभाव
2. स्वतंत्रता –किसी भी प्रकार के नियंत्रण या दबाव का अभाव
3. बाहरी वित्तीय सहायता पर निर्भरता

इन आधारों पर गैर सरकारी संगठन किसी न किसी लक्ष्य को लेकर कार्यक्षेत्र का चुनाव करते हैं। इसके कार्यकर्ता क्षेत्र के रहवासियों के बीच रहकर स्वास्थ्य शिक्षा, जल, पर्यावरण, मानवाधिकार, बाल अधिकार आदि जैसे क्षेत्रों में विकास कार्य करते हैं।

आज देश में 31 लाख से अधिक एन. जी. ओ. कार्य कर रहे हैं, पर सभी अपने उद्देश्यों को पूरा कर लक्ष्य तक पहुँचते हो ये जरूरी नहीं है। कुछ उदाहरण सामूहिक एवं व्यक्तिगत पर दिये जा सकते हैं।

झारखण्ड के रामकृष्ण मिशन का कृषि विज्ञान केन्द्र रांची व जनजातीय विकास के क्षेत्र में मील का पत्थर कहा जा सकता है। यह 'शिवभाव से जीव सेवा' को आधार मानकर पिछले कई वर्षों से सतत् आदिवासी उत्थान में संलग्न है। छत्तीसगढ़ के नारायणपुर जिले में रामकृष्ण मिशन आदिवासियों के विकास हेतु सतत् प्रयासरत है। दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर पी. डी. खेरा अचानकमार टाइगर रिजर्व के कोर एरिया गांव लमनी में रहते हुए आदिवासी उत्थान में कार्यरत हैं। वाशिंगटन में मैक आर्थर पुरस्कार से महाराष्ट्र का सर्च सम्मानित नामक संगठन

और 10 लाख के एल्कन पुरस्कार से सम्मानित हैदराबाद का नंदी आदि कई संगठन राष्ट्रीय एवं अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर रहे हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि देश में सांस्कृतिक सामाजिक चेतना के विकास और कुरीतियों से निजात दिलाने में गैर सरकारी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विकास का अर्थ सिर्फ योजना बनाकर लागू करना नहीं वरन् लोगों को स्वयं अपने विकास के लिए संगठित होकर योजना बनाने योग्य बनाना है। एक बात महत्वपूर्ण है कि कोई भी विकास कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसमें वे लोग शामिल न हों जिनके विकास के लिए कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

गैर सरकारी संगठनों की वर्तमान स्थिति–

विकास में जहां एक ओर गैर सरकारी संगठनों की भागीदारी को स्वीकार किया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर उनकी कार्यप्रणाली, कार्यक्रमों और कार्यकर्ताओं पर कई तरह के प्रश्न चिन्ह भी लगे हैं। अलग–अलग दृष्टिकोणों से इनके प्रयासों का आकलन किया जा रहा है। जो संगठन सिर्फ लोगों की भलाई के लिए संलग्न हैं, अथवा विकास के कुछ कार्यक्रमों को सरकारी परिवेश और अनुदान से चलाने में लगे हुए हैं। उनकी सरकार से टकराहट नहीं होती। फिर भी सामान्य रूप से इनके प्रयासों और सरकारी विभागों के बीच संबंध विरोधाभास के और विवादास्पद हैं।

गैर सरकारी संगठनों को भी आज चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, मसलन संस्थागत निर्माण के प्रश्नों से हटना, स्थापक नेतृत्व का प्रभुत्व अथवा विहीनता, कार्यकर्ताओं के बीच असंतुलन व तनाव, संसाधनों की कमी आदि। कई गैर सरकारी संगठन सरकारी संसाधनों पर ही आश्रित हैं, जिसे वे अपने कार्यक्रमों से उभरने वाले प्रश्नों को सरकारी अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करने में असमर्थ पाते हैं।

आज की परिस्थितियों में इन गैर सरकारी संगठनों को भी अपनी गुणात्मकता बनाये रखने के प्रयासों पर ध्यान देना होगा। उद्देश्यों के अनुरूप क्रियान्वयन व कार्यप्रणाली के बीच तालमेल बनाये रखना होगा। पिछले कुछ वर्षों में स्वैच्छिक संगठनों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है। बहुत सारे संगठन अचानक पैदा होते हैं, और काम करने लगते हैं। वह न तो स्थानीय परिवेश में जड़ें जमाने की कोशिश करते हैं, और न ही स्वयं को इस स्थिति में पाते हैं, कि उन्हें क्या करना है।

कापार्ट का प्रतिवेदन भी दर्शाता है कि गैर सरकारी संगठनों की संख्या में वृद्धि हुई है जिसका कारण सेवा प्रवृत्ति नहीं, वरन पेशा प्रवृत्ति वाले लोगों की संख्या में वृद्धि है। ऐसे लोग इन संगठनों को पेशा बनाकर सरकार तथा अन्य संस्थाओं से पैसा प्राप्त कर अपने विकास में लगे हुए हैं। ऐसे लोगों में सेवा भावना न होकर किसी भी तरह एन. जी. ओ. के नाम पर प्राप्त राशि को अपने पाकेट में डाल देना होता है। यह प्रवृत्ति चिंताजनक है, जो वास्तव में कार्य करने वाले संगठनों की विश्वसनीयता को प्रभावित कर रही है। इसका एक कारण यह भी प्रतीत हुआ, कि अब सरकारी और सरकारी विदेशी दोनों ही स्त्रोतों से पहले की तुलना में कहीं अधिक अनुदान उपलब्ध है।

ऐसी स्थिति में व्यवसायिक दुकान की तरह स्थापित ये संगठन सामाजिक बदलाव वाले

उद्देश्य से अलग हट जाते हैं। राजनैतिक दलों की घुसपैठ भी इनकी क्रियाशीलता को प्रभावित करती हैं। यहीं नहीं ऐसे संगठन भी उत्पन्न हुए हैं, जो सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारियों द्वारा निर्मित हैं। कागजी संगठन भी दिखाई देते हैं। ऐसी स्थिति में इन गैर सरकारी संगठनों की भूमिका विश्लेषण के दायरे में आ जाती है।

20 मई 2000 को रायपुर शहर में ''छत्तीसगढ़ के विकास में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका'' पर आयोजित राष्ट्र स्तरीय कार्यशाला में कुछ महत्वपूर्ण बिंदु सामने आये जो कि निम्न हैं –

1. राज्य के ऐसे क्षेत्र जहां सरकार की पहुँच पर्याप्त नहीं है, विशेषकर दुर्गम व पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सांस्कृतिक व निर्धनों के सामाजिक–आर्थिक विकास में स्वयं सेवी संगठनों की भूमिका ज्यादा प्रभावी हो सकती है।
2. राज्य के क्षेत्रवार विकास के लिए आवश्यकतानुसार कार्य योजनाएं संचालित कर असंतुलित विकास को संतुलित करने में स्वयंसेवी संगठन सरकार के साथ मिलकर कार्य कर सकते हैं।
3. विकास से संबंधित नीतियों, कार्यक्रमों व परियोजनाओं के निर्माण में एन. जी. ओ. को सरकार सहभागी बनाए तो बेहतर परिणाम की अपेक्षा की जा सकती है।
4. सरकार के विभिन्न हितग्राही मूलक कार्यक्रमों में स्वयंसेवी संगठन हितग्राहियों के चयन व उन्हें वांछित लाभ पहुंचाने में शासन के मददगार हो सकते हैं।
5. प्राकृतिक संसाधनों की पहचान कर उनके जनुपयोगी संतुलित दोहन एवं ग्राम/वन आधारित उद्योगों का विकास कर रोजगार के वैकल्पिक अवसर एवं बेहतर ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था बनाने में स्वयंसेवी संगठन सरकार के साथ सहभागी हो सकते हैं।
6. विभिन्न स्तरों पर क्रियान्वित कार्यक्रमों के सामाजिक मूल्यांकन व पारदर्शिता आदि क्षेत्रों में स्वैच्छिक संगठनों का रचनात्मक हस्तक्षेप हो सकता है।
7. स्व –सहायता समूहों के माध्यम से संचालित सामाजिक आर्थिक विकास की गतिविधियों में क्षमता विकास हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों का क्रियान्वयन स्वयं सेवी संगठनों द्वारा एजेन्सियों की तुलना में बेहतर ढंग से किया जा सकता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जनजातियां आज भ्रमपूर्ण स्थिति से गुजर रही हैं। एक ओर उनकी मूल सांस्कृतिक विशेषताएं खतरे में हैं दूसरी ओर उनके विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि उन्हें मुख्यधारा से जोड़ा जाए। उनकी तत्वदृष्टि और जीवनदृष्टि में सही तालमेल ही उन्हें आगे बढ़ा सकता है। बाहरी प्रभावों को रोका नहीं जा सकता परंतु उनकी मूल विशेषताओं को बचाया अवश्य जा सकता है जिसमें दोनों संगठनों की भागीदारी समान रूप से होनी चाहिए। जनजातीय विकास के लक्ष्य को पूरा न कर पाने में शासकीय संस्थाओं की अपनी सीमाएं होती है। वहीं गैर सरकारी संगठन सुदूर क्षेत्रों में जाकर इनके विकास के लिए अपनी भागीदारी सिद्ध करते हैं। इस दिशा में उनकी कार्य प्रणाली और प्रतिभागिता को सिद्ध करने के लिए कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं जो निम्न हैं–

सुझाव

- विकास योजनाओं को क्रियान्वित करने योग्य बनाने के लिए उन्हीं संगठनों को मान्यता देनी चाहिये, जिनके पदाधिकारी, सदस्य, कार्यकारी समितियों के सदस्य, सभी उन संस्थाओं के विकासशील सदस्य हों।
- ये संस्थाएँ धर्म निरपेक्ष और गैर राजनैतिक हों।
- सरकारी प्रशासन में भी उन अधिकारियों (प्रशासकों) को चुना जाये, जो इस नीति पर पूर्ण आस्था रखते हों।
- जनजातियों में प्रतिनिधिपूर्ण नेतृत्व का अभाव है। राष्ट्रीय स्तर पर जनजाति नेतृत्व विकसित नहीं दिखाई देता। इसलिए संस्थाओं हेतु स्थानीय नेतृत्व की व्यवस्था करने वाले कार्यकर्ताओं का चयन किया जाये।
- इन संगठनों को सफलतापूर्वक काम करने के लिए क्षेत्र में निवास करने वालों का विश्वास प्राप्त करना चाहिये।
- इन संगठनों को सरकार से प्रतियोगिता नहीं करनी चाहिये। अपना पूरा ध्यान संस्थात्मक विकास और गाँव में लोगों की संगठनात्मक क्षमता बढ़ाने के प्रयास में संलग्न करना चाहिये।
- राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के नाम पर फिजूल खर्ची से बचना चाहिये, साथ ही आय को बढ़ाने वाले कार्यक्रम चलाये जाने चाहिये।
- इन संगठनों को ग्रामीण विकास के लिए गाँधी जी की अंत्योदय 'पद्धति' को अपनाना चाहिये, जिसमें बदलाव नीचे स्तर से आता है।
- जनजातीय विकास में इन गैर सरकारी संगठनों के योगदान को लेकर सभी खुली बहस चर्चाएँ, सेमिनार किये जाने चाहिये, जिसमें सभी वर्गो की भागीदारी हो, ताकि नये सुझाव सामने आ सकें।

उपरोक्त सुझावों को ध्यान में रख गैर सरकारी संगठन जनजातीय विकास में भागीदार बनते हैं, और अपनी गतिविधियों के प्रति ईमानदार सक्रियता रखते हैं, तो सकारात्मक परिणाम हर हाल में हासिल होंगे। अगर मदनमोहन मालवीय जैसा व्यक्ति अपने प्रयासों से 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय, स्वामी विवेकानंद द्वारा 'विवेकानंद मिशन', मदर टेरेसा अपने को मिसाल बना सकते हैं, तो जन भागीदारी से कोई भी काम असंभव नही है, और ये संगठन बन सकते हैं मील का पत्थर।

संदर्भ

Gragory, Bateson (1956) -Noven, Stanford University Press Stanford.

Krober, A.L. – (1944) Configuration of Culture Growth University of California Press, Berkley. Los Angeles.

Meena, R.C. (2013) – Adiwashi Vimersh Rajasthan Granth Akadamy, Jaipur.

Bailey, F.G. (1996) – Tribe, caste - Nation.

Susna, B.C. Devalle (1992) – Discourses of Ehhnicity, Sage Publication.

Surjeet, Sinha (1982) - Tribes and Indian Civilization Structure and Transformation.

Dubey, S.C. – Tribal Heritage of India.

Singh, K.S. (1997) People of India The Sehedule Tribes. National Series, Oxford University Press.

Majumdar, D.N. (1950) The Affairs of The Tribe. A study in Tribal Dynamics, Universal Publications Lucknow.

Foucalt, M. (1961) Madness and Civilization

Bose, N.K. (1975) – The Struture of Hidu Society.

Thakur, Devendra (1997) Role of Voluntary Organisation in Tribal Development. Deep publication New Delhi.

पालीवाल, चंद्र मोहन (1986) – आदिवासी हरजिनरू आर्थिक विकास बस्तर जिले के विशेष संदर्भ में, नार्दन बुक सेंटर, नई दिल्ली।

हर्सकोविट्स, एम0 जे0 (1986) – सांस्कृतिक मानवशास्त्र (अनु0) विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली।

शर्मा, ब्रह्मदेव (1999) आदिवासी विकासरू एक सैद्धांतिक विवेचन, म0 प्र0ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

रावत, हरिकृष्ण – मानवशास्त्री विचारक, रावत पब्लिकेशन नई दिल्ली।

राजपूत, उदयसिंह (2010) – आदिवासी विकास एवं गैर सरकारी संगठन, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

वर्मा, उमेश कुमार (2012) – भारत का जनजातीय समाज, इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेव्हलपमेंट एण्ड रिसर्च रांची।

डॉ. विमल कुमार लहरी

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

संत रज्जब की सामाजिक विरासत : समाजशास्त्रीय पाठ

सार संक्षेप

प्रस्तुत शोध आलेख के अंतर्गत महान संत रज्जब की सामाजिक विरासत को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। भारत में भक्ति आंदोलन की यात्रा सामाजिक परिवर्तन की एक प्रमुख यात्रा रही है, जिसकी प्रमुख कड़ी के रूप में संत रज्जब को भी देखा जाता है। संत रज्जब ने धार्मिक विविधता एवं उसकी सर्वोपरिता के आधार पर विभिन्न खेमों में बटे विचारों को एक खेमे में लाने का सार्थक प्रयास किया। मुस्लिम धर्मावलंबी होने के बावजूद भी संत रज्जब का हिंदू धर्म की वैचारिकी को स्वीकार करना सर्वधर्म समन्वय का वास्तविक स्वरूप था। संत रज्जब ने आज से 400 वर्ष पहले सर्वधर्म समन्वय के साथ मजबूत सामाजिक संबंधों का ताना–बाना बुना, जो आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी रज्जब पंथ के रूप में गतिमान है, एवं लोकजन को जीवन का सही फलसफा बताता है। संत रज्जब की सामाजिक विरासत धार्मिक कृत्यों की जगह कर्तव्य की अवधारणा पर आधारित है। संत रज्जब का लेखन आम लोकजन के जीवन की घटनाओं पर आधारित है। उन्हीं घटनाओं को आधार बनाकर संत रज्जब लोगों को मूल्यों के अनुरूप जीना सिखाते हैं। संत रज्जब का यह कृत्य उन्हें एक महान क्रिया समाज वैज्ञानिक के रूप में स्थापित करता है। आज संत रज्जब की सामाजिक विरासत रज्जब पंथ के रूप में लोकजन को धर्म एवं जाति के आधार पर तोड़ने की बजाय जोड़ने पर बल देती है।

सूचक शब्द : विरासत, रंग, ज्ञानीयता, अभिकरण, पुनर्जागरण, अस्पृश्यता, छुआछूत, उत्सर्ग, पीठाधीश्वर निर्गुण, निराकार, शून्य, सुमिरन, भजन, ध्यान, गति–मति।

परिचय एवं सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

अपनी यात्रा में भारतीय सामाजिक व्यवस्था विभिन्न खेमों में बंटी रही है। उन खेमों में हम जाति, वर्ण, रंग आदि स्तरों पर भेद के विभिन्न रूप देख सकते हैं। भेद के कारण जनसंख्या के एक बड़े भाग को सदियों तक मुख्य धारा से अलग–थलग रखा गया। अपने ही देशवासियों द्वारा अपने ही देश के लोगों को परंपरागत निषेधों को आधार बनाते हुए मौलिक आवश्यकताओं से भी वंचित रखा गया। इनके ऊपर होने वाले अत्याचार में विदेशी हुकूमतें भी एक प्रमुख कारण के रूप में उत्तरदायी रहीं। विदेशी हुकूमतों ने उन्हें मुख्य धारा में लाने की बजाय उन पर शोषण एवं अत्याचार जारी रखा। रोटी, कपड़ा, मकान जैसी मौलिक आवश्यकताएँ भी उनके नसीब में नहीं थी। इस स्थिति को इतिहास के विभिन्न काल खंडों में बखूबी देखा जा सकता है। जबकि मानव सभ्यता की प्रारंभिक अवस्था भेद की वैचारिकी से परे थी। लेकिन कालांतर में उन पर विभिन्न निषेधों को लागू कर उन्हें मुख्य धारा से ही अलग–थलग कर दिया गया और एक लंबे दौर तक हाशिये का जनमानस इसे नियति की वैचारिकी के रूप में स्वीकार करता रहा।

सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग एवं पी.आई., इंस्टीट्यूशन ऑफ एमिनेंस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय Email: vimalk.lahari1@bhu.ac.in

मानव सभ्यता की यात्रा में लोकजन के बीच बढ़ती चेतना और भक्ति आंदोलन की वैचारिकी ने हाशिए के लोकजन को मुख्य धारा में आने के लिए सहज द्वार का निर्माण किया। भारत में भक्ति आंदोलन को व्यवस्था परिवर्तन हेतु प्रमुख अभिकरण के साथ–साथ पुनर्जागरण काल के रूप में भी देखा जाता है। व्यवस्था परिवर्तन हेतु संत परंपरा के लोगों द्वारा भक्ति और साधना की भित्ति का सहारा लेकर पहली बार सवाल खड़े किए गए। भारतीय समाज में संतों ने समाज में व्याप्त असमानता एवं विरोधाभास के खिलाफ आवाज उठायी। उन आवाजों को क्रिया पक्ष के रूप में भी देखा जा सकता है। भक्ति आंदोलन के माध्यम से आमने सामने से टकराव नहीं किये गए बल्कि परंपरागत व्यवस्था के बदलाव हेतु लोकजन के बीच मानवतावादी वैचारिकी की पोषणता हेतु प्रचार–प्रसार पर विशेष बल दिया गया। जिसमें दिन–प्रतिदिन से जुड़े रूपकों को आधार बनाया गया। इस संदर्भ में नन्द किशोर पांडेय कहते हैं कि– "भक्ति आंदोलन का प्रारम्भ ही वर्ण व्यवस्था और नारी पुरुष के भेद– भाव को तोड़ने वाला था।"[1]

भक्ति आंदोलन के ही एक प्रमुख कड़ी के रूप में सन्त रज्जब को देखा जाता है। सन्त रज्जब ने तत्कालीन समय में हिंदू और मुस्लिम के रूप में भेद की एक मजबूत दीवार को पूरी तरह से तोड़ डाला और स्वयं मुस्लिम धर्म से होते हुए भी हिंदू सन्त दादूदयाल का शिष्यत्व ग्रहण किया। वास्तव में सन्त रज्जब का यह कार्य हिंदू और मुसलमान के रूप में मानव और मानव को बांटने की वैचारिकी को पूरी तरह से खारिज करता है। तत्कालीन समय में भारत पर मुस्लिम हुकूमत का अंतिम दौर था जहाँ तलवार की नोक पर धर्म परिवर्तन हेतु दबाव बनाए जाते थे। ऐसी स्थिति में संत रज्जब का हिंदू धर्म की तरफ मुड़ना और हिंदू धर्म के सामाजिक पक्ष को स्वीकार करना उनका एक क्रांतिकारी कदम था। वास्तव में सन्त रज्जब ने हिंदू धर्म के सामाजिक पक्ष को स्वीकार करके एक महत्वपूर्ण सामाजिक विरासत को खड़ा किया।

सन्त रज्जब ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिंदू–मुस्लिम के रूप में उत्पन्न दीवारों के साथ–साथ समाज में व्याप्त अस्पृश्यता, छुआछूत, पाखंड एवं अंधविश्वास के साथ विविध स्तरों पर भेद पर करारा प्रहार किया। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के बीच मानवता को स्थापित किया। लोकजन को मानव और मानव समान हैं जैसी वैचारिकी के साथ जीने का एक नया फलसफा प्रदान किया। सन्त रज्जब लोकजन के बीच प्राथमिक संबंध कैसे मजबूत हो, साथ ही उनके बीच भेद की खाईयों को कैसे कम किया जा सके, इस कार्य हेतु निरंतर प्रयत्नशील रहे। उनका मानना है कि जिस कार्य से समाज को पीड़ा पहुंचे वह पाप है और जिससे समाज को सुख प्राप्त हो वह पुण्य है। वे जन कल्याण हेतु वैवाहिक बंधन से दूर रहे। आज सन्त रज्जब की सामाजिक विरासत रज्जब पंथ के रूप में गतिमान है। संत रज्जब की सामाजिक विरासत को कुछ पन्नों में विश्लेषित करना संभव नहीं है, परन्तु शोध आलेख की शब्द सीमा को देखते हुए उनकी सामाजिक विरासत के महत्वपूर्ण पहलुओं को अधोलिखित बिंदुओं पर उल्लेखित किया गया है:

संत रज्जब : जीवन संसार

संत रज्जब का जन्म जयपुर के सांगानेर में संवत 1624 में एक प्रतिष्ठित पठान परिवार में हुआ था।[2] इनके पिता तत्कालीन राजा भगवंत राय और मान सिंह की सेना में नायक पद का दायित्व निर्वहन कर रहे थे। रज्जब अपने परिवार में सबसे बड़े थे। इनका एक छोटा भाई भी

था। शारीरिक रूप से संत रज्जब काफी सुडौल और स्वस्थ थे। ये आजीवन अविवाहित रहे क्योंकि जिस दिन इनका विवाह तय था उस दिन ये दूल्हे के रूप में तैयार होकर कन्या के घर जा रहे थे। रास्ते में इन्होंने संत दादू दयाल से मिलने की इच्छा जताई। वे दादू दयाल की ज्ञानीयता के बारे में काफी कुछ जानते थे। दादू दयाल के दर्शन की इच्छा में उनके पैर स्वतः दादू दयाल के आश्रम की तरफ बढ़ते चले गए। दादू दयाल ध्यान की मुद्रा में थे, इसलिए उन्होंने रज्जब के मिलने का अनुरोध को टाल दिया। ऐसी स्थिति में रज्जब वहीं पर बैठ गए और सारे बाराती भी वहीं रुक गए। काफी समय बाद दादू दयाल का ध्यान टूटने पर उन्होंने रज्जब को देखा। यहीं पर रज्जब ने दादू दयाल का शिष्यत्व प्राप्त किया, और अपने छोटे भाई को विवाह करने के लिए कन्या के घर भेज दिया। संत रज्जब निःस्वार्थ सेवा, कठिन तपस्या एवं साधना के द्वारा लगभग 20 वर्षों में ही दादू दयाल के परम आत्मीय शिष्य बन गए। परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं कि "संत रज्जब का स्थान संत दादू दयाल के शिष्य में सबसे ऊंचा समझा जाता है।"[3] संत रज्जब के जीवन संसार का मूल्यांकन किया जाए तो उनका जीवन और पारिवारिक संरचना पठान परिवार से संबंध होने के कारण मुस्लिम धर्म की वैचारिकी से पोषित थी। तत्कालीन संरचना में मुस्लिम आक्रांताओं का एक बड़ा हस्तक्षेप था। इन सब पक्षों को दरकिनार करते हुए संत रज्जब एक हिंदू धर्मावलंबी व्यक्ति को अपना गुरु बनाया। ऐसी स्थिति में संत रज्जब का सनातन धर्म की वैचारिकी को पुष्पित पल्लवित करना सूर्य को पूरब की बजाय पश्चिम में उगाने के समान था। मुस्लिम धर्म त्याग कर हिंदू धर्म स्वीकार करने के कारण उन्हें कई लोगों के आक्रोश को झेलना पड़ा। जिसमें स्वयं अपने पिता के साथ–साथ अपने संबंधियों, धर्मावलंबियों से भी काफी वैचारिक संघर्ष करना पड़ा। सनातन जीवन के साथ आगे बढ़ना संत रज्जब के लिए सहज नहीं था। लेकिन कठिन साधना, भक्ति एवं प्रेम के द्वारा उन्होंने अपना उत्सर्ग किया। संत रज्जब के बारे में यह भी कहा जाता है कि संत दादू दयाल एव संत रज्जब की अस्मिता एवं पहचान एक दूसरे पर आश्रित रही है। संत रज्जब ने सनातन धर्म की वैचारिकी के साथ अपने जीवन को गतिमान किया और जीवन के हर पड़ाव पर दादू दयाल के आधार स्तंभ बने रहे।

संत रज्जब ने अपने ज्ञान की अस्मिता से जीवन के वास्तविक मर्म को लोकजन के समक्ष रखा। संत रज्जब का पूरा जीवन सामाजिक समानता एवं भाईचारे को पुष्पित पल्लवित करने में व्यतीत हुआ। मुस्लिम धर्म के होते हुए भी एक हिंदू पीठाधीश्वर को अपना गुरु स्वीकार करना वास्तव में संत रज्जब का सर्वधर्म समन्वय हेतु एक अहम कदम था। रज्जब कालीन संरचना में जाति और धर्म की विशेषता को लेकर लोग विभिन्न खेमों में बटे थे। जहां सामाजिक भेद चरमोत्कर्ष पर था। लोग एक दूसरे की परछाइयों से भी अपने को अपवित्र मानकर उनसे दूर भागते थे। छुआछूत एवं अस्पृश्यता के कारण जनसंख्या का एक बड़ा भाग समाज की मुख्य धारा से अलग–थलग था। ऐसी स्थिति में समानता की बात करना एक कठिन कार्य था। इन परिस्थितियों के बावजूद भी संत रज्जब द्ववारा लोकजन को एक खेमे में लाने की कोशिश जारी रही। हाँ इतना जरूर था कि संत रज्जब ने वह कोशिश भक्ति, साधना, प्रेम एवं बंधुत्व को आधार बनाकर किया एवं अपनी वाणी के माध्यम से समाज में व्याप्त सभी प्रकार की विषमताओं पर करारा प्रहार किया। "रज्जब जी को 122 वर्ष का लंबा जीवन प्राप्त हुआ था। रज्जब ने 'वाणी' एवं 'सर्वगी' नामक दो ग्रंथ लिखा है।[4] कहते हैं कि विक्रमी संवत 1746 में अपने किसी शिष्य के साथ रज्जब जी टोंक की ओर एक वन में प्रवेश कर गए। कुछ दूर जाने के बाद उन्होंने अपने शिष्य को लौटा दिया। वहीं जंगल में समाधिस्थ होकर उन्होंने अपने नाशवान शरीर का

परित्याग कर दिया और ब्रह्मलीन हो गए।"[5]

जाति–पाति एवं छुआ–छूत का कड़ा विरोध

संत रज्जब ने मुस्लिम धर्मावलंबी होने के बावजूद भी हिंदू धर्म की वैचारिकी को स्वीकार किया और हिंदू धर्म की वैचारिकी को अपने मानवतावादी दृष्टिकोण से पुष्पित एवं पल्लवित किया। तत्कालीन समय की संरचना को हम देखें तो उस संरचना में जाति– पाति के बीच भेद का प्रभाव अधिक था। जिसके आधार पर जनसंख्या का एक बड़ा भाग मुख्यधारा से काफी दूर था। मध्यकालीन संतों एवं कवियों ने भी जाति–पाति एवं छुआछूत की वैचारिकी को कभी भी स्वीकार नहीं किया। सन्त रज्जब ने अस्पृश्यता एवं जाति आधारित भेद का खुला विरोध किया। इस संदर्भ वे तर्क देते हैं कि "रज्जब का ईश्वर भी निर्गुण और निराकार है। वह अवतार नहीं लेता। वह समस्त विश्व में व्याप्त है।"[6] अर्थात एक ही ईश्वर ने सभी को बनाया है तो फिर इस धारा पर एक मानव को दूसरे मानव से भेद करने का अधिकार कैसे? इस तरह सन्त रज्जब ने जाति– पाति एवं अस्पृश्यता के खिलाफ अपने काव्य के माध्यम से एक अच्छे और सकारात्मक विमर्श को लोकजन के बीच प्रस्तुत किया। इस तरह देखा जाय तो संत रज्जब का मन दया और करूणा की वैचारिकि से परिपूर्ण रहा है। इस संदर्भ में बृजलाल वर्मा कहते हैं कि "दया का भाव मनुष्यता को परखने की सच्ची कसौटी है। यदि किसी व्यक्ति के हृदय में दया का भाव है तो उसके द्वारा पीड़ितों का कल्याण निश्चित है।"[7]

अंधविश्वास एवं धर्मगत भेद की वैचारिकी पर करारा प्रहार

भारतीय सामाजिक संरचना की बुनियाद में धर्म का बहुत बड़ा योगदान रहा है। मानव समाज के बीच धर्म की उपस्थिति एक मजबूत पिलर के रूप में रही है। धर्म का सामाजिक पक्ष सदैव तोड़ने की बजाय जोड़ने पर बल देता है। लेकिन कुछ स्वार्थपरक शक्तियों ने धर्म के नाम पर ढेर सारे अंधविश्वास एवं धार्मिक स्तरों पर विभिन्न प्रकार की भेदगत वैचारिकी को लागू किया, जिसके कारण जनसंख्या का एक बड़ा भाग समाज की मुख्यधारा से बहुत दूर रहा। हम अपने प्राचीन धर्मग्रंथों में वर्णित तथ्यों का अवधारणात्मक मूल्यांकन करें तो कोई भी प्राचीन धर्मग्रंथ इस तरह की भेद आधारित वैचारिकी को स्वीकार नहीं करता है, बल्कि वह तो सर्वकालिक लोकहित की बात करता है। अद्यतन हमारे धर्म के अनुयायी और धर्मगुरु सर्वकालिक लोकहित की ही बात करते आ रहे हैं। सन्त रज्जब भी सर्वकालिक लोकहित की ही बात को लेकर आगे बढ़ें और समाज में व्याप्त अंधविश्वास तथा धर्मगत आधारित भेद को पूरी तरह से खारिज किया। उन्होंने इस तरह के भेद को खारिज करने के लिए लोकजन के दिन–प्रतिदिन की घटनाओं में प्रयुक्त होने वाले रूपकों को आधार बनाते हुए एक सार्थक तर्क के साथ–साथ पूरी तरह से वैज्ञानिक पक्ष रखा। अतएव सन्त रज्जब ने समाज में एक लंबे समय से व्याप्त अंधविश्वासों एवं धर्मगत भेद को पूरी तरह से खारिज किया। साथ ही लोकजन को भी इस तरह के अंधविश्वास एवं भेद को स्वीकार न करने के लिए बड़े स्तर पर दिन–प्रतिदिन की घटनाओं से संबन्धित रूपकों के माध्यम से प्रेरित किया।

रज्जब के लेखन का लौकिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

संत रज्जब की रचनाओं को दृष्टिगत किया जाय तो उन्होंने जीवन के हर पक्ष को छुआ।

जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं रहा जिसको आधार बनाकर लोकजन को मूल्यों के अनुरूप जीना न सिखाया हो। सन्त रज्जब का लौकिक पक्ष लोकजन के दैनिक जीवन की घटनाओं पर आधारित है। अर्थात जीवन की दैनिक क्रियाओं को ही लोक जगत के रूप में देखा। रज्जब की काव्यगत रचनाओं को देखें तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि रज्जब का दर्शन कोई गूढ़ विषय–वस्तु के रूप में नहीं है बल्कि सरल, आकर्षक एवं हृदय ग्राही है। लोक प्रसंगों में उन्होंने जगत, आध्यात्म और दर्शन को ढूंढने का प्रयास किया है। सन्त रज्जब की काव्यगत रचनाओं को हम देखें तो उन्होंने धर्म के सामाजिक पक्षों को आत्मसात करने की कोशिश की है। धर्म से जुड़े उन समस्त तत्वों को अपने काव्य में शामिल किया है जो व्यक्ति के जीवन को काफी सरल एवं सहज बनाते हैं। रूपकों को आधार बनाकर लोकजन की मंगल कामना करते हैं। सन्त रज्जब का दार्शनिक पक्ष उस कुम्हार की तरह है जो पहले मिट्टी को तैयार करता है अर्थात मिट्टी के निर्माण के अभाव में हम मिट्टी से बने वस्तुओं की कल्पना नहीं कर सकते। उसी तरह जब तक हमारा मन, शरीर शोधित ना हो जाए, पवित्र न हो जाए तब तक हम अपने को ईश्वर से वास्तविक रूप में जोड़ नहीं सकते। "रज्जब उस साई (ब्रह्म) को आकाशवत् मानते हैं। आकाश शून्य है, निराकार है, निर्गुण है, किंतु उसमें बादल सगुण साकार भाव से प्रकट होते और विलुप्त होते रहते है। जो उपजे और विनष्ट हो वह माया है। जितने अवतार हैं वे उत्पन्न हुये और नष्ट हुए हैं, अतः वे ब्रह्म नहीं हैं।"[8]

यथा–

रज्जब साईं सुन्नि में, आभा वो औतार।
सो माया उपजै खपै, पाया भेद विचार।।[9]

संत रज्जब के माया के संदर्भ में बृजलाल वर्मा कहते हैं कि – "माया का पोषण मन के द्वारा होता है, यही उसे स्थान देता है। मन ही माया का आधार है। जब मन को माया मिल जाती है तो मनुष्य शरीर और मन दोनों से अंधा हो जाता है।"[10]

संत रज्जब गुरु की तुलना एक कुम्हार से करते हैं। जिस तरह से कुम्हार एक घड़ा बनाता है, उसी तरह गुरु भी अपने शिष्य को तैयार करता है। विभिन्न शारीरिक, मानसिक परीक्षाओं से उसे गुजरना पड़ता है और अंत में जा करके जिस तरह घड़ा बनता है उसी तरह व्यक्ति को उसका गुरु सभी रूपों में उसे तैयार करके ईश्वर के समीप ले जाता है। सन्त रज्जब एक रूपक के द्वारा दृष्टिगत करते हुये पक्के घड़े की तुलना मनुष्य से करते हैं और कहते हैं कि जिस तरह से पक्के घड़े को खरीदने से पहले पारखी अर्थात खरीदने वाला घड़े को ठोक–बजाकर देखता है उसी तरह संसार में श्रेष्ठ व्यक्ति अपनी मधुर वाणी के माध्यम से लोक कल्याणार्थ रहता है। जिस तरह से एक जौहरी आभूषणों को काफी परिश्रम और बुद्धिमत्ता के साथ तैयार करता है उसी तरह व्यक्ति भी अपनी बुद्धिमता के माध्यम से अपने जीवन को मानवतावादी कार्यों में लगाता है और मानव समाज का उत्सर्ग करता है। अतएव रज्जब का अध्यात्म और दर्शन पूरी तरह से निर्गुण विचारधारा पर आधारित एवं लोकजन के जीवन के दिन–प्रतिदिन की घटनाओं से संबंधित है। इस तरह देखा जाए तो सन्त रज्जब जीवन में अपने वास्तविक कर्तव्य को ही धर्म के रूप में स्वीकार किया है।

सेवा और सत्संग

संत रज्जब के जीवन का आधार सेवा और सत्संग था। सन्त रज्जब के काव्य को हम देखें तो उन्होंने बहुतायत स्थानों पर सेवा और सत्संग की चर्चा किया है एवं मानव जीवन में इसे सर्वोपरि माना है। उनका मानना है कि सेवा ही जीवन का आधार है और जिस व्यक्ति के हृदय में सेवा का भाव है, तो उसे कोई भी आघात अथवा पीड़ा नहीं दे सकता। यहाँ तक कि साधु, संत एवं आम लोकजन के लिए सेवा से बड़ा कोई भी कर्तव्य नहीं है। जिसके अंदर सेवा का भाव है वास्तव में वही ब्रह्मा की वास्तविक अनुभूति भी है। सही मायने में उनका आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्ष भी यही है। जिस तरह से राम सबरी की सेवा से उसके जूठे बेर भी खाते हैं, वस्तुतः यही सेवा का असली स्वरूप है। सेवा से समस्त सिद्धियां प्राप्त की जा सकती हैं, यहाँ तक कि ब्रह्मा को भी सेवा के द्वारा वश में किया जा सकता है। "सेवा और सुमिरन ब्रह्म साधना के लिए नितांत आवश्यक है। गुरु की सेवा और गोविंद का सुमिरन दोनों मिलकर ही उस ब्रह्म का साक्षात्कार कराते हैं।"[11]

हम सन्त रज्जब के सत्संग की बात करें तो सन्त रज्जब का सत्संग सेवा पर ही आधारित है। सत्संग को वे सुमिरन के रूप में भी देखते हैं। सत्संग के द्वारा समस्त दुखों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी सत्संग को महत्वपूर्ण माना और वे कहते हैं कि व्यक्ति में क्लेश एवं बुराइयों को सत्संग के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है। सत्संग का संदर्भ भगवदगीता के साथ–साथ रामचरित मानस में भी मिलता है। सत्संग के द्वारा कमजोर से कमजोर व्यक्ति भी मूल्यवान बन जाता है। इस तरह देखा जाए तो संत रज्जब ने सेवा, सत्संग एवं उपासना को जीवन में एक महत्वपूर्ण अभिकरण के रूप में स्वीकार किया और संदेश भी दिया कि इसके माध्यम से हम अपने उत्सर्ग के साथ साथ लोकजन का भी उत्सर्ग कर सकते हैं। सेवा, सत्संग एवं उपासना भगवत भक्ति का प्रमुख साधन या एक अंग के रूप में है।

प्रेम एवं भक्ति

संत रज्जब का जीवन प्रेम एवं भक्ति से भरा था। इनका मानना था कि प्रेम और भक्ति के अभाव में मूल्यों के अनुरूप मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रेम एक ऐसी स्थिति है जिससे देवताओं को भी अपने बस में किया जा सकता है। ज्ञान और प्रेम का योग शक्ति है जिससे हम अपने कर्तव्यों की साधना को प्राप्त कर सकते हैं। "संत रज्जब प्रेम के संदर्भ में कहते हैं कि– "अब तो भागवत् विरह में प्रेमी की यह दशा हो गई है कि उसके बिना सुख–सामग्री भी अच्छी नहीं लगती है– हाँ, यदि उसका सहयोग हो जाए तो नाना प्रकार के दुख भी अच्छे लगेंगे।"[12] रज्जब की भक्ति के संदर्भ में डॉ. बृजलाल वर्मा कहते हैं कि– "रज्जब की भक्ति का उपासना घर निर्गुण निराकार ब्रह्म है। वह एक है। वही ओम है।"[13] संत रज्जब के प्रेम एवं भक्ति के संदर्भ में बृजलाल वर्मा आगे फिर कहते हैं कि– "प्रेम के सदन में सेवक एवं स्वामी का भेद समाप्त हो जाता है, ध्याता, ध्येय और ज्ञाता, ज्ञेय का पार्थक्य भी मिट जाता है।"[14] अर्थात सेवक और स्वामी दोनों एक हो जाते हैं। सभी प्रकार की दूरियां समाप्त हो जाती हैं। अस्तु, कहा जा सकता है कि संत रज्जब ने अपने जीवन संसार में प्रेम एवं भक्ति को सर्वोपरि माना एवं सामाजिक संबंधों के निर्माण की प्रक्रिया में एक प्रमुख अभिकरण के रूप में स्वीकार किया।

सुमिरन, भजन एवं ध्यान

आज लोकजन के बीच सुमिरन, भजन एवं ध्यान को बृहद वृतांत के रूप में देखा जा सकता है। भारतीय समाज में संत परंपरा ही नहीं वरन आमलोकजन के जीवन का एक अभिन्न अंग भजन है। संत रज्जब ने भी भजन को जीवन का आधार बनाया। संत रज्जब का मानना है कि सुमिरन, भजन और ध्यान के माध्यम से हम अपनी श्रद्धा अपने इष्ट के प्रति समर्पित करते हैं। राम और रहीम को खोजने की कोशिश करते हैं। ध्यान, भक्ति और सुमिरन के माध्यम से सामाजिक संबंधों को मजबूत करते हुए इसकी यात्रा को गतिमान बनाए रखा जा सकता है। "ध्यान ब्रह्म साधना का महत्वपूर्ण साधन माना गया है। यह ध्यान विषय–गत भेद से ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों कांडों में अपना विशेष स्थान रखता है।"[15] इस पक्ष को लोकजन को समझाने एवं समझने हेतु संत रज्जब ने ढेर सारे रूपको की रचना की और उन रूपकों के माध्यम से लोकजन को जीवन का सही फलसफा बताया।

अतएव कहा जा सकता है कि रज्जब का जीवन प्रेम, भक्ति एवं साधना से परिपूर्ण था। वे इसको जीवन का आधार मानते थे। आज जिस चौराहे पर मानव सभ्यता की यात्रा पहुँच चुकी है वहाँ एक बार फिर आवश्यकता है –प्रेम, भक्ति एवं साधना के साथ सुमिरन, भजन एवं ध्यान की वैचारिकी को आत्मसात करने की। संत रज्जब का मानना था कि इस धरा पर भगवान का स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ है।

यथा –

इस माया मडाण मधि, सुमरिनसं कछु नाहिं।
सो आधार उर राखिये, जन रज्जब जिव माहि।।[16]

रज्जब के साहित्य में योग दर्शन

संत रज्जब को निर्गुण संत परंपरा का महान संत माना जाता है। निर्गुण संत परंपरा में योग दर्शन का काफी महत्त्व है। वैसे हमारे प्राचीन धर्मग्रंथों में योग की एक महान एवं समृद्ध परंपरा का उल्लेख दृष्टिगत है। ऋग्वेद एवं गीता के साथ–साथ अन्य धर्मग्रंथों में इसके उल्लेख मिलते हैं। भारत की यह एक अमूल्य निधि के रूप में आज हमारे शीर्ष नेतृत्व द्वारा इसको एक वैश्विक मंच प्रदान किया जा रहा, जो भारत एवं भारतवासियों के लिए गौरव की बात है। भारत में योगशास्त्र के आदि पुरुष के रूप में महर्षि पतंजलि का नाम विख्यात है। इस संदर्भ में ब्रजलाल वर्मा कहते है कि "यम द्वारा नचिकेता को उपदेश देते हुये कहते हैं कि शरीर रथ है, पुरुष रथी है, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है, इंद्रियाँ घोड़े हैं, विषय ही विचरण के लिए मार्ग है, शरीर, मन, इंद्रियाँ इन सबके सहित जीवात्मा ही भोक्ता है।"[17] संत रज्जब का इस संदर्भ में एक पद बड़ा ही प्रचलित है, जिसे यहाँ उल्लेखित किया जा रहा है–

मन तुरग चेतन चढै, पवनी पखिसो जाय।
रज्जब बैठें शून्य में, महि मिलै खुदाय।।[18]

इस तरह देखा जाए तो संत रज्जब का समस्त जीवन दर्शन योग की अवधारणा पर आधारित है। संत रज्जब का मानना है कि ब्रह्म को प्राप्त करना हमारे शरीर और मन द्वारा ही

संभव है। रज्जब योग दर्शन के संदर्भ में कहते हैं कि – "ध्यान जैसा रहेगा गति– मत भी वैसी ही हो जाएगी। इंद्रिय विषयों से ध्यान रहेगा तो भौतिक रस ही प्राप्त होगा।"[19]

यथा–

पांच तत्व पचरस, प्राण तत्व घरि ध्यान।
रज्जब रचे बखानियहि, जो जेहि ठाहर ठान।।[20]

संत रज्जब के योग दर्शन के संदर्भ में बृजलाल वर्मा कहते हैं कि– "रज्जब जी की साधना और उपासना को हम एक ही नाम देना चाहते हैं और वह है भक्तियोग। उनकी साधना में सुरति (प्रवृत्ति) और निरति (निवृत्ति) दोनों बने रहते हैं। रज्जब जी भक्तियोगी हैं।"[21]

ध्यान और योग के लिए धैर्य एवं अभ्यास की महती आवश्यकता होती है, इसके अभाव में हम अपने इष्ट को प्राप्त नहीं कर सकते। इस तरह देखा जाये तो संत रज्जब ने योग को जीवन का महत्वपूर्ण आधार माना एवं इसके आधार पर जीवन को गतिमान करना सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया। लेकिन इन्होंने जुड़े वाह्य आडंबर को कभी भी स्वीकार नहीं किया। विविध रूपों में भेष धारण करके और गलत तथ्यों के आधार पर ब्रह्म की प्राप्ति को वे सही रास्ता नहीं मानते हैं।

अवतारवाद की अवधारणा का खंडन

संत रज्जब ने अवतारवाद की वैचारिकी को कभी भी स्वीकार नहीं किया, बल्कि वे इस तरह की वैचारिकी का सदैव खंडन करते रहे। यहाँ एक तथ्य और स्पष्ट कर देना है कि जिस ब्रह्मा को हम इस धरा पर अवतार के रूप में देखते हैं, रज्जब उसे ब्रह्मा के रूप में नहीं मानते। "रज्जब जी अवतारों को ब्रह्म नहीं मानते। वे उन्हें मायाबद्ध जीव ही मानते हैं। उनके विचार से अवतार से यह आशा करना कि वह भव–सागर पार करा देगा, भ्रम मात्र है। अवतार तो स्वयं मायाग्रस्त है। तब फिर मायाग्रस्त को किस प्रकार मुक्त करेगा।"[22] संत रज्जब का ब्रह्मा– अवतारी ब्रह्मा, विष्णु और महेश से काफी ऊपर है। अस्तु, अवधारणात्मक रूप में कहा जा सकता कि संत रज्जब का जीवन दर्शन एवं सामाजिक विरासत लोक व्यवहारों पर आधारित है। संत रज्जब यहाँ आम लोकजन के साथ खड़े दिखते हैं।

समापन अवलोकन

संत रज्जब 17वीं शताब्दी के एक क्रांतिकारी लेखक थे, जो मानव जीवन के दिन प्रतिदिन की घटनाओं को आधार बनाकर एक समन्वयकारी व्यवस्था को बनाने हेतु सामाजिक सम्बन्धों का ताना–बाना बुनते हैं। संत रज्जब अपने मानवतावादी अवदानों में धर्मों की सर्वोपरिता जैसी वैचारिकी के कारण विभिन्न खेमों में बटे लोकजन को एक खेमे में लाने की कोशिश भी करते दिखते हैं। वास्तव में ये उनकी महत्वपूर्ण सामाजिक विरासत है। संत रज्जब द्वारा स्वयं मुस्लिम धर्मावलंबी होने के बावजूद भी हिंदू धर्म को स्वीकार करके एक हिंदू पीठाधीश्वर को अपना गुरू बनाना धार्मिक सौहार्द का एक ऐसा प्रतीक है जो उत्तर आधुनिकता के पायदान तक मिट नहीं पाया बल्कि वह सौहार्द की यात्रा रज्जब परंपरा के साथ–साथ अन्य धर्मावलंबियों की परंपरा में देखी जा सकती है। आज संत रज्जब का भौतिक शरीर नहीं है, लेकिन उनकी वैचारिकी आज रज्जब पंथ के रूप में पूरे भारत में विद्यमान है जो हिंदू–मुस्लिम सौहार्द का वैशिष्ट्य है।

संत रज्जब के रुपक जाति–पाति के भेद एवं अंधविश्वास तथा छुआछूत जैसी वैचारिकी को कदापि स्वीकार नहीं करते हैं। वे इस तरह की व्यवस्था को पूरी तरह खारिज करते हैं। संत रज्जब के इस अवदानो से सामाजिक परिवर्तन की यात्रा को बड़े स्तर पर गति मिली। अस्तु, इन्हें भारत के पुनर्जागरण काल का एक महान प्रहरी एवं क्रिया समाज वैज्ञानिक कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज भी उनकी वैचारिकी रज्जब पंथ के रूप में वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा को मजबूत एवं पुष्पित तथा पल्लवित करती है। वैश्विक पटल पर वसुधैव कुटुंबकम की वैचारिक के स्थापत्य हेतु आज एक बार फिर आवश्यकता है संत रज्जब को आत्मसात करने की, उनकी अवदानो को व्यवहार में अमल करने की।

संदर्भ

पांडेय, नन्दकिशोर (2014) : संत रज्जब, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 02

चतुर्वेदी, परशुराम (1981) : संत काव्य–धारा, किताब महल, इलाहाबाद, पृ. 229, Available at ePustakalay

चतुर्वेदी, परशुराम (2014) : उत्तरी भारत की संत परंपरा, साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, पृ. 298

मजीठिया, सुदर्शन सिंह (1962) : संत साहित्य, रूप कमाल प्रकाशन दिल्ली, पृ. 275, Available at ePustakalay

पांडेय, नन्दकिशोर (2014) : संत रज्जब, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 80

वही, पृ. 130

वर्मा, व्रज लाल (1965) : संत कवि रज्जब (संप्रदाय और साहित्य), प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, राजस्थान, पृ. 236, Available at ePustakalay

वही, पृ. 124–125

वही, पृ. 125

वही, पृ. 197–198

वही, पृ. 202

वही, पृ. 111

वही, पृ. 130

वही, पृ. 109

वही, पृ. 247

वही, पृ. 113

वही, पृ. 140

वही, पृ. 140

वही, पृ. 149

वही, पृ. 149

वही, पृ. 152

वही, पृ. 165

सीताराम[1], डॉ. प्रशांत खत्री[2]

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

ग्रामीण समुदाय के स्वास्थ्य व्यवहार का अध्ययनः एक साहित्यिक समीक्षा

सार संक्षेप

भूमिकाः स्वास्थ्य एक व्यापक अवधारणा है। यह अनेक कारकों के आपसी संतुलन और अनुकूलन का परिणाम होता हैं। आज की भागम–भाग जिंदगी में और धन अर्जन के चक्कर में अपने मूलभूत स्वास्थ्य रूपी 'धन' को खोते जा रहें हैं। अपने स्वास्थ्य का देखभाल कर पाना अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य हो गया है, लेकिन इसी दिनचर्या के साथ तालमेल बैठाकर और नियमित व्यायाम और संतुलित भोजन को जीवन का हिस्सा बनाकर हम स्वयं को स्वस्थ एवं तनाव मुक्त रख सकते हैं। बदलते तेजी से वैश्विक तापांतर ने लोगों को बीमारियों के प्रति सुभेद्य बना दिया है। बीमारी से स्वस्थ होने, स्वास्थ्य संवर्धन करने तथा बीमारियों से स्वयं को और अपने परिवार को बचाये रखने का निरन्तर सकारात्मक व्यवहार इत्यादि का समुच्चय का सम्मिलित रूप ही 'स्वास्थ्य व्यवहार' कहलाता है। कोई व्यक्ति अपने बीमारी का इलाज कैसे करता है? इसमें कौन–कौन से कारक शामिल होते हैं साथ ही साथ इस अध्ययन में यह भी देखा जाएगा की ग्रामीण लोगों की चिकित्सा दुनियाँ कैसे कार्य करती है। किसी भी व्यक्ति/समुदाय के स्वास्थ्य व्यवहार का निर्धारण उसके परिवेशगत परिस्थितियों अथवा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों के अंतरक्रियाओं पर निर्भर करता है।

शोध प्रविधिः इस समीक्षात्मक अध्ययन में देश के अंदर विभिन्न भागों और संस्कृतियों में सम्पन्न हुए अध्ययनों को प्रमुखता दिया गया है। चूँकि स्वास्थ्य और बीमारी का अध्ययन एक वैश्विक महत्त्व का विषय है इसलिए इस साहित्यिक समीक्षा (पुनरावलोकन) को और अधिक विश्वसनीय एवं वैश्विक बनाने के लिए इसमें देश देशान्तर में भी सम्पन्न किये गये ग्रामीण स्वास्थ्य अध्ययन को भी समान प्रमुखता प्रदान किया गया है। यह समीक्षा पूर्ण रूप से द्वितीयक आँकडों पर आधारित है।

उद्देश्यः इस अध्ययन में इस बात पर गौर किया गया है कि ग्रामीण आबादी अपने स्वास्थ्य जरूरतों को कैसे पूरा करती है। ग्रामीण लोगों के स्वास्थ्य व्यवहार को नियंत्रित करने वाले कारकों की पहचान करना है। ग्रामीण लोगों के स्थानीय चिकित्सा दुनियाँ पर भी प्रमुखता से देखा जा रहा है।

परिणामः 'स्वास्थ्य धन है'। यह स्वास्थ्य रूपी धन संचयन कई कारकों पर निर्भर करता है। ग्रामीण स्तर पर अशिक्षा, बीमारियों के प्रति जागरूकता में कमी और जर्जर सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं के चलते स्थानीय लोग मजबूर होकर ओझा, सोखा, झोलाछाप और किराना स्टोर जैसे स्थानों से स्वास्थ्य व्यवहार जैसी मूलभूतजरूरतों को पूरा करने के लिए बाध्य हैं। गरीबी के कारण महँगी स्वास्थ्य सेवाओं का इस्तेमाल करने में नाकाम रहने से स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर पड़ता है। स्वास्थ्य सेवाओं की दूरी भी स्वास्थ्य व्यवहार पर

[1]शोधछात्र, मानवविज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज –211002 (भारत)
ईमेल– ramyadav325@gmail.com
[2]सहायक प्राध्यापक, मानवविज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211002
ईमेल –prashantkhattri3@gmail.com

असर डालती है। स्वास्थ्य महत्त्वपूर्ण संसाधनों में से एक है। जब कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है तो उससे ठीक होने के लिए वह अपने सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों के आधार पर एवं उपलब्ध घरेलू उपचरात्मक और आधुनिक निदानात्मक स्वास्थ्य सेवाओं का उपयोग करते हुए स्वास्थ्य लाभ करता है।

सूचक शब्द : स्वास्थ्य व्यवहार, स्वास्थ्य संवर्धन, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, स्वास्थ्य सेवाएं।

प्रस्तावनाः

विश्व की कुल जनसंख्या की 48 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है (वर्ल्ड आर्गेनाइजेशन प्रास्पेक्ट्स–2011)। विश्व की कुल जनसंख्या में ग्रामीण जनसंख्या की सर्वाधिक संख्या भारत में रहती है (वर्ल्ड आर्गेनाइजेशन प्रास्पेक्ट्स–2011)। भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा जनसंख्या वाला देश है (जनसंख्या, 2011)। इसमें विश्व की करीब 17.5 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है जो करीब 121.05 करोड़ है (जनगणना–2011)। भारत की कुल आबादी का 68.9 प्रतिशत गाँवों में रहता है (जनगणना–2011)। इस प्रकर कहा जा सकता है कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। जब तक गाँवों को स्वास्थ्य की मूलभूत जरूरतें नहीं उपलब्ध कराई गई तब तक असली मायने में स्वस्थ भारत की संकलपना साकार नहीं हो सकती है। इसलिए गाँवों को स्वास्थ्य के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने की परम आवश्यकता है। मानव विकास सूचकांक किसी भी देश की आत्मा का प्रदर्शन करते हैं। इसके संकेतकों में जीवन प्रत्याशा, शिक्षा और प्रति व्यक्ति आय शामिल होता है। मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) में भारत की रैकिंग 131वीं है (कुल देश 188, एचडीआई रिपोर्ट–2022), जो संतोषप्रद हालत में नही है। यह रिपोर्ट बताती है कि देश में अशिक्षा, गरीबी और जीवन प्रत्याशा का स्तर बहुत ही निम्न स्तर का है। जब तक इन संकेतकों में आमूलचूक परिवर्तन नहीं होता है तब तक राष्ट्र के विकास का पहिया गति नहीं पकड़ेगा। देश के स्वास्थ्य सेवाओं की खस्ताहाल सुधारने के लिए भारत सरकार नयी राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (2017) लायी है। जिसमें सरकार द्वारा जीडीपी का 2.5% खर्च करने का लक्ष्य रखा गया है (एनएचपी, 2017)। नयी राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति में इस प्रस्ताव का भी उल्लेख है कि ग्रामीण और परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों पर शोध करके उसको वैज्ञानिक प्रविधियों के साथ जोड़कर उसकी उपयोगिता को बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाया जा सके। इससे लोगों को स्वदेशी स्वास्थ्य सेवाओं को उनके निवास स्थान के आस पास से ही उपलब्ध कराया जा सकता है। अभी हाल ही में जारी की गई राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–5 (2022) रिपोर्ट में ग्रामीण क्षेत्रों में कुल प्रजनन दर 1992–93 के प्रति महिला 3.7 बच्चों से घटकर 2019–21 में 2.1 बच्चे हो गई है जबकि वहीं शहरी क्षेत्रों की महिलाओं में कुल प्रजनन दर 1992–93 के 2.7 बच्चों से 2019–21 में 1.6 बच्चे हो गई है। इस प्रकर से यह भी देखा गया है कि कुल प्रजनन दर राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–4 के मुकाबले राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–5 में तुलनात्मक रूप से 2.2 से घटकर 2.0 हो गई है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–5 के अनुसार, सर्वेक्षण में शामिल 23.3% महिलाओं की शादी 18 वर्ष की कानूनी आयु प्राप्त करने से पहले हो गई, जो राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–4 में रिपोर्ट किये गए 26.8% से कम है। पुरुषों में कम उम्र में विवाह 17.7% (एनएफएचएस रिपोर्ट–5 में) और 20.3% (एनएफएचएस रिपोर्ट–4) के अनुसार है। किशोर गर्भावस्था के मामले में कुछ सुधार देखा गया है जिसमें किशोर गर्भधारण की दर 7.9% से

घटकर 6.8% हो गई है। इस तरह के परिवर्तन लोगों के स्वास्थ्य व्यवहार पर सकारात्मक असर डालते हैं।

साहित्यिक समीक्षाः

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' : अर्थात सभी सुखी हो और सब रोग मुक्त हों। प्रायः हम सभी ने यह अनुभव किया होगा कि इस संसार में मनुष्य तो क्या, छोटे से छोटे एवं बड़े से बड़े जीव भी सदा रोग, वियोग, नुकसान, अपमान व अज्ञानता से होने वाले दुःखों से बचने की कोशिश करता है और सुख, स्वास्थ्य एवं कल्याण की प्राप्ति के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि जब से सृष्टि कि रचना हुई है, तभी से मनुष्य भूख, प्यास, नींद आदि स्वाभाविक इच्छाओं को पूरा करने के साथ ही साथ उत्पन्न हुई शारीरिक व्याधियों से भी निजात पाने के लिए प्रयत्नशील रहा है। स्वास्थ्य केवल जैविक या शारीरिक अवधारणा नहीं है, वरन् इसका संबंध सामुदायिक,सामाजिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक अवधारणा से भी है (विश्व स्वास्थ्य संगठन)। नेफिओडो ने कहा है कि "20वीं सदी में इंडस्ट्री वाज़ दी इंजन ऑफ एकॉनोमी और 21वीं सदी में हेल्थ केयर इज गोइंग टू बी इंजन ऑफ इकोनॉमी"। कोविड–19 जैसी महामारी ने पूरे वैश्विक समुदाय के स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था पर गहरा और नकारात्मक असर डाला है। इससे यही मालूम होता है कि दोनों का आपस में गहरा संबंध है। इसलिए स्वास्थ्य एवं उससे संबंधित पहलुओं पर आद्यतन अध्ययन किया जाना आवश्यक हो जाता है। यह भी कहावत अत्यंत प्रसिद्ध है कि "स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है"। इसका सीधा सा अर्थ यह है कि अच्छा स्वास्थ्य हमारी मूलभूत आवश्यकतों मे से एक है एवं इसके बिना कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत और सामाजिक उत्तरदायित्त्व का निर्वहन करने में असमर्थ होता है, इसलिए स्वास्थ्य की धनात्मक स्थिति को प्राप्त करने के लिए हर समुदाय के लोग प्रयत्नशील दिखाई देते है। समाज में व्याप्त बीमारियाँ मुख्यतया संक्रमित एवं गैर–संक्रमित प्रकार की होती हैं। परंतु प्रत्येक समाज में विभिन्न बीमारियों पर अपनी अलग अलग समझ और विश्वास होने के कारण उसके निदान का तरीका भी अलग अलग होता हुआ दिखाई देता है (बारू,1968)।

बीमारियों को लेकर लोगों में अलग–अलग समझ होती है। बीमारी और इसके पूरक विचार स्वास्थ्य की अवधारणा लोगों के सांस्कृतिक और इसके और सामाजिक परिवेश की कुछ विशिष्ट मान्यताओ में निहित होती है। किसी एक सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ मे एक स्वस्थ व्यक्ति अन्य सामाजिक संदर्भ मे बीमार कहा जा सकता है (येव, 2015)।

डॉ. एफ. इ. क्लेमेंट के द्वाराः रोग का सिद्धांतीकरण

तालिका सं –01

अलौकिक सत्ता / एजेंसी	मानव सत्ता / एजेंसी	प्राकृतिक सत्ता / एजेंसी
आत्मा की क्षति	बुरी नजर का असर	बीमारी जनक वस्तुए
बुरी आत्मा का बलात / अनुचित प्रवेश	बुरे इरादे से स्पर्श	किसी अवांछित का प्रवेश
शराब की बीमारी / लत	जादू	पर्यावरणीय प्रभाव
वर्जनाओं / प्रतिमान का उल्लंघन	टोना	वाह्य सत्ता

ग्रामीण समुदायों में यह मान्यता है कि यदि कोई व्यक्ति जादू, टोना जैसी युक्त गलत चीजों को छूँ लेता है या उसके संपर्क मे आ जाता है अथवा ऐसे स्थान के ऊपर से चला जाता है जहां टोटका हुआ हो तो उसमें गलत भावना से स्थापित बुरी शक्तियां उस व्यक्ति के शरीर के अंदर प्रवेश कर जाती हैं और उस पर नकारात्मक असर डालती है और उसे बीमार बना देती है (रिवर,1924, क्लेमेंट्स,1932)।

स्वास्थ्य व्यवहार कई सतत् कार्यवाहियों का एक समुच्चय है जिसमें इस बात का ध्यान रखा जाता है कि क्या खाया जाए और क्या न खाया जाये, साथ ही साथ कैसे रहा जाए इत्यादि जो स्वास्थ्य को सुरक्षित एवं संतुलित बनाएं रखने में मदद करे (प्रॉबर्ट,1989 , फजेमिलेहीन, 2011)।

ग्रामीण लोगों की पारंपरिक चिकित्सा/मेडिसन तक लोगों की आसानी से पहुँच, त्वरित लाभ, सस्ता इलाज, हमेशा उपलब्धता, उस पर विश्वनीयता और उनके मूल्यों, विश्वासों, संस्कृतियों और व्यक्तिगत विचारधारों का सम्मान इत्यादि का होना, ऐसी तमाम विशेषताएं उसे आधुनिक मेडिसन से विशिष्ट बनाती हैं (मोतम्बों, 2012)।

कासिम और अन्य (2014) के द्वारा पाकिस्तान की महिलाओं के स्वास्थ्य मांग व्यवहार पर सामाजिक–आर्थिक कारकों के पड़े प्रभाव के पुरावलोकन अध्ययन में यह निष्कर्ष निकल कर आया कि महिलाओं को अपने स्वास्थ्य देखभाल के लिए पारिवारिक सामाजिक–आर्थिक स्थिति के साथ संतुलन बनाते हुए कुटुंब जनों की इजाजत और समर्थन भी लेनी होती है। इस तरह के बहुत से मौके पर महिलाओं को अपने स्वास्थ्य समस्याओं के साथ आर्थिक तंगी के चलते समझौता करना पड़ता है। इससे कई मामलों में पुरुष महिलाओं की कुछ समस्याओं पर ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं। इससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

समाज में व्याप्त इस प्रकार की गलत मानसिकता महिलाओं के स्वास्थ्य व्यवहार को बुरी तरह से प्रभावित करता है क्योंकि ऐसी परिस्थिति में उनका इलाज नहीं होता है (दोशी और अन्य, 2010)।

ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में तपेदिक रोग (टीबी) को लेकर अनेक प्रकार की गलत धारणाएं प्रचलित है। इसे एक प्रकार का सामाजिक कलंक/धब्बा माना जाता है। इस सामाजिक कलंक से बचने के लिए लोग इलाज करवाना ही नहीं चाहते है क्योंकि उनकी गोपनीयता भंग होने का डर रहता है। इससे लोग संक्रमण को पूरे परिवार और समाज में फैलते है। यह नजरिया पूरे समाज के स्वास्थ्य व्यवहार का प्रभावित करता है"(कुरैशी और अन्य ,2001)।

दास और दास (2017) ने "स्वास्थ्य मांग व्यवहार और भारतीय स्वास्थ्य व्यवस्था" के अध्ययन में भारतीयों के स्वास्थ्य मांग व्यवहार और भारतीय स्वास्थ्य व्यवस्था के अंतरसंबंधों को रेखांकित किया हुआ है। इन्होंने गहन मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण के अध्ययन के आधार पर स्वास्थ्य मांग व्यवहार को तीन उपखंडों में बाँटा है। जिसमें (पहला) सुरक्षात्मक/बचाव व्यवहार, (दूसरा) रूग्णता व्यवहार और (तीसरा) रोगी भूमिका व्यवहार है। स्वास्थ्य व्यवहार वह व्यवहार होता है जिसके द्वारा यह तय होता है कि कौन सी चीजें स्वास्थ्य को प्रोत्साहित कर रही है और कौन सी स्वास्थ्य के लिए बाधक बन रही है। सुरक्षात्मक व्यवहार के अंतर्गत वे व्यवहार व क्रिया–कलाप सम्मिलित होते हैं जो स्वास्थ्य को मानक स्तर पर बनाए रखें और विभिन्न

बीमारियों से सुरक्षित रख सकें, जैसे योगा, मॉर्निंग वॉक, नियमित जिम जाना इत्यादि। रुग्णता व्यवहार वे व्यवहार होते है जिसमे व्यक्ति अपने स्वास्थ्य समस्या के प्रकृति को महसूस कर लेने के बाद उसको नियंत्रण में करने के लिए दोस्तों, रिशेदारों और स्वास्थ्य से संबंधित मैगजिनों से उस विशेष बीमारी के इलाज का तरीका पता करके बीमारी के खिलाफ निदानात्मक कदम उठाता है। बीमार भूमिका व्यवहार के अंतर्गत वे व्यवहार आते है जब किसी व्यक्ति के रोग की पुष्टि हो जाती है। इलाज की योजना का अनुपालन का निर्देशन, उचित खानपान को बनाए रखना, विशेषज्ञों के राय पर इलाज के लिए उठाए गए प्रभावी स्वास्थ्य अनुकूल व्यवहार बेहतर स्वास्थ्य की स्थिति का निर्माण करेगा।

जैन, नंदन और मिश्रा, 2006 ने पश्चिमी उत्तरप्रदेश के आगरा जनपद के ग्रामीण समुदाय के लोगों के स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता के प्रति धारणाओं और स्वास्थ्य देखभाल व्यवहार के गुणात्मक मूल्यांकन के अध्ययन में बातें निकल कर आयीं है कि प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों का गाँव से दूर होना, इलाज की कौन कौन सी व्ययस्था है और कौन–कौन सी व्यवस्था नहीं है इत्यादि की जानकारी का अभाव होना, डॉक्टर और दवा दोनों का नियमित रूप से उपलब्ध न होना और साथ ही साथ सामाजिक–पारिवारिक जीवन से जुड़े बहुत से अन्य कारण भी इन सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं के उपयोग को हतोत्साहित करने का काम करते रहते हैं।

निष्कर्ष:

साहित्य पुनरावलोकन के आलोक में यह देखा गया कि ग्रामीण स्तर पर स्वास्थ्य पर गहरा संकट छाया हुआ है। ग्रामीण आबादी अशिक्षा, बेरोजगारी और गरीबी जैसे त्रिकोण में फसी हुई है। ग्रामीण स्तर पर स्वास्थ्य सेवाएं बहुत ही लचर स्थिति में काम कर रहीं हैं। स्वास्थ्य संस्थान लोगों की मूलभूत जरूरतों को पूरा नहीं कर पा रहीं हैं। इसलिए लोग अशिक्षा और आर्थिक तंगी के कारण सस्ते में ओझा, सोखा से परामर्श एवं झोलाछाप, किराना स्टोर से दवा लेने को बाध्य हैं। इस तरह का स्वास्थ्य प्रतिकूल व्यवहार लोगों के स्वास्थ्य व्यवहार पर नकारात्मक असर डालता है। लोगों को आधुनिक दवाओं के प्रति हो रहे संदेह को दूर करने की आवश्यकता है। जिससे रोगी को त्वरित लाभ मिल सके। सरकार और समाज का लक्ष्य होना चाहिए कि जो व्यक्ति गंभीर रोगों से भी ग्रसित है उसे भी गरिमामाई जीवन जीने का अवसर प्राप्त हो सके। तब जाकर असली मायने में कोई राष्ट्र विकसित और सभ्य कहलाने का अधिकारी होगा। सभी निरोगी और और सभी स्वस्थ हो इसी संकल्पना पर कार्य किये जाने की जरूरत है।

संदर्भ

क्लेमनट्स, फॉरेस्ट इ. (1932): प्रेमिटिव कॉनसेप्टस ऑफ डिसीज. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया पब्लिकैशनस् इन आर्कियोलॉजी एण्ड इथनोंलॉजी 32(2): 185–252।

प्रॉबर्ट, सी. के., डेविस, एल. जी., हिबबार्ड, जे. एच., किने आर.ई. (1989): फ़ैक्टर्स दैट इन्फ्लूअन्स दी इलडरी टू यूज ट्रडिशनल ऑर नॉन ट्रडिशनल नूट्रिशन इनफार्मेशन सोर्सेज'. जे एएम डाइइट एसोसिएशन 89: 1758–1762।

कुरैशी, ए.आई., तूहरीम, एस., ब्रोडेरिकक, जे.पी., बटजेर, एच.एच., होन्डो, एच. एण्ड हेनले, दी.

एफ. (2001): स्पॉनटेनियस इंट्रासेरेबरल हेम्रज. न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडिसिन, 344 (191). 1450–1460 ।

जैन, एम., नंदन डी., मिश्रा, एस.के. (2006) : क्वालिटेटिव असेस्मन्ट ऑफ हेल्थ सीकिंग विहावियर एण्ड परसेप्संस रिगार्डिन्ग क्वालिटी ऑफ हेल्थ केयर सर्विसेज़ अमंग रुरल कम्यूनिटी ऑफ डिस्ट्रिक्ट आगरा. इंडियन जर्नल ऑफ कम्यूनिटी मेडिसिन. वॉल्यूम 31, न. 3: 140–144 ।

दोशी, ए.एम., वान डेन ईडेन, एस. के., मॉररिल, एम.वाइ., सचेम्बरी, एम., थोम, डी. एच. एण्ड ब्राउन, जे.एस. (2010): वुमन विद डायबीटीज़: अन्डर्स्टैन्डिंग यूरिनरी इनकॉन्टीनेन्स एण्ड हेल्प सीकिंग बिहैवियर. दी जर्नल ऑफ यूरोलॉजी.184(4).1402–1407 ।

वर्ल्ड आर्गेनाइजेशन प्रास्पेक्ट्स रिपोर्ट –2011

भारत जनगणना रिपोर्ट–2011

मतांबो, के.ओ. (2012): बजट स्पीच, मिनिस्ट्री ऑफ फाइनेंस एण्ड डेवलपमेंट प्लाननिंग्स, गवर्नमेंट ऑफ बोत्सवाना ।

कासिम, एम., बशीर, ए. अन्य (2014): सोसियो– इकोनॉमिक्स इफेक्ट ऑन हेल्थ सीकिंग बिहैवियर ऑफ वुमन (रिव्यू पेपर). अड्वान्सेज इन ऐग्रिकल्चर, साइंसेज एण्ड इंजीनियरिंग रिसर्च. वॉल्यूम.4(6): 1446–1650 ।

येव, वी.डब्ल्यू.इ. (2015): कलेक्टिंग क्वालिटेटिव रिसर्च डाटा ऑन हेल्थ सीकिंग विहैवीयर ऑफ पेनिनसुलर मलेसियाज जर्नल ऑफ सोसाइटी एण्ड स्पेस, इशू नं. 11: 45–52 ।

दास, एस., दास, एम. (2017): हेल्थ सीकिंग बेहावियर एण्ड दी इंडियन हेल्थ सिस्टम. जर्नल ऑफ प्रिवेनटिव मेडिसिन एण्ड होलिस्टिक हेल्थ. 3(2):47–51 ।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण रिपोर्ट–5, मई 5, 2022 ।

प्रखर आनंद[1], डॉ. सुमित सौरभ श्रीवास्तव[2]

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

शहरी गरीब : अवधारणा और मुद्दे

सार संक्षेप

अधिकांश सरकारें और अंतर्राष्ट्रीय संगठन गरीबी के पैमाने और गहराई को कम आंकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप नीतियां अप्रभावी होती हैं। हम उस समय में रह रहे हैं जिसे आमतौर पर ''शहरी शताब्दी'' के रूप में जाना जाता है। शहर अब दुनिया की अधिकांश अर्थव्यवस्था और आधी से अधिक आबादी के आवास के लिए जिम्मेदार है। जैसे–जैसे दुनिया भर में शहरों का तेजी से विकास हो रहा है, उसमें रहने वाले गरीब और पिछड़े लोंगों के लिए जीवन कठिन होता जा रहा है। भारत में शहरी गरीबी के कारणों को ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढाचे की कमी से जोड़ा जा सकता है जो इन क्षेत्रों के निवासियों को बड़े शहरों में आजीविका की तलाश करने के लिए मजबूर करते हैं। शहरी क्षेत्रों में अधिकांश गरीब बहुत ही अनुचित जीवन जीते हैं जो विभिन्न प्रकार के जोखिमों, शॉक्स और वल्नेरेबिलिटीज से भरा होता है। यह शोध पत्र इन मुद्दों की व्याख्या करने की कोशिश करता है।

सूचक शब्द : शहरी गरीबी, आजीविका, वल्नेरेबिलिटी, जोखिम (Urban Poverty, Livelihood, Vulnerability, Risk)

परिचय

दुनिया में तेजी से शहरीकरण हो रहा है। 2014 में वैश्विक शहरी आबादी लगभग 3.9 बिलियन थी, जो कि 2050 में 6.3 बिलियन तक पहुंचने की उम्मीद है। लोग नौकरी और बेहतर जीवन की तलाश में शहरी केन्द्रों का रुख करते है, जबकि इन शहरों में लाखों गरीबों को बुनियादी जरूरतों के अभाव में झुग्गी–झोपड़ियों में रहना पड़ता है, और शहरों के विकास में भी इनकी समस्याएं पूर्ण रूप से हल नहीं हो पा रही है। वर्तमान आंकड़ों के अनुसार, शहरी गरीबी बढ़ रही है, और कुछ देशों में गरीब लोगों की संख्या अब ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में और भी तेज दर से बढ़ रही है। आज भारत में छह में से एक शहरी नागरिक गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहा है। यद्यपि शहरी केंद्र गरीबों के लिए आजीविका के वास्तविक अवसर प्रदान करते हैं, वे ऐसी परिस्थितियों का निर्माण भी करते हैं जो गरीबी को बढ़ाती है। यह शोध आलेख शहरी गरीबों और उनकी समस्याओं पर प्रकाश डालता है तथा साथ ही साथ शहरी गरीबी और आजीविका को भी समझने का प्रयास करता है।

[1]आई. सी. एस. ए. आर. डोक्टोरल फेलो, विकास अध्ययन केंद्र, अंतः विषय अध्ययन संस्था (IIDS) इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज उत्तर प्रदेश 211002
ई–मेल : prakharanand54@gmail.com
[2]सहायक प्रोफेसर, विकास अध्ययन केंद्र, अंतः विषय अध्ययन संस्था (IIDS) इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज उत्तर प्रदेश 211002
ई–मेल : sumit.manjula@gmail.com

शहरी गरीब : अवधारणा, परिभाषा और विशेषताएं

शहरी गरीबों को व्यापक अर्थों में निम्न जीवन स्तर और निम्न कौशल श्रम शक्ति द्वारा वर्णित किया जाता है। ये विशेष रूप से संकट के समय अपने आजीविका की सुरक्षा के लिए कमजोर होते हैं। अस्वच्छ स्थानों पर रहना, सेवाओं तक सीमित या कोई पहुंच नहीं, श्रम बाजारों पर निर्भरता, जटिल सामाजिक संपर्क, और उच्च स्तर की वल्नेरेबिलिटी, ये सभी शहरी गरीबों से ही संबंधित है। शहरी गरीबी लोगों के विशिष्ट समूहों के साथ–साथ विशिष्ट व्यक्तियों से भी जुड़ा हुआ है। इसे आम तौर पर दो तरह से परिभाषित किया जाता हैः पहली, स्वस्थ और न्यूनतम आरामदायक जीवन जीने के लिए आवश्यक न्यूनतम आय के आधार पर एक पूर्ण मानक के रूप में दूसरी, देश के औसत जीवन स्तर के आधार पर सापेक्ष मानक के रूप में (मैकडॉनल्ड्स और मैकमिलन 2008:395)

रॉबर्ट चेम्बर्स ने अपने उत्कृष्ट लेख, 'पावर्टी एंड लाइवलीहूड्स : हूज रियलिटी काउंट्स?' (1994:1) {22–24 जुलाई 1994 को वैश्विक परिवर्तन पर स्टॉकहोम गोलमेज सम्मेनल के लिए तैयार एक अवलोकन पत्र} में कहा है कि, ''गरीबों की वास्तविकताएं स्थानीय, जटिल, विविध और गतिशील है। आय संबंधित गरीबी महत्वपूर्ण है लेकिन ये आभाव (डेप्रिवेशन) का केवल एक ही पहलू है। सहभागी अध्ययन (पार्टिसिपेट्री अप्रेसल) कई प्रकार के अस्वस्थता (इल–बीइंग) और भलाई (वेल–बीइंग) के आयामों और मानदंडों की पुष्टि करता है क्योंकि लोग उन्हें स्वयं अनुभव करते हैं। गरीबी के अलावा इनमें सामाजिक हीनता, अलगाव, शारीरिक कमजोरी, वल्नेरेबिलिटी, मौसमी अभाव, शक्तिहीनता और अपमान भी शामिल है। मोजर ने 'परिसंपत्ति वल्नेरबिलिटी' को सीमित तरीकों के रूप में परिभाषित किया है। इसमें शहरी गरीब अपने 'परिसंपत्ति पोर्टफोलियो' का प्रबंधन कर सकते हैं जिसमें श्रम, मानव पूंजी, आवास, घरेलू संबंध और सामाजिक पूंजी शामिल है (मोजर 1998:1)।

अधिकांश शहरी गरीबों के पास कम वेतन और खराब काम करने की स्थिति के साथ–साथ अनिश्चित रोजगार की भी समस्या है। यद्यपि विश्व स्तर पर गरीबी को ग्रामीण जीवन की एक विशेषता के रूप में समझा जाता है, यह लेख शहरी गरीबों के मुद्दों की खोज करता है। शहरी गरीबी एक जटिल, गतिशील और बहुआयामी घटना है। संयुक्त राष्ट्र–पर्यावास (यूएन–हैबीटॉट) की रिपोर्ट 'स्लम ऑफ द वर्ल्ड : द फेस ऑफ अर्बन पावर्टी इन द न्यू मिलेनियम' (2003) ने बताया है कि विकासशील दुनिया में गरीबी, एक ऐसी घटना है जो लंबे समय से ग्रामीण क्षेत्रों से विशिष्ट रूप से जुड़ी हुई है, अब तेजी से शहरीकृत हो रही है। अलग–अलग देशों और शहरों के आकड़ों के अनुसार दुनिया में 40 से 80 प्रतिशत शहरी निवासी गरीबी में जीवन यापन कर रहे हैं जिनके पास आश्रय, बुनियादी शहरी सेवाओं और सामाजिक सुविधाओं की बहुत कम या बिल्कुल भी पहुंच नहीं है।

शहरी गरीबों का जीवन

रहन सहन और सेवाओं तक पहुंच–: शहरी केन्द्रों में लोग भीड़भाड़ वाली परिस्थितियों के पर्यावरणीय प्रभावों को कम करने के लिए सार्वजनिक और निजी सेवाओं के प्रावधानों पर निर्भर रहते हैं। दुर्भाग्य से कई गरीबों के पास पानी, नाली निकासी, ठोस अपशिष्ट निपटान प्रणाली जैसी सेवाओं तक कोई पहुंच नहीं है। इसका मतलब यह है कि शहरी गरीबी हमेशा

खराब गुणवत्ता वाले आवास से जुड़ी होती है जो अक्सर भीड़–भाड़ वाली अस्वच्छ झुग्गी बस्तियों में होते हैं। इन्हीं वजहों से शहरी गरीबों का स्वास्थ्य टीबी जैसे संक्रामक रोगों के प्रसार से खराब रहता है। मच्छरों से ग्रसित नालियां, आग और बाढ़ इनके घरों को पूरी तरह से तबाह कर सकती है। गरीबी स्वास्थ्य, शिक्षा, कानून और व्यवस्था सहित सेवाओं की एक विस्तृत श्रंखला तक पहुंच की कमी, लागत, भेदभावपूर्ण प्रथाओं, और बढ़ती बस्तियों की मागों के साथ जुड़ी हुई है। भारत में इन स्थितियों को आधिकारित तौर पर मान्यता प्राप्त बस्तियों (जहां सेवा प्रावधान की अनुमति है) और 'गैर–मान्यता प्राप्त' अवैध बस्तियों (जहां सेवा प्रावधान की अनुमति नहीं है) में गरीबों के विभाजन से और बढ़ा दिया जाता है। 'मान्यता प्राप्त' स्थिति आधिकारिक तौर पर गरीब लोगों को राजनीतिक व्यवस्था पर मांग करने की अनुमति देती है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उनकी आवाज सुनी जाती है। 'गैर–पहचान' श्रेणी के लोग, गरीबों में सबसे कमजोर होते हैं। यह लोग बेदखली या स्थानांतरण के निरंतर भय में अनिश्चित स्थलों जैसे– प्रदूषित नहर, फुटपाथों और रेलवे लाइनों के किनारे अनुपयुक्त परिस्थितियों में रहते हैं।

संपत्ति / आय –: शहरी क्षेत्रों में जीवन मंहगा हो सकता है। लोगों को ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरों में रहने की उच्च लागत के लिए नकदी तक पहुंच की आवश्यकता होती है, जहां भोजन और कई गैर–खाद्य वस्तुओं (जैसे– किराया, ऊर्जा, परिवहन, पानी और अन्य आवश्यक वस्तुएं) और सुविधाओं को खरीदना होता है। इन जरूरतों को पूरा करने के लिए गरीब लोगों की क्षमता, रहने के लिए सुरक्षित स्थान (अधिमानतः अपने काम के करीब), पैसों के लिए अपने श्रम, और सामाजिक समर्थन प्रणालियों को आकर्षित करने तथा उपयोग करने पर निर्भर है। हालांकि गरीबों के लिए परिसंपत्ति आधार काफी नाजुक हो सकता है। उनका घर किसी और से किराए का हो सकता है या एक अवैध बस्ती में एक अवैध आवास भी हो सकता है जिसे अधिकारियों द्वारा कभी भी तोड़ा जा सकता है। सुरक्षित भूमि न होने पर लोगों को बैंकों से ऋण सहित अन्य सेवाओं के अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। इसके अलावा श्रम से आय प्रवाह कम और अस्थिर हो सकता है। महिलाओं को आमतौर पर समान रोजगार के लिए पुरूषों के वेतन का आधा भुगतान किया जाता है, जबकि उनकी मजदूरी और काम करने की स्थिति अधिक असुरक्षित और अनियमित हो सकती है। सामाजिक नेटवर्क (या सामाजिक पूंजी) एक संपत्ति और वल्नेरेबिलिटी का कारण दोंनों हो सकते है। सामाजिक नेटवर्क जरूरत के समय सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं, लेकिन असुरक्षित भी हो सकते हैं। जैसे–जैसे आय की धाराएं अधिक असुरक्षित होती जाती हैं, गरीब लोगों को कर्ज में तेजी से धकेला जा सकता है और निजी साहूकारों से उच्च ब्याज दर पर ऋण लेने के लिए मजबूर किया जा सकता है।

प्रदत्त स्थिति –: भारत में शहरी क्षेत्रों में लोगों के विशेष श्रेणियों की एक निर्दिष्ट व्यावसायिक स्थिति है जो अक्सर जाति से जुड़ी होती है। स्लम बस्तियों के स्वरूप अक्सर विशेष व्यावसायिक समूहों या पारिभाषित लोगों को एक साथ रखते हैं, जैसे–रिक्शा चालक, मछुआरे, कुष्ठ रोग से पीड़ित लोग, और सफाई कर्मचारी जिनके गरीबी का उनका अनुभव सीधे उस व्यावसायिक स्थिति से संबंधित होता है। बहिष्कृत लोगों के लिए समूह द्वारा बंदोबस्त का सिद्धांत विशिष्ट व्यक्तियों जैसे विकलांग, परित्यक्त महिलाओं, यौनकर्मियों, शरणार्थियों, सड़क पर रहने वाले बच्चों, मानसिक रूप से बीमार, बेसहारा और आवारा लोगों के लिए एक हद तक ही विस्तारित हो सकता है। इन व्यक्तियों को राजनीतिक व्यवस्था पर मांग करने का कोई

अधिकार नहीं होता और यकीनन ये लोग पुलिस और न्यायिक प्रणाली द्वारा संचालित भेदभावपूर्ण प्रथाओं के लिए सबसे कमजोर हैं, भले ही राष्ट्रीय कानून उनके अधिकारों की रक्षा करता हो।

भारत में गरीबी का मापन

वैश्विक बहुआयामी गरीबी सूचकांक :– वैश्विक बहुआयामी गरीबी सूचकांक (ग्लोबल मल्टीडाईमेंशलन पावर्टी इंडेक्स) 2010 में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) और ऑक्सफोर्ड गरीबी और मानव विकास पहल (ओ.पी.एच.आई.) द्वारा शुरू किया गया था। प्रत्येक वर्ष यह व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से गरीब लोगों के जीवन की जटिलताओं को मापता है और यह दर्शाता है कि बहुआयामी गरीबी किस स्तर तक कम हुई है। भारत उन चार देशों में शामिल है, जिन्होने अपने एमपीआई मूल्य को आधा कर दिया है। 2006 से 2016 की अवधि के दौरान, भारत में बहुआयामी गरीब लोगों की संख्या में सबसे बड़ी कमी आई थी जिसमें 273 मिलियन लोग इन 10 वर्षों में गरीबी से बाहर निकले हैं।

भारत में गरीबी रेखा के अनुमानों का आधिकारिक विमोचन–: योजना आयोग भारतीय जनसंख्या के प्रतिशत में गरीबी रेखा से नीचे के व्यक्तियों की संख्या के रूप में गरीबी का अनुमान जारी करता था। इसके बाद वर्ष 1973–74, 1977–78, 1983, 1987–88, 1993–94, 1999–2000, 2004– 05, 2009–10 और 2011–12 में इसका पालन किया गया। 2011.12 के लिए योजना आयोग ने तेंदुलकर गरीबी रेखा के आधार पर जुलाई 2013 में गरीबों के आंकड़े जारी किये।

विश्व बैंक गरीबी रेखा –: विश्व बैंक गरीबी रेखा अत्यधिक गरीबी को एक दिन में $1.90 से कम पर जीने के रूप में परिभाषित करती है, जिसे 2011 की क्रय शक्ति समता कीमतों में मापा जाता है। गरीबी को मापने के वैकल्पिक तरीके के रूप में विश्व बैंक ने 'गरीबी अंतर सूचकांक' विकसित किया है जो गरीबी रेखा तक पहुंचने के लिए एक परिवार द्वारा आवश्यक धन की गणना करके गरीबी की तीव्रता को मापता है। यह गरीबी रेखा से आय या खपत में कमी की गणना करता है। विश्व बैंक के विकास संकेतों के संग्रह के अनुसार, भारत में गरीबी 2011 में 4.3% बताई गई है, जो 1977 में 20% थी।

वर्ल्ड पावर्टी क्लॉक : यह वर्ल्ड डेटा लैब द्वारा सतत् विकास लक्ष्य (सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल) की दिशा में प्रगति को मापने के लिए एक व्यवस्थित वैश्विक विश्लेषणात्मक ढांचा है जो दुनिया के हर देश के लिए 2030 तक वास्तविक समय में गरीबी के अनुमानों को ट्रैक करता है। इसमें आय वितरण, उत्पादन और खपत पर सार्वजनिक रूप से उपलब्ध आंकड़ों का उपयोग किया जाता है जो कि बड़े पैमाने पर सर्वेक्षण और जनगणना के बीच आम दशक के अंतराल को पाटते हैं।

गरीब शहरी लोग खुद गरीबी को कैसे समझते हैं?

1997 में डिपार्टमेंट फॉर इंटरनेशनल डेवलपमेंट (डी.एफ.आई.डी.) इंडिया द्वारा शुरू किए गए प्रभाव आकलन की एक श्रृंखला (आई. ए. एस, 1999 : पी आई. ए, एस, 1997) ने प्रदर्शित किया कि शहरी गरीब लोग रोजगार, संपत्ति, बचत और आय को अपनी भलाई के प्रमुख

निर्धारकों के रूप में उजागर करते हैं। गरीबों ने खराब स्वास्थ्य और उपचार की लागत, ऋणग्रस्तता और काम के नुकसान के बीच की कड़ी को भी उजागर किया जो कि बीमार स्वास्थ्य, टी.बी. जैसी ज्यादातर पुरानी बीमारी, औद्योगिक दुर्घटनाएं, शराब और नशीली दवाओं के दुरूपयोग से जुड़ा था। इसके अलावा, शराब और नशीली दवाओं का दुरूपयोग अक्सर घरेलू हिंसा और शराब खरीदने के लिए घरेलू आय के खर्च से संबंधित था। सबसे गरीब परिवारों ने उपरोक्त कारको में से अनिश्चित रोजगार, खपत की कमी, घरेलू हिंसा, शराब और नशीली दवाओं के दुरुपयोग, और आजीविका के कार्यकाल की असुरक्षा का अनुभव किया।

आजीविका : अवधारणा, परिभाषा और विशेषताएं

आजीविका एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से लोग भोजन, वस्त्र और एक सभ्य आश्रय के रूप में अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने का प्रयास करते हैं जो बाद में सस्ती शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं और सेवाओं में तब्दील हो जाता है। एक व्यक्ति की आजीविका उसके परिवार की इन्हीं बुनियादी आवश्यकताओं को प्राप्त करने की उसकी क्षमता से निर्धारित होती है। इसमें कार्यों को आमतौर पर दोहराया जाता है और इस तरह से किया जाता है की कार्य टिकाऊ और सम्मानजनक दोनों हो।

आजीविका का विचार स्थिरता और मानवाधिकारों पर अधिक केंद्रित प्रतीत होता है। सतत–आजीविका (सस्टेनेबल लाइवलीहुड) की अवधारणा गरीबी उन्मूलन के पारंपरिक परिभाषा, अवधारणा और दृष्टिकोण से परे देखने के लिए उभरी है जो केवल कम आय जैसी गरीबी के सिर्फ कुछ पहलुओं पर ही केंद्रित थे और वे सामाजिक समावेश, वल्नेरेबिलिटी और अभाव (डीप्राईवेशन) जैसे अन्य पहलुओं को समावेश नहीं करते हैं। यहां ''सतत'' का अर्थ दीर्घावधि और ''आजीविका'' का अर्थ उन कई गतिविधियों से है जो जीवन यापन करती है।

रॉबर्ट चेम्बर्स और गॉर्डन कॉनवे ने क्षमताओं (भंडार, संसाधन, दावे और पहुंच) और गतिविधियों (जीवन जीने के साधनों) के साथ एक इंटरैक्टिव ढांचे के भीतर आजीविका का वर्णन करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने काम 'सस्टेनेबल रूरल लाइवलीहुड : प्रैक्टिकल कॉन्सेप्ट्स फॉर 21 सेंचुरी' (दिसंबर 1991) में सतत आजीविका की निम्नलिखित कार्यशील परिभाषा प्रस्तावित की है–

''आजीविका में क्षमताएं, (भौतिक और सामाजिक दोनों संसाधनों सहित) और जीवन यापन के साधनों के लिए आवश्यक गतिविधियां शामिल है। एक आजीविका टिकाऊ होती है जब वह तनाव और शॉक्स से उबर सकती है, अपनी क्षमताओं और संपत्तियों को बनाये रख सकती है या बढ़ सकती है, अगली पीढ़ी के लिए स्थायी आजीविका के अवसर प्रदान कर सकती है, और जो स्थानीय और वैश्विक स्तर पर और छोटी और लंबी अवधि में अन्य आजीविका के लिए शुद्ध लाभ का योगदान देती हैं।''

चैंबर्स और कॉनवे का यह मासैलिक लेख स्थायी आजीविका और इसके घटक भागों की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए एक महान काम था। लेखकों ने तर्क दिया कि इसका उपयोग ज्यादातर घरेलू स्तर पर किया जाता है जबकि आजीविका की परिभाषा को विभिन्न पदानुक्रमित स्तरों पर भी लागू किया जा सकता है। इस परिभाषा में, न केवल ''तनाव और शॉक्स'' से उबरने

में, बल्कि भविष्य में क्षमताओं और परिसंपत्तियों को ''बनाए रखने और बढ़ाने'' में भी सक्षम होने की भी बात कही गयी है।

चैंबर्स और कॉनवे के काम को संशाधित करके इंस्टिट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज (आई. डी.एस., यू. के.) के प्रमुख प्रस्तावक इयान स्कोन ने सतत आजीविका की एक संशोधित परिभाषा प्रस्तावित की – ''एक आजीविका प्रणाली में क्षमताएं, संपत्तियां (सामाग्री और सामाजिक दोनों संसाधनों सहित) और जीवन के साधनों के लिए आवश्यक गतिविधियां शामिल हैं। एक आजीविका टिकाऊ होती है जब वह प्राकृतिक संसाधन को कम न करते हुए तनावों और शॉक्स से सामना कर सकती है और साथ ही साथ अपनी क्षमताओं और परिसंपत्तियों को अभी और भविष्य में बनाए रख सकती है या बढ़ा सकती है।''

शॉक्स, वल्नेरेबिलिटीज, और जोखिम

शॉक्स –: शॉक्स ऐसी घटनाएं हैं जो घर की संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हे। ये भूकंप, चक्रवात और माहामारी जैसी अत्यंत विनाशकारी प्राकृतिक घटनाएं हो सकती हैं, या अधिक स्थानीय और आंशिक रूप से मानव निर्मित भी हो सकती हैं, जैसे– बाढ़, आग, दंगे और प्रतिकूल सरकारी नीति (जैसे कि भूमि–अधिग्रहण)। कुछ शॉक्स थोड़े समय के लिए होते हैं (जैसे कि भयंकर आग), जबकि अन्य शॉक्स महीनों तक चलते रहते हैं (जैसे कि सूखा), और कुछ अधिक स्थायी भी हो सकते हैं (जैसे कि जलवायु परिवर्तन के कारण कम वर्षा, बड़े पैमाने पर ज्वालामुखी विस्फोट के प्रभाव आदि)।

वल्नेरेबिलिटी –: 'वल्नेरेबिलिटी' शब्द घर के लिए विशिष्ट है। यह शॉक्स का सामना करने के लिए एक घर की प्रवृत्ति को संदर्भित करता है। उदाहरण के लिए एक परिवार, जिसके सदस्य पहले से ही खाद्य असुरक्षा के कारण कुपोषण से पीड़ित हैं, संक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं और महामारी के से समय संभवतः सबसे पहले बीमार पड़ते हैं। ऐसे लोग स्वस्थ व्यक्ति की तुलना में अधिक प्रभावित होने और उसी संक्रमण से मरने की संभावना भी रखते हैं। इसी तरह उन घरों की तुलना में जो उच्च भूमि पर प्रबलित सीमेंट और कंक्रीट का उपयोग करके बनातें हैं, गरीबों के कमजोर घर चक्रवात, बाढ़ और भूकंप से नष्ट होने या क्षतिग्रस्त होने के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।

'वल्नेरेबिलिटी' को ''किसी व्यक्ति या समूह की प्राकृतिक या मानव निर्मित आपदा के प्रभाव से पूर्वानुमान लगाने, सामना करने, प्रतिरोध करने और उबरने की क्षमता में होने वाली कमियों'' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। वल्नेरेबिलिटी दो प्रकार की होती हैः जैव–भौतिकीय और सामाजिक–आर्थिक। किसी समुदाय की जैव–भौतिक वल्नेरेबिलिटी को प्रकृति मं निहित जोखिम कारकों द्वारा परिभाषित किया जाता है जो इसे खतरे में डालते हैं। सामाजिक–आर्थिक वल्नेरेबिलिटी आंतरिक और बाहरी कारकों से उत्पन्न होती है जो समुदाय की प्रतिक्रियाओं और समायोजित करने की क्षमता को सीमित करती है, जैसे कि गरीबी, असमानता, हाशिए पर होना, खाद्य सुरक्षा, आवास की गुणवत्ता, बीमा तक पहुंच, वैकल्पिक आजीविका, स्वास्थ्य और शिक्षा एवं अन्य। एक समूह या समुदाय की वल्नेरेबिलिटी इस बात पर भी निर्भर करती है कि वे क्या करते हैं और वे कहां रहते हैं। वल्नेरेबिलिटी एक गतिशील स्थिति है जो घरेलू व्यवहार और

गरीबी से मुकाबला करने की रणनीतियों को प्रभावित कर सकती है और इस प्रकार यह गरीबी कम करने की नीतियों के लिए एक महत्वपूर्ण विचार बन के उभरती है। एक घर की भविष्य की क्षमताओं का निर्धारण उसकी आंतरिक स्थिति (निवासियों की उम्र और लिंग, आदि) और बाहर से प्रभाव (कार्यकाल की स्थिति, श्रम बाजार, सामाजिक पूंजी या नेटवर्क आदि) पर निर्भर करती है। खाद्य कीमतों में वृद्धि, अस्थिर वैश्विक जलवायु और लंबे समय तक आर्थिक मंदी ने गरीब लोगों को सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाया है।

जोखिम –: जोखिम (रिस्क) एक प्रतिकूल घटना (शॉक) के परिणामस्वरूप एक परिवार पर पड़े प्रभाव को कहते हैं और इसकी वल्नेरेबिलिटी के माध्यम से मध्यस्थता की जाती है (एक परिवार जितना अधिक कमजोर होगा, उसे शॉक का जोखिम उतना ही अधिक होगा) ये प्रभाव भौतिक हो सकते हैं, जैसे कि घर को नुकसान या सदस्य बीमार पड़ना आदि।

जोखिमों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः पहला, 'विशिष्ट' (घर के लिए विशेष, जैसे परिवार के किसी सदस्य की बीमारी) तथा 'प्रणालीगत' (वे जो एक ही समय या एक ही स्थान पर महामारी, सूखा और भूकंप के रूप में बड़ी संख्या में घरों को प्रभावित करते हैं)। विशिष्ट जोखिम ऐसे होते हैं जो एक ही परिवार को या एक समय में कुछ ही को प्रभावित करते हैं। इनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित शॉक्स के प्रभाव हैं– परिवार के किसी सदस्य को प्रभावित करने वाली बीमारी या आकस्मिक चोट, पशुओं को प्रभावित करने वाले रोग, घर या दुकान में आग या चोरी, और बाढ़ परियोजनाओं आदि के कारण घर को हुए नुकसान से जुड़ा स्थान आदि। गरीबों द्वारा सामना किये जाने वाले प्रणालीगत जोखिमों को तीन मुख्य आयामों के साथ वर्गीकृत किया जा सकता है : (क)– कई राजनीतिक क्षेत्राधिकारों में शासन का टूटना, हिंसक संघर्ष, आतंकवाद, कानून के शासन की अनुपस्थिति, अधिकारों से वंचित होना, लिंग संबंधी भेदभाव, नौकरियों की हानि आदि। (ख) वैश्वीकरण का प्रतिकूल प्रभाव जैसे विकासशील देशों द्वारा निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की कीमतों में गिरावट, आयातित वस्तुओं की कीमत में वृद्धि, एच. आई. वी., एड्स, सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम और बर्ड फ्लू जैसे सीमा पार रोगों की बढ़ती घटनाएं, विश्व व्यापार संगठन समझौतों के तहत अनिवार्य टैरिफ कटौती के परिणामस्वरूप विकासशील देश में बाजारों का खोलना, जबकि खाद्य मानकों जैसे गैर–टैरिफ अवरोधों के कारण विकसित बाजार बंद रहते हैं। (ग) जलवायु परिवर्तन के हानिकारक प्रभाव जैसे – सूखा, बाढ़ रोग, मृदा अपरदन में वृद्धि, भौतिक अवसंरचना (जैसे सड़क, पुल, आदि) का विनाश, प्रतिकूल मौसमी कीमतों में उतार–चढ़ाव, मौसमी जलवायु परिवर्तन के कारण भोजन की उपलब्धता में उतार–चढ़ाव, और अन्य।

निष्कर्ष

इस शोध पत्र से मुख्य निष्कर्ष यह है कि यदि भारत और अन्य जगहों पर शहरी गरीबी में स्थायी कमी निकट भविष्य में हासिल की जानी है तो गरीबी की गतिशील प्रकृति और संसाधन प्रवाह में एक महत्वपूर्ण बदलाव को वित्त के रूप में समझने के लिए राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, नागरिक समाज और निजी लोगों से महत्वपूर्ण प्रयासों की आवश्यकता होगी। शहरों में रहने वाले गरीबों का जीवन गांव के गरीबों से अधिक कष्टप्रद होता है। शहरी गरीबी के कारणों और लक्षणों के विश्लेषण में सुधार करने की आवश्यकता है, और

विभिन्न हित–धारकों (गरीब लोगों, समुदाय के नेताओं, सरकारों, निजी क्षेत्र, गैर सरकारी संगठनोकं और दाताओं) के बीच नवीन भागीदारी को विकसित करने की भी आवश्यकता है ताकि उच्च लघु–टर्म निवेश (जैसे पर्यावरण के बुनियादी ढ़ाचे और स्वच्छता शिक्षा में) और अन्य सेवाओं (जैसे स्वास्थ्य में) पर लागत को कम किया जा सके। चूंकि सटीक आय के आकड़ों को एकत्र करना मुश्किल है, इसलिए सूचकांकों की वैधता और विश्वसनीयता के साथ–साथ गरीबी मानकों के आधार के विस्तार पर ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा। भारत जैसे देश में जहाँ एक बड़ी आबादी अत्यधिक गरीबी में रहती है, एक सामान्य गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम उतना प्रभावी नही हो सकता हैः ऐसे मामलों में, ऐसे लोगों की पहचान की जानी चाहिए और उन्हें उपयुक्त व्यक्तिगत सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

अभिस्वीकृति / आभार : यह शोध आलेख प्रकाशन, नई दिल्ली, भारत द्वारा दिये गये आई.सी.एस.एस.आर. डेक्टोरल फेलोशिप द्वारा समर्पित अनुसंधान से (आंशिक रूप से) जुड़ा हुआ है।

संदर्भ :

कार्नी, डी. एस. (1998): ''सस्टेनेबल रूरल लाइवलीहुड्स, व्हाट कंट्रीब्यूशन कैन वे मेक?'', डी. एफ.आई.डी. : लंदन

क्रांत्ज, एल, (2001): ''द सस्टेनेबल लाइवलीहुड एप्रोच टू पावर्टी रिडक्शन'', ए. आई. डी. ए. : स्वीडन

चेम्बर्स, आर. और कॉनवे, जी. आर. (1992) :सस्टेनेबल रूरल लाइवलीहुडः प्रैक्टिकल कॉन्सेप्ट्स फॉर दइ 21 सेंचुरी, डिस्कशन पेपर 296, इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीजः ब्रिटेन, यू.के. https://opendocs.ids.ac.uk/opendocs/bitstream/handle/20.500.12413/775/Dp296.pdf?sequence=1देखें (9 सितम्बर 2021)

चेम्बर्स, रोबर्ट (2006) : ''पावर्टी इन फोकस'', इंटरनेशलन पावर्टी सेंटर https://opendocs.ids.ac.uk/opendocs/bitstream/handle/123456789/120/rc145.pdf?sequence=2-isAllowed=y देखें (9 सितम्बर 2021)

दत्ता, एस., महाजन, वी. (2014).''रिसोर्स बुक फॉर लाइवलीहुड प्रमोशन'', इंस्टिट्यूट ऑफ लाइवलीहुड रिसर्च एंड ट्रेनिंग : हैदराबाद, इंडिया, https://ilrtindia.org/downloads/Chapter%202%20-%20Livelihoods %20%20-%20A%20Conceptual%20 Understanding.pdf देखें (9 सितम्बर 2021)

दांडेकर, वी. एम. और रथ, एन. (1971): पावर्टी इन इंडिया, इंडियन स्कूल ऑफ पॉलिटिकल इकॉनॉमी : बॉम्बे.

फरिंगटन, जे (2001) : ''सस्टेनेबल लाइवलीहुड्स राइट्स एंड द न्यू आर्किटेक्चर ऑफ ऐड' नेचुरल रिसोर्सेज पर्सपेक्टिव्स 69'', ओ डी आईः लंदन

बॉमगार्टनर, रूएदी और रूडोल्फ होगर (2004) : ''इन सर्च ऑफ सस्टेनेबल लाइवलीहुड

सिस्टम्स': मैनेजिंग रिसोर्सेज एंड चेंज'', सेज

ब्लैकी पी. कैनन टी., डेविस आई. विस्नर बी. (2004): ''ऐट रिस्क : नेचुरल हैजार्डस, पीपल्स वल्नेरेबिलिटी, एंड डिसास्टर्सै'', रूटलेज : न्यूयार्क

महाजन, विजय और थॉमस फिशर, अशोक सिंघा, (1996) :''द फॉरगॉटन सेक्टर : नॉन–फार्म इंटरप्राइजेज एंड एम्प्लॉयमेंट इन रूरल इंडिया'', आई.टी.डी.जी., रग्बी : यू. के.

माथुर, ओम प्रकाश, (2014) : ''द स्टेट ऑफ इंडिया, ज अर्बन पावर्टी'', नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एंड पालिसी : नई दिल्ली https://nipfp.org.in/media/medialibrary/ 2014/10/THE_STATE_OF_INDIA_URBAN _POVERTY.pdf देखें (9 सितम्बर 2021)

मोजर, कैरोलिन ओ. एन., 1998. ''एसेट वल्नरेबिलिटी फ्रमवर्कः रीअसेसिंग अर्बन पावर्टी रिडक्शन स्ट्रेटेजी'', वर्ल्ड डेवलपमेंट, एल्सेवियर

लॉफहेड, एस., और मित्तल, ओ. (2000) : अर्बन पावर्टी एंड वल्नेरेबिलिटी इन इंडिया : ए सोशल पालिसी पर्सपेक्टिव'', सोशल चेंज https://doi.org/10.1177/ 004908570003000203 देखें (9 सितम्बर 2021)

शर्मा, वी. (सं.). (2012) : स्टेट ऑफ इंडियाज लाइवलीहुड रिपोर्ट 2012, सेजः नई दिल्ली

स्कोन्स, आई. (1998): ''सस्टेलेबल रूरल लाइवलीहुड : ए फ्रेमवर्क फॉर एनालिसिस', वर्किंग पेपर 72'', इंस्टीट्यूट फॉर डेवलपमेंट स्टडीज, इंस्टीट्यूशंस ऑफ ए नीलोटिक पीपल : ब्रिटेन, यूके

हान, अर्जन (1998) : ''सोशल एक्सक्लूशन : एन अल्टरनेटिव कांसेप्ट फॉर द स्टडी ऑफ डेप्रिवेशन?'', आई डी एस बुलेटिन, ससेक्स

डॉ0 रूपेश कुमार सिंह

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

थारू जनजाति में शोक पर्व दीपावली का बदलता स्वरूप : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सार संक्षेप

मुख्य रूप से उत्तर भारत में निवास करने वाली थारू जनजाति अपनी परंपराओं और संस्कृति के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। थारू जनजाति पर विभिन्न प्रकार के शोध समाज वैज्ञानिकों, मानवशास्त्रियो, इतिहासकारों, आदि के द्वारा समय–समय पर होते रहे हैं। थारू जनजाति के विभिन्न पर्वों में दीपावली को शोक पर्व का स्थान प्राप्त है। जहां पूरे भारत में दीपावली सुख समृद्धि एवं हर्षोल्लास के त्यौहार के रूप में मनाया जाता है, थारू जनजाति का इसे शोक पर्व के रूप में मनाना एक कौतूहल का विषय है। दीपावली को थारू जनजाति के लोग मृत पूर्वजों के लिए 'श्राद्ध दिवस' के रूप में मनाते हैं। उस दिन पूर्वजों की आत्मा की शांति के लिए थारू जनजाति में भोज का आयोजन किए जाने की मान्यता है। साथ ही साथ सिर मुंडवाने और पुतला बनाने जैसी अन्य प्रक्रियाओं का भी पालन किया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र थारू जनजाति में शोक पर्व दीपावली के मनाने की प्रक्रिया एवं दीपावली को शोक पर्व के रूप में मनाए जाने के कारणों पर केंद्रित एक गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन है।

सूचक शब्द : थारू जनजाति, शोक पर्व, दीपावली, दिवाली, श्राद्ध, किवदंती, समुदाय

भारत एक ऐसा देश है जहां विभिन्न धर्मों, जातियों, समुदायों, सम्प्रदायों के लोग रहते हैं जिनकी अपनी अलग–अलग परम्पराएं, प्रथाएं, वेशभूषा, भाषा, रीतिरिवाज आदि हैं। इसीलिए भारतीय समाज को विविधता में एकता की संज्ञा दी गयी है। विविधता में एकता का एक प्रमुख उदाहरण हमारे देश में सुदूर, दुर्गम एवं जंगली क्षेत्रों में निवास करने वाले जनजातीय समुदाय के लोग हैं जो देश के उत्तर, दक्षिण, पूर्व एवं पश्चिमी क्षेत्रों में रहते हैं जिनकी अपनी अलग–अलग संस्कृति एवं जीवन शैली है जैसे–पूर्व में संथाल, हो, मुण्डा जनजाति तो पश्चिम की भील, चेन्चू, दक्षिण की टोडा तो उत्तर भारत की भोटिया, भोक्सा, थारू आदि। उक्त जनजातियों की संस्कृति, व्यवहार, भाषा, जीवनशैली आदि में एक दूसरे से भिन्न होने के बाद भी इनमें एकता है कि यह भारतीय है और भारतीय संविधान में विश्वास करती है आरै उसमें वर्णित व्यवस्थाओं के साथ ही कानूनों, अधिनियमों आदि का पालन भी करती है। भारत की सन् 2011 की जनगणना के अनुसार देश की कुल आबादी में जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत 8.08 है। उत्तर भारत के उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड राज्य में निवास करने वाली विभिन्न जनजातियों में थारू जनजाति एक प्रमुख जनजाति है जो उत्तर प्रदेश के तराई क्षत्रे के लखीमपुर खीरी, बहराईच, श्रावस्ती, बलरामपुर एवं उत्तराखण्ड के उद्यमसिंह नगर में निवास करती है इसके साथ ही बिहार के पश्चिमी चम्पारण तथा नेपाल के तराई अंचल के कैलाली, कंचनपुर , बर्दिया, बांके, सुर्खेत, डांग, चितवन, मोरंग, झोपा, सप्तारी, कपिलवस्तु, रूपन्देई आदि जिलों के विभिन्न

'सहायक आचार्य, समाजशस्त्र, सामाजिक विज्ञान एवं समाज कार्य विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, मोहान राडे लखनऊ (उ0प्र0)
Email-rupeshlucknow@rediffmail.com, Mob. No.-9450763502

क्षेत्रों में भी निवास करती है।

थारू जनजाति का वितरण

देश	राज्य / प्रान्त	जिला / विकास खण्ड
भारत	उत्तराखण्ड	उधमसिंह नगर–सितारगंज एवं खटीमा विकास खण्ड
	उत्तर प्रदेश	लखीमपुर खीरी– निद्यासन एवं पलिया विकास खण्ड श्रावस्ती–सिरसिया विकास खण्ड बहराईच–मिहींपुरवा विकास खण्ड बलरामपुर–गैसड़ी एवं पचपेड़वा विकास खण्ड पश्चिमी
	बिहार	चम्पारण–बगहा, रामनगर, गौनहा एवं मैनाटाडं प्रखण्ड
नेपाल	प्रान्त नं० 1 प्रान्त नं० 2 प्रान्त नं० 3 प्रान्त नं० 5 प्रान्त नं० 6 प्रान्त नं० 7	झापा, मोरंग, सप्तारी, चितवन, कपिलवस्तु, रूपन्देही, बॉके, बर्दिया, डांग, सुर्खेत कैलाली, कंचनपुर

थारू जनजाति अपनी परम्पराओं, रीतिरिवाज, वेशभूषा, भाषा, पर्व, त्यौहार, भोजन आदि के लिए न केवल भारत में बल्कि विश्व में भी प्रसिद्ध है। इसीलिए उक्त जनजाति की उत्पत्ति, इतिहास, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन के अलग–अलग पहलुओं पर समाज वैज्ञानिकों, मानवशास्त्रियों, इतिहासकारों आदि के द्वारा समय–समय शोध सम्पन्न किये जाते रहे हैं। इसमें प्रमुख रूप से चीनी यात्री ह्वेनसांग (7वीं शताब्दी) के यात्रा वृतान्त में गोविशाणनगर थुलुस (थारूओं) की राजधानी का उल्लेख किया गया है। (लालः 1985; 76) तथा अलबरूनी (1027–28) ने अपनी पुस्तक 'तहकीकुल हिन्द' में इनकी शारीरिक बनावट एवं आदतों के आधार पर इन्हें थारूहट के रूप में उल्लिखित किया है (चतुर्वेदी, मिश्रा एवं कुमारः 2016; 39)। नेस्फील्ड (1885) नावेल्स (1889), रिसले (1891), मजूमदार (1942) आदि ने उत्पत्ति एवं प्रजाति वर्गीकरण पर गहन शोध कार्य किया है। उपरोक्त शोध कार्यों के आधार पर ही थारू जनजाति को मंगोलियन श्रेणी में रखा गया है। इसके साथ ही देव (1932), प्रधान (1937), श्रीवास्तव (1948), प्रसाद (1959), कोचर (1963 – 65) हसन (1968 – 69), मुनतबा (1980), लाल (1985), हसन (1993) मैती (2001), पाण्डे (2002), प्रवीर (2004), दुबे (2006), सिंह (2007), वर्मा (2010) आदि के द्वारा थारू जनजाति के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के साथ–साथ पंचायतीराज, ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रभावों से सम्बन्धित विविध पक्षों पर भी शोध कार्य सम्पादित किये गये हैं।

उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड में निवास करने वाली थारू जनजाति के लोग अधिकांशतः हिन्दू धर्म को मानने वाले हैं जबकी केवल कुछ प्रतिशत ने ईसाई, सिक्ख एवं बौद्ध धर्म को अपनाया है। चूंकि अधिकांश थारू जनसंख्या हिन्दू धर्म को मानती है इसीलिए यह लोग हिन्दू देवी, देवताओं के अतिरिक्त प्रकृति की पूजा करते हैं। साथ ही हिन्दू धर्म के त्यौहार एवं पर्व भी मनाते हैं। इनमें होली, महाशिवरात्रि, नागपंचमी, दशहरा, दीवाली (दीवारी) आदि प्रमुख है। थारू अपने उत्सव, त्यौहार एवं पर्व के आयोजन के अनूठे तरीके के कारण विश्व में प्रसिद्ध हैं और सदैव चर्चा में भी रहते हैं इसीलिए इनके होली त्यौहार के सप्ताह भर चलने वाली गतिविधियों

को देखने एवं उस पर शोध कार्य के लिए देश एवं विदेश से शोधार्थी, समाज वैज्ञानिक एवं मानवशास्त्री आते हैं जिसमें प्रमुख रूप से 'थारू नाच' है जो एक विशेष प्रकार का थारू पुरूष एवं महिलाओं द्वारा अपने पारम्परिक वाद्ययंत्रों पर किया जाने वाला नृत्य है। होली थारू जनजाति का एक महत्वपूर्ण एवं हर्षोल्लास का पर्व है। वहीं दूसरी आरे दीपावली थारू जनजाति का शोक पर्व है। थारू जनजाति के लोग दीपावली (दीवाली) को अपनी थारू भाषा में दीवारी कहते हैं। प्रस्तुत शोध के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि थारू जनजाति के लोग दीपावली पर्व को शोक पर्व के रूप में क्यों मनाते हैं जबकि सम्पूर्ण भारत में दीपावली पर्व गर्व, हर्षोल्लास, समृद्धि, सम्पन्नता एवं असत्य पर सत्य की विजय के रूप में मनाया जाता है। उपरोक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए वर्तमान शोध पत्र थारू जनजाति में शोक पर्व दीपावली (दीवाली) पर केन्द्रित है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य थारू जनजाति के शोक पर्व दीपावली के मनाने की प्रक्रिया का अध्ययन करना, शोक पर्व के रूप में आयोजित करने के कारणों को ज्ञात करना तथा वर्तमान समय में इसके स्वरूप का अध्ययन करना था। उक्त उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अध्ययन की शोध विधितन्त्र का निर्धारण किया गया। प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति गुणात्मक सह विश्लेषणात्मक है जिसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी तथा उत्तराखण्ड राज्य के उद्यमसिंह नगर जिलों को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयनित किया गया। तत्पश्चात उक्त जिलों के थारू बाहुल्य विकास खण्डों पलिया एवं सितारगंज को चयनित करते हुए उक्त दोनों विकास खण्डों के पाचं–पाचं ग्राम पंचायतों में निवास करने वाली थारू जनजाति के मुखिया, ग्राम प्रधान, वृद्ध व्यक्तियों, जन प्रतिनिधियों (ब्लाक प्रमुख, विधायक) तथा कुछ युवाओं का असंरचित साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन एवं समूह चर्चा के माध्यम से प्राथमिक आंकड़ों का संकलन किया गया है। अध्ययन में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन का प्रयोग किया गया ताकि अध्ययन के उद्देश्य शोक पर्व दीपावली के बारे में विस्तृत जानकारी एकत्रित की जा सके। द्वितीयक स्रोत के रूप में थारू जनजाति की जीवनशैली, संस्कृति, पर्व आदि से सम्बन्धित प्रकाशित– अप्रकाशित शोध पत्रों, अध्ययनों, प्रतिवेदनों, समाचार पत्रों में प्रकाशित तथ्यों, पुस्तकों के साथ–साथ इण्टरनेट से द्वितीयक आँकड़ों को एकत्रित किया गया। तत्पश्चात एकत्रित आँकड़ों के परिक्षण, विश्लेषण एवं निर्वचन के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। उक्त अध्ययन में थारू जनजाति के शोक पर्व दीपावली के मनाने के स्वरूप, कारणों एवं परिवर्तित स्वरूप का ही गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रस्तुतीकरण किया गया है जो वर्तमान शोध अध्ययन की परिसीमाएं हैं।

थारू जनजाति का शोक पर्व :– हमारे देश के अधिकांश भागों में दीपावली (दीवाली) हर्षोल्लास, गर्व एवं समृद्धि का पर्व है लेकिन थारू जनजाति के लोग दीपावली को बरसी भोज या पूर्वजों के 'श्राद्ध दिवस' के रूप में मनाते हैं (श्रीवास्तव, 1958: 203)। थारू लोग इस दिन मृतक (किशोर, व्यस्क, विवाहित अथवा अविवाहित) की आत्मा की शान्ति के लिए बरसी का आयोजन करते हैं। इनका ऐसा मानना है कि बरसी आयोजित नहीं करने पर मृतक की आत्मा भटकती रहती है। इस बरसी आयोजन को थारू लोग 'बड़ी रोटी' भी कहते हैं, और इसके आयोजन की प्रक्रिया दीवारी (दीवाली/दीपावली) के प्रातःकाल से मृतक के परिवार में प्रारम्भ हो जाती है जो दीवारी के दूसरे दिन समाप्त हो जाती है। सर्वप्रथम इस आयोजन में सम्मिलित लोग जिन्होंने मृतक के दाह संस्कार में भाग लिया है अथवा नहीं लिया है को आमंत्रित किया

जाता है जैसे– सभी रक्त सम्बन्धी, रिश्तेदार, मित्रगण तथा ग्रामवासी। उपरोक्त सभी आमंत्रित सदस्यगण मृतक परिवार को सहयोग के रूप में चावल, दाल, सब्जी, मसाले आदि देते हैं। आमंत्रण के पश्चात दीवारी की सुबह आयोजक परिवार की महिलाएं घर की साफ–सफाई करती हैं तत्पश्चात घर के अहाते में परिवार की महिलाएं मृतक की पसन्द के व्यंजन बनाना प्रारम्भ करती हैं जो सांयकाल भोजन में परोसा जाता है। इसी दौरान मृतक परिवार के सदस्यगण तथा रक्त सम्बन्धी अपना मुण्डन (सिर के बालों का मुण्डन) करवाते हैं। उक्त प्रक्रिया के पश्चात 05 मिट्टी के जलते दीपक, महिलाओं द्वारा भरे 05 पानी के घड़े तथा 02 पतरी पर बने हुए भोजन (विविध प्रकार के मृतक के पसन्द के व्यंजन) को घड़े के समीप रखा जाता है। इसके साथ ही एक टोकरी में काजल, तेल, कंघी, शीशा, एक गिलास शराब ढाले एवं झान्ज भी रखा जाता है। तत्पश्चात पनचरिया (मृतक या रक्त सम्बन्धी परिवार का आयाजे क व्यक्ति) द्वारा कुश का एक पुतला बनाया जाता है। पुतला बनाने के पश्चात मृतक के परिवार एवं रक्त सम्बन्धीगण इसके समीप आकर खड़े होते हैं, फिर आयोजक व्यक्ति पुतले को पानी से शुद्ध (पवित्र) करता है और परिवार एवं रक्त सम्बन्धीगण पुतले पर फूंक अर्पित करते हैं। इसके पश्चात भोज समारोह प्रारम्भ होता है जिसमें सर्वप्रथम 'पनचरिया' को भोजन परोसा जाता है उसके पश्चात ही अन्य लोगों को भोजन दिया जाता है। इस समय भी दो पतरी भोजन मृतक के लिए अलग रखा जाता है। इस भोज समारोह के पश्चात चारों पतरियों में रखे भोजन एवं उसके साथ एक मिट्टी के बर्तन में पानी, एक मुर्गी, एक बकरी एवं बालों का कतरन लेकर पनचरिया गांव के दक्षिणी छोर पर जाता है जहां बकरी एवं मुर्गी को छोड़कर उक्त सभी चीजें मृतक की आत्मा के लिए छोड़ दी जाती है तथा बकरी एवं मुर्गी को मेहमानों को खिलाया जाता है (श्रीवास्तवः 1958:172–173)। अगर देखा जाए तो कमोवेश थारू समुदाय से इतर अन्य समुदायों में भी ऐसा होता है। लेकिन मांसाहार आदि का हिन्दू समाज में प्रचलन नहीं है। थारू जनजाति के लोगों का ऐसा मानना है कि दूसरे समुदायों के सम्पर्क में आने के कारण इन रीति रिवाजों एवं परम्पराओं में धीरे–धीरे परिवर्तन भी हो रहे हैं।

इस भोज समारोह के पश्चात बकरी एवं मुर्गी को मेहमानों आदि को भोजन हेतु परोसा जाता है जिसको थारू लोग मृतक की आत्मा का जूठा मानते हैं। इस भोज प्रक्रिया में भी दो पतरी भोजन मंडवा की देखरेख में एक टोकरी के नीचे रखा जाता है। साथ ही साथ पाचं गन्ने के ऊपर नये कपड़े रखे जाते हैं तथा मृतक की आत्मा के आराम के लिये एक चारपाई भी लगाई जाती है। जैसा कि सर्वविदित है कि थारू समाज के सभी कार्यक्रमों में नृत्य एक अभिन्न अंग है जो रात्रि में प्रारम्भ होता है और सम्पूर्ण रात्रि तक चलता है, क्योंकि थारू जनजाति के लोगों का ऐसा विश्वास है कि मृतक की आत्मा इस दिन घर में अवश्य आती है। अतः नृतक (नचैया) मृतक की आत्मा को बुलाने के लिए परम्परागत वाद्य यन्त्रों (मृदंग एवं झांज) पर नृत्य करते हुए क्रमवार गानों को गाता है। इस दौरान नृतक (नचैया) विभिन्न थारू गीतों के माध्यम से आत्मा को बुलाने का आह्वान करता है तथा वह अपने नृत्य एवं गीतों के साथ ही अपनी शारीरिक भाव–भंगिमाओं से ऐसा प्रदर्शित करता है कि अब वह मृतक की आत्मा से जुड़ गया है तत्पश्चात वह आत्मा से गीतों के माध्यम से आराम करने की अपील करता है। इस समय सम्पूर्ण वातावरण शान्तिमय एवं डरावना सा हो जाता है तथा सभी उपस्थित लागे अपने को आत्मा से सम्बद्ध होते हुए आनन्दित महसूस करते हैं। थारू लोगों का ऐसा विश्वास है कि मृतक की आत्मा को अधिक समय तक रोका नहीं जा सकता है। इस प्रकार वह आत्मा को घर पर पुनः बुलाने में अपने को सफल

महसूस करते हैं। इस घटना के बाद सुबह बहुत शीघ्र पनचरिया गन्ने से कपड़े को हटाता है तथा खीर व दो पतरी भोजन लेकर नदी में विसर्जित करता है। उक्त विसर्जन के पश्चात वह वापसी में पीछे मुड़कर नहीं देखता है। रात्रि में नृत्य तथा मृत आत्मा की वापसी तथा विसर्जन की घटनाओं के पश्चात अगली सुबह बरसी के अन्तिम भोज के साथ ही बरसी भोज समाप्त होता है।

थारू जनजाति के लोगों का ऐसा मानना है कि मृतक की आत्मा की शान्ति के लिए बरसी भोज आवश्यक है और इसे वह अपने समर्थ के अनुरूप आयोजित करते हैं। थारू समुदाय अधिकांशतः हिन्दू धर्म को मानता है इसीलिए इनके बरसी भोज के रीतिरिवाज, प्रथाएं आदि काफी कुछ हिन्दू धर्म मानने वालों से मिलती जुलती हैं। उक्त आयोजन में काफी खर्च भी आता है और कभी–कभी इस आयोजन के लिए इनको दूसरों से कर्ज भी लेना पड़ता है। इसीलिए दीवाली के दिन बरसी भोज आयोजित करने की परम्परा में परिवर्तन भी आ रहा है। ऐसा इस समुदाय के लागों ने धीरे–धीरे करना भी प्रारम्भ कर दिया है।

शोक पर्व का कारण :– उक्त अध्ययन के दौरान यह भी ज्ञात करने का प्रयास किया गया कि थारू जनजाति के लोग दीवाली के दिन उसे गर्व, हर्षोल्लास, समृद्धि एवं विजय पर्व के रूप में न मनाते हुए बल्कि इस दिन 'बरसी भोज' का आयोजन क्यों करते हैं तथा इसे एक वर्ष के अन्दर मृत व्यक्ति की आत्मा की शान्ति के लिए शोक पर्व के रूप में मनाने के पीछे क्या कारण हैं। इस बारे में थारू जनजाति के मुखिया, जन प्रतिनिधियों एवं वृद्ध व्यक्तियों से साक्षात्कार में वहे अपनी उत्पत्ति को जिस प्रकार से राजस्थान से सम्बन्धित बताते हैं उसी प्रकार शोक पर्व दीपावली (दीवाली) को एक किवदन्ती घटना से जोड़ते हैं। थारू जनजाति के लोगों का ऐसा मानना है कि जब श्री राम श्रीलंका की चढ़ाई करने के लिए समुद्र पर मार्ग बनाने की योजना बना रहे थे लेकिन कई दिनों के बाद भी समुद्र की लहरों तथा पानी का आवेश कम नहीं हो रहा था तब श्री राम ने क्रोधित होकर समुद्र को सुखाने के लिए ब्रह्मास्त्र चलाने का निर्णय लिया और जैसे ही तीर चलाने लगे उसी समय समुद्र महाराज प्रकट हुए और उन्होंने राम से ऐसा न करने का अनुरोध किया तथा समुद्र पर पुल बनाने के लिए उन्होंने नल एवं नील के बारे में बताया कि इनके द्वारा पुल का निर्माण कर सकते हैं। समुद्र देवता की इस सलाह को तत्काल श्री राम ने स्वीकार कर लिया लेकिन श्री राम ने समुद्र से कहा कि चूंकि मैंने ब्रह्मास्त्र चलाने का निर्णय कर लिया है इसलिए मुझे चलाना पड़ेगा तब समुद्र ने उन्हे उत्तर दिशा में चलाने की सलाह दी और कहा कि वहां एक ऐसे कबीले के लोग हैं जो पानी का बहतु दुरूपयोग करते हैं साथ ही वहां के लोगों को काफी परेशान भी करते हैं। इस सलाह पर श्री राम ने ब्रह्मास्त्र उत्तर दिशा में चलाया और जहां यह अस्त्र जिसकी चमक हजारों सूर्य के समान थी गिरा उससे वह स्थान (वर्तमान में राजस्थान का थार क्षत्रे) रेगिस्तान में बदल गया। इस प्रक्रिया में थारू कबीले के लोग समाप्त हो गये तथा जो दूर के रिश्तेदार मौत के मुंह से बच गये थे वह पुनः राजस्थान से हिमालय के हरे–भरे क्षत्रे में चले आये। इसीलिए जब श्री राम श्रीलंका पर विजय प्राप्त करने के पश्चात वापस लौटे तब उनके राज्य के लोगों ने इसे दीपावली (दीवाली) के रूप में मनाया लेकिन श्री राम के द्वारा थारू कबीले के लगभग खत्म करने के कारण पस्त एवं असहाय थारू दुख एवं शोक में थे इसीलिए तभी से थारू समुदाय के लागे दीवाली के दिन दिवंगत पूर्वजों के लिए शोक दिवस या दीवाली को शोक पर्व के रूप में मनाते हैं।

दीपावली (दीवाली) पर्व को थारू जनजाति द्वारा शोक पर्व के रूप में आयोजित करने के कोई प्रमाणिक साक्ष्य नहीं उपलब्ध हैं। साक्ष्य के तौर पर केवल इस समुदाय के द्वारा जिन किवदन्तियों के बारे में बताया गया वही तथ्य मौजूद हैं, जो कि विश्वास व मान्यताओं पर आधारित हैं। (श्री रामानन्द सागर द्वारा निर्मित रामायण सीरियल में इस घटना को भी दिखाया गया है) थारू समुदाय के कुछ लोगों का कहना है कि वर्षों से समुदाय में दीवाली के दिन बरसी भोज (बड़ी रोटी) का आयोजन होता आ रहा है इसीलिए हम लोग भी इस परम्परा का पालन कर रहे हैं। थारू समाज के पूर्व विधायक गोपाल सिंह राणा का कहना है कि राजस्थान के पुष्कर क्षेत्र में आज भी दीवाली के दिन बड़ी रोटी का आयोजन होता है। साथ ही नानक मत्ता विधान सभा क्षेत्र के एम.एल.ए. डॉ0 प्रेम सिंह राणा ने बताया कि दीवारी के दिन को श्राद्ध के दिन के रूप में मनाने और बड़ी रोटी बनाने की परम्परा हमारे समदुाय में वर्षों से चली आ रही है, लेकिन थारू समुदाय के युवाओं का अन्य समुदायों से सम्पर्क एवं सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण अब इस प्रथा में धीरे–धीरे बदलाव हो रहा है और परिवार में बच्चों आदि के द्वारा दीपावली के दिन पटाखे इत्यादि जलाए जाने लगे हैं, परन्तु यह परिवर्तन बहुत ही कम हैं। इस प्रकार थारू समुदाय में दीवाली को शोक पर्व के रूप में मनाने का कारण एक कौतुहल का विषय है क्योंकि इसके बारे में लिखित साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं।

औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण, भूमण्डलीकरण, बहुसंस्कृतिकरण, संस्कृतिकरण आदि ने वर्तमान थारू समाज को भी परिवर्तित किया है तथा उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड में निवास करने वाली थारू जनजाति का अन्य समाज के लोगों से सम्पर्क के कारण न केवल इनके सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों में परिवर्तन आया है बल्कि इनके खान–पान, वेशभूषा, रीति रिवाज, संस्कार, त्यौहार एवं पर्वों के आयोजन करने के तौर–तरीके भी प्रभावित हुए हैं। इसीलिए वर्तमान समय में थारू समाज के युवा वर्ग यदा–कदा दीवाली के दिन दीया जलाने एवं पटाखे छोड़ने लगे हैं। लेकिन यह परिवर्तन अभी भी बहुत प्रचलन में नहीं है।

सन्दर्भ

लाल, अंगने (1985); 'थारू और उसकी ऐतिहासिकता' मानव अंक 2, 3, अप्रैल–सितम्बर, इथनोग्राफिक फोक एण्ड कल्चर सोसाइटी, लखनऊ।

चतुर्वेदी, रिचा, मिश्रा, श्यामदीप एवं कुमार, सन्तोष (2016); स्पेशिफिक फडू एण्ड कल्चर ऑफ थारू ट्राइब', इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिशप्लनरी रिसर्च रिव्यू वॉल्यूम, 1 इश्यू–4

नेस्फील्ड, जे.सी. (1885) 'द थारू एण्ड भोक्सा ऑफ अपर इण्डिया, कलकत्ता रिव्यू, वॉल्यूम 80 (159) पी.पी.1–46

नावेल्स, एस (1889), 'द गास्पेल इन गोण्डाः वीइंगअ नरेटिव ऑफ इवेन्ट इन कनेक्शन विथ प्रिचिंग ऑफ द गास्पेल इन द ट्रॉन्स घाघरा कन्ट्री', मैथाडिस्ट पब्लिशिगं हाउस, लखनऊ

रिसेल, एच.एच. (1892); 'ट्राइव्स एण्ड कास्ट्स इन बंगाल'; बंगाल सिक्रिट्रियेट प्रेस वाल्यू. 1

मजूमदार, डी.एन. (1942); 'थारू एण्ड देयर ब्लड ग्रुप्स'; जर्नल आफ द रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, वाल्यूम–8 पी.पी. 25–37

देव; हरी (1932); 'बर्थ कस्टम एमगं द थारूज'; मनै इन इण्डिया, 12

प्रधान, एच.डी. (1937), 'सोशल इकाने ामी इन द तराई (द थारूज)', जर्नल ऑफ द यूनाईटेड प्रोविन्स हिस्टोंरिकल सासे ायटी, वाल्यू. 10 पी.पी. 59–79

श्रीवास्तव, एस.के. (1948), 'स्प्रिंग फेस्टीवल एमंग द थारू'; ईस्टर्न एन्थ्रापे लोंजिस्ट, वाल्यू–2(1) पी.पी. 27–33

प्रसाद, टी. (1959); 'फोक सांग्स ऑफ द थारू', इण्डियन फाके लारे , वाल्यू–2 पी.पी. 114–118

कोचर, वी.के. (1965); 'फिशन एण्ड सेग्मने टेशन ऑफ प्रोसेस इन द ज्वाइंट फेमिलीज ऑफ ए थारू विलेज, वन्यजाति, वाल्यू 12(1) पी.पी. 38

हसन, एच. (1968), 'द सोशल प्रोफाइल ऑफ ए बार्डर थारू विलेज, वन्यजाति, 16

मुजतबा, एस.ए. (1980); 'डिगुरिया थारू जनजाति में सामाजिक स्तरीकरण', मानव अंक–4 पीपी. 159–165

हसन ए. (1993); अफेयर ऑफ इन इण्डियन ट्राइबः द स्टोरी ऑफ माई थारू रिलेंटिव, न्यू रायल बुक कारपोरेशन, लखनऊ

मैती, एस (2001); ट्राइबल आर्ट एण्ड क्राफ्टः ए स्टडी अमंग द थारू ऑफ उत्तर प्रदेश, इण्डियन एनथ्रापेलोंजिस्ट, 31:2

पाण्डे, एस.एस (2002); कुॅमाऊ की थारू जनजाति में भूमि निश्कासन की समस्याएं, राधा कमल मुखर्जीः चिन्तन परम्परा जनवरी–जून पृ0 6–11

प्रवीर, राकेश (2004); थारू जनजातिः पहचान के लिए संघर्षरत जनजाति, 'बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना

दूबे, प्रकाश चन्द (2006); थारू एक अनुठी जनजातिः सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार सोशल इन्स्टीट्यूट, पटना

वर्मा, एस.सी. (2010); द इको फ्रेंडली थारू ट्राइबः ए स्टडी इन सोशियो–कल्चरल डाइनेमिक्स, जर्नल ऑफ एशिया पेसिफिक स्टडीज, वाल्यू. (1) न0–2 पी.पी. 177–187

सिंह, आर.के. (2014); 'थारू ट्राइब एण्ड पंचायती राज इन नार्थ इण्डिया', रिसर्च इण्डिया प्रेस, नई दिल्ली

श्रीवास्तव, एस.के. (1958); 'द थारूः ए स्टडी ऑफ कल्चरल डायनामिक्स, आगरा युनिवर्सिटी प्रेस, आगरा

समाचार–पत्र

द ट्रिब्यून, (2015) 'दीवाली गेनिंग पापुलरटी एमंग थारू ट्राइब्स' नवम्बर, 13

अमर उजाला (2017) 'भारत में यहां नहीं मनायी जाती दीपावली, लेकिन मनाते हैं ये अनोखा रिवाज़', अक्टूबर, 17

जागरण (2018), 'दीपावली नहीं दीवारी मनाते थारू समुदाय के लागे', नवम्बर, 05

डा0 निर्भय शर्मा

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में संस्कृत भाषा एवं संस्कृति की उपयोगिता

सार संक्षेप

संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषाओं मे से एक है। इसे देववाणी के नाम से भी जाना जाता है। इसमें निबद्ध साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य है। शिक्षा का वास्तविक मंत्र केवल ज्ञानार्जन ही नहीं अपितु सद्आचरण के साथ राष्ट्रनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना भी होता है। प्रस्तुत शोधपत्र में तार्किकता के साथ संस्कृत भाषा एवं संस्कृति की उपयोगिता सिद्ध करना अभीष्ट है।

सूचक शब्द : संस्कृत, संस्कृति, साहित्य, भाषा।

संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषा है। इसमें निबद्ध साहित्य भरतीय संस्कृति का प्रधान अंग रहा है। भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व आध्यात्मिक भावना है, जिसका विशद् विवेचन वैदिक ग्रन्थों में देखने को मिलता है। भारतीय संस्कृति के अन्यान्य रूपों को मुखरित करती हुई संस्कृत–साहित्य की धारा में महर्षि वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, वाण और दण्डी का प्रमुख स्थान रहा है। प्राचीनता के दृष्टिकोण से भी संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में प्रमुख स्थान रखती है। ऋग्वेद से लेकर अद्यतन संस्कृत–साहित्य की परम्परा अविरल भाव से प्रवाहमान रही है। यह प्रवाह विषम परिस्थितियों में भी क्षीण नहीं हुआ है। संस्कृत–साहित्य का इतिहास वैदिक काल से प्रारम्भ हुआ है। सर्वप्रथम ऋग्वेद तत्पश्चात तीनों वेदों की रचना हुई तथा अनन्तर लौकिक संस्कृत–साहित्य का निर्माण हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृत–साहित्य की अविच्छिन्न परम्परा आठ हजार बर्षो से निरन्तर चली आ रही है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के अध्ययन के लिए संस्कृत–साहित्य की अनिवार्यता स्वतः सिद्ध हो जाती है। वैदिक काल में वेद (संहिता), ब्राम्हण, आरण्यक तथा उपनिषदों का निर्माण हुआ। वहीं लौकिक काल में रामायण, महाभारत, महाकाव्य, नाटक, गीतिकाव्य, गद्यकाव्य आदि की रचना हुई। इसके साथ ही साथ पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भी खूब फला फूला और इसी लौकिक संस्कृति के साहित्य को पाश्चात्य विद्वानों ने 'क्लासिकल लिटरेचर' की संज्ञा प्रदान की है।

मानव अपने भावों को व्यक्त करने के लिए मनन, चिन्तन एवं विचार प्रेषण के लिए जिस साधन को अपनाता है उसे 'भाषा' की संज्ञा प्रदान की गई है। भाषा मूलतः एक संस्कार है, जिसे हम पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश से सहज क्षमता एवं क्रिया व्यापार द्वारा अर्जित करते हैं। इस सम्पूर्ण जगत में पायी जाने वाली विविध भाषाओं से सम्बद्ध प्रश्नों एवं समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने के लिए भाषा विज्ञान का आश्रय लेना पड़ता है। 'भाषा विज्ञान' एक

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी), न्यू ग्रेट स्कालर्स महाविद्यालय अल्हागंज, शाहजहाँपुर (उ0प्र0)
मो0नं0–9634160016 E-Mail- dr.nirbhaysharma@gmail.com

यौगिक शब्द है जो कि 'भाषा' और 'विज्ञान' दो शब्दों से मिलकर बना है। इनमें से 'भाषा' उस वाणी को कहते हैं, जो बोलने और लिखने के काम आती है, जबकि 'विज्ञान' उस विशिष्ट ज्ञान को कहते हैं जिसमें शंका की जगह ही नहीं होती। कहने का तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक तर्क अकाट्य एवं संतोषजनक होते हैं अर्थात 'भाषा विज्ञान' वह विज्ञान है जिसमें भाषा एवं भाषायी तत्वों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक आधार पर वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। 'भाषा विज्ञान' का प्रारम्भ यद्यपि वैदिककालीन शिक्षा, निरूक्त, व्याकरण आदि ग्रन्थों के प्रादुर्भाव के साथ माना जाता है, लेकिन आधुनिक भाषा विज्ञान का प्रारम्भ 1786 ई0 में सर विलियम जोन्स के संस्कृत, लैटिन तथा ग्रीक के तुलनात्मक अध्ययन से माना जाता है। सर्वप्रथम इसे कम्प्रेटिव ग्रामर तदन्तर कम्प्रेटिव फिलोलॉजी और पुनः फिलोलॉजी नाम दिया गया। सम्प्रति भाषा शास्त्र तथा भाषाविज्ञान, ये दो नाम विशेष रूप से प्रचलित हैं। भाषा ही संसार की सर्वोत्कृष्ट ज्योति है, जो कि मानव हृदय के अंधकार को दूर करती है। विश्व के समस्त मानवी कार्यकलाप इसी ज्ञान ज्योति से सिद्ध होते हैं –

इदमन्धन्तमः कृप्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं नं दीप्यते।।

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि शब्द रूपी ज्योति इस संसार को आलोकित न करती, तो संसार में चारों ओर अंधेरा ही छा जाता।

भाषा का स्वरूप इतना विशाल और अगाध है कि उसे ब्रह्म के तुल्य विराट्–स्वरूप माना गया है। विश्व की समस्त भाषाएँ इसमें अन्तर्निहित हैं। जिस प्रकार मानव सृष्टि का क्रम अविच्छिन्न रूप से चल रहा है, उसी प्रकार भाषा का प्रवाह भी मानव के साथ–साथ चल रहा है।

भाषा नदी की धारा की तरह प्रवाहमान है। यह रूकना नहीं जानती। यदि कोई इसे बलपूर्वक रोकना भी चाहे तो यह उसके बंधन को तोड़ आगे निकल जाती है। यह उसकी स्वाभाविक प्रकृति एवं प्रवृत्ति है। भारत एक प्राचीन देश है। यहाँ के लोग भिन्न–भिन्न कालों में भिन्न–भिन्न भाषाएँ बोलते और लिखते आये हैं। संस्कृत इस देश की सबसे पुरानी भाषा है, जिसका व्यवहार हमारे पुराने ऋषि–मुनियों, विद्वानों और कवियों ने समय–समय पर किया है। इसका प्राचीनतम रूप संसार की सर्वप्रथम कृति 'ऋग्वेद' में देखने को मिलता है। संस्कृत को 'आर्य भाषा' या 'देव भाषा' भी कहते हैं। यह आर्यभाषा लगभग पैंतीस सौ वर्ष पुरानी है। हिन्दी इसी आर्यभाषा 'संस्कृत' की उत्तराधिकारिणी है। भाषा का सबसे प्राचीनतम रूप 'ऋग्वेद संहिता' में पाया जाता है। लोगों का कहना है कि वैदिक संस्कृत का सबसे पुराना रूप तब का है जब आर्य पंजाब के आस पास निवास करते थे। फिर आर्य आगे बढ़े। इसी तरह वे पूरब की ओर बढ़ते गये और वैदिक भाषा का क्रमशः विकास होता गया। यह भाषा बोलचाल की नहीं, साहित्यक थी, विद्वानों और मनीषियों की थी।

भारतीय जनमानस को संस्कृति के आवरण ने चारों ओर से घेर रखा है। हमारे स्वभाव एवं आचरण में इसके दर्शन होते हैं। प्राचीन गुरूकुल व्यवस्था, वहाँ का पठन–पाठन एवं जीवन–शैली अपने आप में उदाहरण रहे हैं लेकिन आज के परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य चकाचौंध ने सांस्कृतिक परिदृश्य को प्रभावित किया है। एक सभ्य समाज की परिकल्पना हेतु मानव जीवन में शिक्षा की महती भूमिका होती है। शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति ऊँचाईया गढ़ता है

तथा समाज के अन्य लोगों को भी ऊँचाई पर पहुँचाने की कल्पना सृजित करता है। सृजनशीलता मनुष्य का धर्म होना चाहिए और इसी के सहारे वह अनेक बाधाओं को पार करते हुए सद्मार्ग की ओर उन्मुख होता है। समाज के प्रत्येक शिक्षित एवं सफल व्यक्ति का यह धर्म होना चाहिए कि वह समाज में व्याप्त कुरीतियों, बाह्य आडंबरों को दूर करने का पूर्ण रूपेण प्रयास करे तथा उच्चकोटि की मानसिकता का परिचय दे। ईर्ष्या–द्वेष को त्यागकर विशाल मानसिकता का परिचय देते हुए राष्ट्र–उत्थान एवं चरित्र–निर्माण की बात करे। जिस प्रकार जलते हुए दीपक की लौ अपने चारों ओर आलोक बिखेर देती है और अन्ततः स्वयं राख के रूप में परिवर्तित हो जाती है, यही कुछ सोच एक सच्चे तत्व ज्ञानी की होनी चाहिए। पृथ्वी के गर्भ में बोया हुआ एक दाना स्वयं का अस्तित्व मिटाकर दूसरों के हितार्थ अन्न की राशि के रूप में परिवर्तित होकर लोगों को जीवन प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षित होने के वावजूद भी हम जब तक दूसरों के काम न आ सके तो ऐसी स्थिति में हमारी शिक्षा–दीक्षा अधूरी सी रह जाती है। मानव, समाज का प्रधान अंग है इसके असंतुलित होने से समाज डगमगाने लगता है। इसलिए मानव को समाज हित में अपने स्वभाव में अपेक्षित बदलाव लाने की आवश्यकता होती है। पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध में डूबे हुए कुछ लोग स्वयं को बड़ा सभ्य समझते हैं लेकिन वह यह भूल जाते हैं कि कोट–पैण्ट और टाई लगा लेने से सभ्यता के दायरे में नहीं आ जाते। वास्तविक सभ्य बनने के लिए दिखावे की कोई जरूरत नहीं होती। मन से, भावों से, विचारों एवं आचरण से सभ्य व्यक्ति को अपने सभ्य होने का कोई प्रमाण–पत्र नहीं देना पड़ता है।

सभ्यता के साथ–साथ व्यक्ति को अपनी इन्द्रियों को भी वश में रखना होगा तथा इसके पश्चात् मन पर भी नियंत्रण रखना होगाा क्योंकि 'मन के मते न चालिए, मन के मते अनेक।' मन की बात सुनी और उसी के अनुरूप अनुसरण किया तो एक दिन ऐसा आयेगा कि आपको पछताना पड़ेगा और आप न तो घर के रहेंगे और न घाट के। रावण महापण्डित होकर भी मन और इन्द्रियों को वश में न कर सका और अन्ततः पराजय का मुँह देखना पड़ा। यहाँ यह बताना आवश्यक हो जाता है कि मर्यादा पुरूषोत्तम राम का मन और इन्द्रियों पर अधिकार था इसलिए रावतत्व पर रामत्व की विजय हुई। यह विजय सिर्फ राम की रावण पर नहीं अपितु असत्य पर सत्य की विजय थी। वर्तमान में भी न जाने कितने छल–छद्म रूपी राम–रावण युद्ध चलते रहते हैं लेकिन विजयश्री उन्हीं लोगों का वरण करती है जो दृढ़ निश्चयी होते हैं। अहंकारी, आततायी एवं क्रूर शासक का पर्याय रहे कंस को भी श्रीकृष्ण ने ही सद्गति प्रदान की क्योंकि अहंकारी प्रवृत्ति वालों का एकमात्र यही परिणाम होता है। हम सभी को 'जियो और जीने दो' वाली उक्ति को चरितार्थ करना होगा क्योंकि ऐसा करने से ही व्यष्टि एवं समष्टि का कल्याण संभव है।

दूसरों के हित तथा कल्याण के लिए हमें सदैव तत्पर रहना चाहिए। जिस प्रकार वृक्ष हमें विभिन्न प्रकार के फल–फूल एवं औषधि प्रदान करते हैं। सरोवर तथा नदियाँ अनगिनत लोगों की प्यास बुझाती हैं तथा पर्वत श्रंखलाएँ अपार प्राकृतिक सम्पदा का भण्डार हैं और पृथ्वी माता तो न जाने कितने प्राकृतिक भण्डार अपने गर्भ में छिपाए हुए हैं और समय आने पर यह सब कुछ मानवहित में ही प्रदान कर देती है। आधुनिक सभ्यता के इस दौर में मानव स्वभाव भी कुछ इसी तरह का हो ऐसी अपेक्षा की जाती है। यदि समाज का ऐसा स्वरूप हो जाता है तो फिर कोई असंतुलन नहीं होगा। शिक्षा का वास्तविक मूल्य लागों के मनोमस्तिष्क से दूषित मानसिकता को

दूर करना होता है और इसी क्रम में हम सभी को आगे बढ़ना है।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में मानव–जीवन अनेक झंझटों का सामना कर रहा है इससे निजात पाने के लिए उसे अनेक कठिन रास्ते तय करने होते हैं। प्रकृति के भयावह रूप में भी मानव संतुलित भाव से उस पर पार पा लेता है और विषम परिस्थितियों में भी धैर्य नहीं खोता और अन्ततः सफलता पा ही लेता है। भारतीय संस्कृति का अपना एक धर्म रहा है और इसी के बलबूते सम्पूर्ण विश्व में धाक रही है। यहाँ की गंगा–जमुनी तहजीब सभी को अपनी ओर आकर्षित करती रही है। इसीलिए तो दीपावली में मुस्लिमों का अली और रमजान में हिन्दुओं के राम का सुंदर संयोजन है। भारतवर्ष में राम–रहीम की बात हो या राम और कृष्ण की। इन सभी आदर्शों ने भारतीय जनमानस को सकारात्मक ऊर्जा प्रदान की है तथा समाज में समरसता लाने के लिए सदैव समन्वय की स्थापना की है। संस्कृति की रक्षा के लिए मानव–कल्याण के प्रति सकारात्मक सोच विकसित करनी होगी तथा नकारात्मक एवं विध्वंसात्मक विचारों का परित्याग करके उत्तरोत्तर वैकासिक सोच अपनानी होगी। स्वयं की सोच को और अधिक स्वस्थ तथा उच्च करना होगा तब कहीं जाकर के आप अखिल विश्व की सोच पायेंगे, क्योंकि स्वयं के सुखद और सम्पन्न होने से अखिल विश्व सम्पन्न नहीं हो जाता बल्कि अखिल विश्व की सम्पन्नता में हम सभी की प्रसन्नता छिपी हुई है। इस तरफ हम सभी को मिलकर कदम बढ़ाने होंगे।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमारी सोच में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। सही दिशा और सकारात्मक सोच ने राष्ट्र को विकास की दौड़ में आगे लाकर खड़ा कर दिया है तथा यह सच है कि हमारे राष्ट्र की जनशक्ति ने आसमान की ऊँचाईयों को छू लिया है, समुद्र की गहराईयों को नाप लिया है, एवरेस्ट की चोटी पर तिरंगा फहरा दिया है, सुपरसोनिक वायुयानों का निर्माण कर लिया है, तीव्र गति वाली रेलगाड़ियों पर सफर करना तय हो गया है, संगीत की दुनियाँ में विश्वफलक पर परचम लहराया है, सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में हमारा कोई सानी नहीं, खेल जगत् में हम अपना लोहा मनवा चुके हैं, अध्यात्म की तो बात ही क्या है, राजनीति में तो हम माहिर हैं, धर्म और दर्शन में प्रवीण हैं, नीति में निपुण हैं, ज्योतिष में पारंगत हैं, भूगोल में हम गोलोक तक पहुँच गये हैं, विज्ञान और तकनीकि में हम विकसित राष्ट्रों की बराबरी कर रहे हैं, सैन्य शक्ति में हम किसी से कम नहीं, खुफिया तंत्र में हम अच्छे–अच्छे राष्ट्रों की बराबरी करते हैं, इसमें कोई कहने वाली बात नहीं, अन्तरिक्ष को हमने नये आयामों से देखा है तथा पृथ्वी की रग–रग को समझने का प्रयास किया है, लेकिन फिर भी हमको बहुत कुछ कर गुजरने की आवश्यकता है।

समय के साथ–साथ हमारे रहन–सहन एवं जीवन शैली में भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। इस दौर में विज्ञान ने अभूतपूर्व चमत्कार किये हैं लेकिन मन की गति और उस पर नियंत्रण करने का कोई यन्त्र विकसित नहीं कर सका। लेकिन अध्यात्म से जुड़ा व्यक्ति मन पर नियंत्रण करके वाह्य आडम्बर, ईर्ष्या, द्वेष, नकारात्मकता एवं अनैतिक व्यवहार आदि सबसे मुक्त हो जाता है। निरन्तर बदलते हुए परिवेष के मध्य मानव मन को नकारात्मक सोच से ऊपर उठकर सकारात्मक ऊर्जा बढ़ानी होगी तथा अखिल विश्व की ओर चलना होगा तथा उसी में सभी की भलाई निहित है। इस कार्य को पूर्ण करने में युवाओं को विशेष सहयोग देना होगा, क्योंकि वृद्धजनों से एक अनुभव की सीख मिलती है तथा बच्चों से चंचलता एवं सक्रियता की तथा सकारात्मक सोच, कार्य परिणति एवं दायित्व युवाओं के कंधों पर ही होता हैं। युवावस्था

संभावनाओं से भरा हुआ होता है। यह जीवन का वह अंश है जिसमें हम सब कुछ कर सकते हैं, बशर्ते इसके लिए हम तैयार हों। शिक्षा, संस्कृति अपनी अधिकतम सीमा तक हमारी भौतिक एवं बौद्धिक क्षमताओं को विकसित करने व प्रतिस्पर्द्धात्मक दुनियाँ में सफल होने के लिए तैयार करती है। इसलिए हम सबका दायित्व बनता है कि अपनी अधिकतम क्षमताओं का प्रयोग करते हुए अखिल विश्व के कल्याण हेतु निरन्तर गतिशील रहें, उसी में हम सबकी समझदारी सिद्ध होगी।

संदर्भ

भाषा विज्ञान – डा0 कर्ण सिंह

भाषा विज्ञान – डा0 भोलानाथ तिवारी

संस्कृत साहित्य का इतिहास – डा0 जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल

हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – डा0 बच्चन सिंह

बीसवीं शताब्दी के हिंदी काव्य के संदर्भ में कुँअर बेचैन के काव्य का मूल्यांकन– डा0 निर्भय शर्मा

रामचन्द्र मिशन निबंध प्रतियोगिता– 2015, 2016, 2017

भारतीय भाषा विज्ञान– डा0 किशोरीलाल बाजपेयी 'शास्त्री'

आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना– डा0 वासुदेव नंदन प्रसाद

रजत पांडेय

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

जलवायु कार्रवाई में भारतीय युवाओं की भागीदारी : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सार संक्षेप

जलवायु परिवर्तन आज के दौर की सबसे बड़ी वैश्विक समस्या है। इस समस्या से कोई भी अछूता नहीं है। लगातार कटते पेड़, औद्योगिकरण से हो रहे कार्बन उत्सर्जन, पर्यावरण को दूषित करने वाला व्यवहार और प्राकृतिक संसाधनों की बर्बादी ने अब अपना दुष्प्रभाव जलवायु परिवर्तन के रूप में दिखाना शुरू कर दिया है। जलवायु परिवर्तन का एक वैश्विक समस्या होना जलवायु परिवर्तन कार्रवाई का एक वैश्विक लड़ाई बनना आवश्यक कर देता है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह लड़ाई और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि यहां जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के लिए अतिसंवेदनशील समूहों और लोगों की संख्या बहुत अधिक है। युवा भी उन्हीं लोगों में आते हैं। अपने पूरे जीवनकाल में जलवायु परिवर्तन के विभिन्न प्रभावों से जूझने के अलावा युवा पीढ़ी के पास कोई और विकल्प उनकी पिछली पीढ़ियों ने नहीं छोड़ा है। ऐसे में जलवायु कार्रवाई में युवजन की आवाजें बहुत महत्वपूर्ण हैं। वो न सिर्फ अगली पीढ़ी के नीति निर्माता हैं बल्कि आज के समय में भी अपने नवीन विचारों और तरीकों से जलवायु कार्रवाई में अहम योगदान दे रहे हैं। दुनिया भर के युवा पर्यावरणविदों से प्रेरणा लेकर और दुनिया भर के युवाओं को प्रेरित कर सकने की क्षमता रखते हुए कई भारतीय युवा जलवायु कार्यकर्ता उठ खड़े हुए हैं, जिन्होंने भारत का नाम रोशन करने के साथ साथ जलवायु कार्रवाई में बड़े योगदान दिए हैं। प्रस्तुत शोध पत्र ऐसे ही कुछ युवाओं का जलवायु कार्यकर्ता में योगदान, उनकी यात्रा, समस्याएं, विभिन्न और नवीन तरीकों व मांगों पर एक विश्लेषणात्मक अध्ययन है।

सूचक शब्द : जलवायु परिवर्तन, युवा पर्यावरणविद, संयुक्त राष्ट्र, कार्बन उत्सर्जन, पर्यावरण संरक्षण

परिचय

तमाम वैज्ञानिक शोध व दुनिया भर में महसूस किए जा सकने वाली पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति से यह पता चलता है की जलवायु परिवर्तन हर वर्ष और अधिक और नई समस्याएं लेकर आ रहा है। हर जागरूक व्यक्ति यह अनुभव कर सकता है की कैसे समय दर समय यह परेशानी एक घातक रूप ले रही है। असमय वर्षा, बढ़ते तापमान, पिघलते हिमनद (ग्लेशियर), विभिन्न तरह के तूफान, भूकंप, सुनामी, बाढ़ और सूखे जैसी आपदाओं का बढ़ना अब आम घटना हो गई है। इन सभी समस्याओं का मुख्य कारण जलवायु परिवर्तन है। चूंकि यह समस्या किसी एक देश या महाद्वीप की नहीं है, अब पूरा विश्व जलवायु परिवर्तन पर एक साथ चर्चा कर रहा है। जलवायु परिवर्तन संयुक्त राष्ट्र की बैठकों में विचार–विनिमय का एक मुद्दा बन चुका है। जलवायु परिवर्तन को एक वैश्विक समस्या मानते हुए संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1995 में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (सी.ओ.पी. या कॉप) की शुरुआत बर्लिन में हुए पहले सम्मेलन के साथ की

शोध छात्र, समाजशास्त्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

गई। हर वर्ष होने वाले इस सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र से जुड़े देशों के प्रतिनिधि, जलवायु परिवर्तन से संबंधित चर्चा करते हैं और साथ ही साथ जलवायु परिवर्तन के रोकथाम हेतु योजना बनाते हैं (यूएनएफसीसी)। इसी क्रम में मिस्र में 6 नवंबर 2022 से 18 नवंबर 2022 तक संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन–27 (सीओपी 27) का आयोजन हुआ।

जलवायु परिवर्तन से होने वाले आर्थिक व सामाजिक नुकसान से भी दुनिया अब अनभिज्ञ नहीं है। जलवायु परिवर्तन पूरी पृथ्वी के लिए समस्या अवश्य है, किंतु कुछ लोगों व समूहों को इसका दंश बाकियों से अधिक झेलना पड़ता है। वह समुदाय जो अपने भरण–पोषण के लिए पर्यावरण पर आश्रित हैं, वह समूह और लोग जो आर्थिक रूप से कमजोर हैं, तथा वह समूह और लोग जो अपने निर्णय स्वयं नहीं ले सकते; सभी के लिए जलवायु परिवर्तन बाकियों के तुलना में अधिक बड़ी समस्या है। इन्हीं समूहों में युवा भी आते हैं। वयस्कों द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे दैनिक सुगमता की चीजों से होने वाले प्रदूषण और कार्बन उत्सर्जन में युवाओं और बच्चों का कोई योगदान नहीं है। उनके लिए जलवायु परिवर्तन एक ऐसी चुनौती है जिसको उन्होंने स्वयं निमंत्रण नहीं दिया। वो जलवायु परिवर्तन के कारक नहीं हैं, किंतु उन्हें जीवन भर जलवायु परिवर्तन से लड़ना है (मूलर और टिप्पिंस, 2015)। दुनिया भर के विशेषज्ञ, सरकारें व नीति निर्माता जलवायु परिवर्तन के इन पहलुओं पर भी काम करने में लगे हुए हैं। ऐसे में युवाओं को जलवायु परिवर्तन से जुड़ी नीतियों में शामिल करना न सिर्फ युवाओं का अधिकार बनता है बल्कि यह जलवायु परिवर्तन रोकथाम में एक बड़ा कदम हो सकता है। जलवायु परिवर्तन से जुड़ी बैठकों, चर्चाओं, व नीति निर्माण में युवाओं का योगदान अहम साबित हो सकता है। जलवायु परिवर्तन से लड़ने के लिए युवा ना सिर्फ नवीन विचार व ऊर्जा रखते हैं बल्कि उन्हें इस लड़ाई में शामिल होने का पूरा अधिकार भी है। विकसित देशों के मुकाबले विकासशील देशों के लिए जलवायु परिवर्तन एक अधिक बड़ी चुनौती है। ऐसे में बात अगर भारत की करें जिसके जनसंख्या में युवाओं का अनुपात दुनिया में सबसे अधिक है (अंतरराष्ट्रीय श्रम संघ), तो वहां यह समस्या और बड़ी हो जाती है। युवा वर्ग वह वर्ग है जिसको अपने जीवन का अधिकतम हिस्सा भविष्य में बिताना है, जहां जलवायु परिवर्तन की समस्या मौजूदा समय से कहीं अधिक होगी। ऐसे में युवाओं को जलवायु परिवर्तन रोकथाम में प्रतिभाग करने का पूरा मौका न देना, न सिर्फ उनके साथ अन्याय होगा, बल्कि दुनिया को इस समस्या से निपटने के नवीन, रचनात्मक व कारगर तरीके भी नहीं मिल पाएंगे। इसलिए जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने में युवाओं की सहभागिता समय की मांग है (इकोनॉमिक टाइम्स, 2021)।

भारत और अन्य देशों में ऐसे तमाम युवा उभरे हैं जिन्होंने जलवायु परिवर्तन की समस्या पर बहुत ही कम उम्र में अच्छा काम किया है। ग्रेटा थनबर्ग एक 19 वर्षीय स्वीडिश युवती है जिन्होंने छोटी सी उम्र में जलवायु परिवर्तन पर काम करके बड़ा मुकाम बनाया है। ग्रेटा के पर्यावरण आंदोलनों को विश्व भर में बड़ी ख्याति मिली है। ग्रेटा ने लाखों युवाओं को जलवायु परिवर्तन का सामना करने के लिए आगे आने की प्रेरणा दी है। धीरे धीरे इन युवाओं और इनके कामों को आधिकारिक सराहना भी मिलने लगी है। जिसका सबसे विशेष उदाहरण है मिस्र में होने वाले संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन–27 (कॉप 27) में अपने विचार रखने हेतु दुनिया भर से बुलाए गए युवा पर्यावरण कार्यकर्ता। उन में भारत की ग्रेटा कही जाने वाली 11 वर्षीय लिसिप्रिया कंगुजम भी शामिल रहीं (शर्मा, 2022)।

जलवायु परिवर्तन रोकथाम में भारतीय युवाओं की स्थिति

जलवायु परिवर्तन एक ऐसी समस्या है जिसका युवाओं की सहभागिता के बिना सामना कर पाना असंभव है। जलवायु परिवर्तन में सबसे कम योगदान देने वाली युवा पीढ़ी ही जलवायु परिवर्तन का सबसे पीड़ित समूह है। चूंकि पर्यावरण कोई ऐसी चीज नहीं है जो अर्थव्यवस्था या आर्थिक विकास में अधिक योगदान दे सकती हो, इसलिए नीति निर्माताओं और सरकारों ने लंबे अरसे तक पर्यावरण संबंधी मुद्दों को दरकिनार किया। तरक्की की दौड़ में आज भी पर्यावरण को पहली प्राथमिकता मिल पाना मुश्किल है (लिवरमैन, 2019)। पर्यावरण संरक्षण के लिए लोगों की जीवन शैली में बड़े बदलाव की आवश्यकता है। यदि लोग कभी इतने जागरूक हुए भी कि वे पर्यावरण संरक्षण के लिए अपनी जीवन शैली में बड़े बदलाव करें और सांसारिक सुविधाओं को त्याग दें, तो ये किसी भी देश को एक बड़ा आर्थिक नुकसान भी देगा, जिसके लिए शायद ही कोई शासन तैयार हो। साथ ही साथ पर्यावरण में बड़े स्तर पर सुधार तभी संभव है जब ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी की जाए, जिसके लिए आर्थिक तरक्की के कुछ साधनों और स्रोतों में कटौती आवश्यक है। विभिन्न देशों के नीति निर्माता आम तौर पर बड़े उम्र के लोग होते हैं, जिन्होंने अपने जीवन का बड़ा हिस्सा जी लिया है। लेकिन युवा वर्ग एक ऐसा समूह है जिन्हें अपने जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा अभी जीना है। उनकी पहली प्राथमिकता सुकून से सांस लेना ही होगी, न की बड़ी इमारतें। नीति निर्माताओं के लिए ऐसे निर्णय लेना मुश्किल होंगे, जिनमें आर्थिक विकास पर पर्यावरण को अधिक तरजीह दी गई हो। किंतु युवाओं के लिए पर्यावरण की कीमत कहीं अधिक है। उन्हें पता है की उन्हें असंगत रूप से जलवायु परिवर्तन का सामना करना है। उन्हें पिछली पीढ़ी की गलतियों का भार न सिर्फ झेलना है, बल्कि उनमें सुधार भी उन्हे स्वयं करने हैं। ऐसे में, युवाओं के विचार, मत, योजनाएं, सुझाव, व उनका नेतृत्व जलवायु परिवर्तन को रोकने की लड़ाई में अति आवश्यक हैं।

युवजन अपने तरीकों और योजनाओं में बाकियों से अलग सोच सकने की क्षमता रखते हैं। जिस कारण उनके तरीके जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ाई में अधिक कारगर साबित हो सकते हैं और हो रहे हैं। जलवायु परिवर्तन रोकथाम के क्षेत्र में युवाओं ने विभिन्न तरीकों से अपनी सहभागिता दर्ज कराई है और अपनी उपयोगिता साबित की है। इंटरनेट पर पर्यावरण को लेकर मुखर रहना व जागरूकता फैलाना, विभिन्न पर्यावरण संगठनों और समूहों में शामिल होना, जलवायु परिवर्तन संबंधित सामुदायिक कार्यक्रमों और विभिन्न परियोजनाओं का आयोजन कर विद्यालयों, महाविद्यालयों, पंचायतों आदि जगहों पर लोगों को जागरूक करना, पेड़ लगाने संबंधी कार्यक्रमों और गो ग्रीन गतिविधियों का आयोजन करना व उनमें हिस्सेदारी लेना, सोशल मीडिया जैसे की फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर, आदि के माध्यम से देश विदेश में हो रहे पर्यावरण को दूषित करने वाली गतिविधियों से लोगों को अवगत कराना व अलग–अलग प्रकार के मुहिम चलाना, प्लास्टिक इस्तेमाल में कटौती करना व लोगों को इसके नुकसान के बारे में समझाना, गैर कानूनी गतिविधियों के बारे में प्रशासन को अवगत कराना, छोटी दूरी के लिए गाड़ी का इस्तेमाल करने के बजाय चल कर जाना या साइकिल का उपयोग करना, अपने घरों में पर्यावरण रक्षा हेतु आवश्यक व्यवहार का पालन करना, और अपने परिवार, मित्रों, व जानने वालों को पर्यावरण हितैषी व्यवहार के लिए प्रोत्साहित करना; ऐसी तमाम विधियों से युवा वर्ग जलवायु परिवर्तन से लड़ने में हर दिन अपनी सहभागिता दर्ज करा रहा है। युवाओं के पास तमाम नवीन

व रचनात्मक तरीके तो हैं ही, साथ ही साथ उन्हें इस बात का एहसास भी है कि आज बनाई गई नीतियां उनका समूचा भविष्य निर्धारित करेंगी। ऐसे में वह इन नीतियों के निर्माण में भी अपना मत रखने का अधिकार चाहते हैं। आज युवा वर्ग नीति निर्माण पर ना सिर्फ अपना नजरिया रख रहा है बल्कि नीति निर्माण में हो रही कमियों पर अपनी आवाज भी मुखर कर रहा है।

अपना भविष्य बचाने के लिए जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ाई लड़ने को युवा हर तरह से सक्षम और तैयार है। उन्हें आवश्यकता है सरकारों के सहयोग की। भारत के जलवायु आंदोलनों के बारे में सबसे दुखद बात यह रही कि लंबे समय तक ऐसा कोई आंदोलन था ही नहीं। चिपको आंदोलन जैसे पर्यावरण संरक्षण को लेकर आंदोलन जरूर हुए किंतु इनकी संख्या ना के बराबर ही रही। पिछले 25–30 वर्षों से गैर सरकारी संगठनों ने जलवायु परिवर्तन पर जागरूकता फैलाने का काम तो किया पर सामूहिक संगठित सामंजस्य, समन्वित मांगो, और दीर्घकालिक रणनीतियों की कमी के कारण बहुत ही कम युवा संगठन सक्रिय हो पाए जो जलवायु परिवर्तन की समस्या का समाधान खोजने में प्रतिभाग कर सकें तथा अधिक से अधिक युवाओं को जोड़ सकें। किंतु पिछले कुछ वर्षों में यह स्थिति तेजी से बदली है। इसकी शुरुआत हुई एफ.एफ.एफ. (फ्राइडे फॉर फ्यूचर) जैसे अंतरराष्ट्रीय युवा जलवायु संगठनों का भारत में तेजी से फैलते प्रचार से। एफ.एफ.एफ. युवाओं के नेतृत्व में चलने वाला संगठित आंदोलन है जिसकी शुरुआत अगस्त 2018 में हुई जब 15 वर्षीय ग्रेटा थनबर्ग ने तीन हफ्तों तक हर रोज स्वीडन के पार्लियामेंट के बाहर कुछ और युवा साथियों के साथ बैठकर, जलवायु परिवर्तन पर सरकार द्वारा कोई ठोस कदम न लेने का विरोध किया। इस विरोध प्रदर्शन के बारे में ग्रेटा थनबर्ग ने इंस्टाग्राम और ट्विटर के माध्यम से लोगों को अवगत कराया और देखते ही देखते यह घटना विश्व भर में चर्चित हो गई। भारत में भी सैकड़ों ऐसे युवा हैं जो एफ..एफ.एफ जैसे वैश्विक युवा जलवायु संगठनों के साथ जुड़ कर जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में अच्छा काम कर रहे हैं (नायर, 2022)। जलवायु परिवर्तन पर अक्सर लिखने वाले लेखक नागराज अदवे मानते हैं की भारतीय युवाओं को दुनिया भर में होने वाली गतिविधियों से जोड़ने और उन्हें जलवायु परिवर्तन के बारे में समझने और उस पर काम करने में सक्षम बनाने का बहुत बड़ा श्रेय डिजिटल क्रांति को जाता है। नागराज अदवे के अनुसार, "स्मार्टफोन ने भारत और दुनिया भर में सूचनाओं और दृश्यों के साथ छवियों, लेखों और वीडियो के तेजी से प्रसार को सक्षम किया और जलवायु परिवर्तन के बारे में जागरूकता की गहराई को और मजबूत किया।'' सोशल मीडिया और स्मार्टफोन आज युवाओं के लिए एक आवश्यकता है। और इसलिए उन्हें किसी भी मुहिम से जोड़ने के लिए इससे बेहतर कोई साधन नहीं है। यही बात समझते हुए तमाम युवा जलवायु संगठनों ने सोशल मीडिया और अन्य वेबसाइटों का सहारा लेकर लाखों युवाओं को इस मुहिम में जोड़ने का काम किया है (अदवे, 2021)। भारतीय युवा जलवायु कार्यकर्ताओं ने जमीन पर उतर के काम करने के अलावा सोशल मीडिया पर लोगों को जागरूक करने का बीड़ा भी उठाया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डबल्यू.एच.ओ.) के अनुसार दुनिया में 15 वर्ष से कम आयु के लगभग 93% बच्चे एक ऐसी जहरीली हवा में सांस ले रहे हैं जो कि इतना प्रदूषित है कि उनके स्वास्थ्य व उनके विकास पर गहरा नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2018)। ऐसे में जब भारत की अगली पीढ़ी के लिए जलवायु परिवर्तन जीवन और मृत्यु का प्रश्न बना हुआ है, तब उनसे ज्यादा यह लड़ाई किसी के लिए आवश्यक नहीं हो सकती। यही कारण है कि आज भारत के विभिन्न राज्यों में तमाम युवा जलवायु कार्यकर्ता सामने आ रहे हैं जो न सिर्फ

जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में ठोस काम कर रहे हैं बल्कि और युवाओं को प्रेरणा भी दे रहे हैं।

पिछले कुछ वर्षों में भारत सरकार ने भी युवा पर्यावरणविदों को पहचान कर उनके कार्यों को सराहा है। साथ ही साथ युवाओं को जलवायु परिवर्तन से अवगत कराने हेतु विभिन्न सरकारी अभियान भी चलाए गए। भारत सरकार के पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) ने संयुक्त रूप से 14 नवंबर 2022 को मिस्र में सीओपी 27 के एक साइड इवेंट में "इन आवर लाइफटाइम" अभियान शुरू किया। अभियान का उद्देश्य युवाओं को प्रोत्साहित करना है तथा पर्यावरण हितैषी जीवन शैली के संदेशवाहक बनने के लिए 18 से 23 वर्ष की आयु के बच्चों को तैयार करना (प्रसार भारती न्यूज, 2022)। 'लाइफ' की अवधारणा भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 2021 में ग्लास्गो में होने वाले सीओपी 26 में पेश किया था। इसके अंतर्गत पर्यावरण हितैषी लोगों का एक वैश्विक नेटवर्क विकसित करने की बात की गई जिसकी सहायता से संगठित हो कर जलवायु संबंधी गतिविधियों को बढ़ावा दिया जा सके। विश्व पर्यावरण दिवस, 5 जून 2022 को 'लाइफ' को एक वैश्विक आंदोलन का रूप देने के इरादे से 'लाइफ ग्लोबल मूवमेंट' लॉन्च किया गया। अब इसमें युवाओं को सहभाग करने का भी मौका मिला है जिससे इस आंदोलन की प्रासंगिकता और बढ़ गई। लॉन्च के समय सभा को संबोधित करते हुए, केंद्रीय पर्यावरण, वन, और जलवायु परिवर्तन मंत्री भूपेंद्र यादव ने कहा, "प्रमुख हितधारकों में आज का युवा भी शामिल है। युवाओं के बीच 'लाइफ' की समझ को विकसित करना एक जिम्मेदार उपभोक्ता शैली को बढ़ावा देगा और आने वाली पीढ़ियों के जीवन शैली विकल्पों को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर उन्हें ग्रह बचाने के लिए तैयार करेगा।" इसके अलावा भारत सरकार द्वारा हर वर्ष युवा पर्यावरणविदों को सम्मानित करने का भी कार्यक्रम चलाया गया है। उनके कार्यों को मिलने वाले पहचान से युवाओं को जलवायु परिवर्तन से लड़ने में प्रोत्साहन मिलेगा।

2021 में ग्लास्गो में हुए COP26 के उद्घाटन के अवसर पर, प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी का यह प्रतिज्ञा लेना कि भारत – दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा कार्बन उत्सर्जक – 2070 तक शून्य उत्सर्जन के लक्ष्य को प्राप्त करेगा, शिखर सम्मेलन की मुख्य उपलब्धियों में से एक माना जाता है। किंतु कुछ जगहों पर भारत को आलोचना का भी सामना करना पड़ा। सीओपी 26 ग्लास्गो सम्मेलन के अंतिम दिनों में भारत और चीन ने कोयले का इस्तेमाल समाप्त करने संबंधी समझौते (एंटी–कोल एग्रीमेंट) पर पूर्ण प्रतिबद्धता न दिखाते हुए कोयले को फेज आउट (धीरे धीरे समाप्ति) करने की प्रतिज्ञा लेने के बजाय फेज डाउन (धीरे धीरे कम) करने की प्रतिज्ञा ली (जयपुरकर, 2021)। हालांकि इसका दूसरा पहलू यह है कि भारत, जो की अभी भी एक विकासशील देश है, इतने कड़े कदम नहीं ले सकता जिससे उसके आर्थिक विकास पर कोई प्रभाव पड़े। भारत ने विकसित देशों की तुलना में हमेशा कम कार्बन उत्सर्जन किया है, पर जलवायु परिवर्तन का दंश भारत को विकसित देशों से अधिक झेलना पड़ा है। किंतु आज जब जलवायु परिवर्तन आने वाली पीढ़ी के समस्त जीवन को प्रभावित कर सकता है, इसे रोकने के लिए कड़े कदम लेने आवश्यक हैं। भारत की राजधानी नई दिल्ली की हवा 2021 में इतनी प्रदूषित हो गई कि स्कूलों को कुछ दिनों के लिए बंद करना पड़ा और कोयले से चलने वाले पांच बिजली संयंत्रों को अस्थायी रूप से बंद कर दिया गया (द इकोनॉमिक टाईम्स, 2021)। भारत के युवा जलवायु कार्यकर्ता इस मुद्दे पर तत्काल कार्रवाई की मांग कर रहे हैं। वे सरकारों और

व्यवसायों को प्रदूषित हवा और बढ़ते जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार ठहरा रहे हैं और गंदगी को साफ करने के लिए रचनात्मक रूप से प्रौद्योगिकी का उपयोग कर रहे हैं। भारत द्वारा ली गई 2070 तक शून्य उत्सर्जन के लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रतिज्ञा को मौजूदा राजनेता या नीतिकार नहीं पूरा कर सकते। भारत के मौजूदा प्रधानमंत्री 2070 में 120 साल के होंगे। स्पष्ट है की उस लक्ष्य को पूरा करने का बीड़ा आज के युवाओं पर ही आएगा (शर्मा, 2021)। ऐसे में युवाओं की भूमिका और बड़ी हो जाती है। जो कड़े कदम आज की सरकारें और नीतिकार लेने में असमर्थ हैं, उसके लिए युवा पीढ़ी को तैयार रहना होगा।

भारत : जलवायु कार्रवाई में युवा आवाजें

सूचना क्रांति के इस दौर में, पूरी दुनिया एक वैश्विक गांव का रूप ले चुका है। पृथ्वी के एक कोने में होने वाली घटना को दूसरे कोने में पहुंचने के लिए अब अधिक समय नहीं लग रहा। इस बदलाव के सबसे बड़े लाभार्थी हैं युवा। मनोविज्ञान भी ये बात मानता है की नई चीजें सीखने में बच्चे और युवा वयस्कों से आगे होते हैं (लिक्विन और गोपनिक, 2022)। इंटरनेट और स्मार्टफोन के साथ भी कुछ ऐसा ही है। डिजिटल दुनिया में प्रतिदिन जुड़ने वाले नए फीचर युवाओं को सबसे पहले पता चलते हैं। ऐसे में वो जलवायु परिवर्तन जैसी समस्या की जानकारी से अछूते नहीं रह सकते। दूर दराज होने वाली पर्यावरण को दूषित करने वाली घटनाएं पल भर में लोगों के लैपटॉप, कंप्यूटर और स्मार्टफोन पर दिख जाती हैं। युवा वर्ग, जो को जलवायु परिवर्तन का सबसे बड़ा पीड़ित वर्ग है, और जो कि सूचना क्रांति को बाकी आयु–वर्गों की तुलना में दोनों हाथों से स्वीकार कर रहा है; उसके लिए जलवायु परिवर्तन से परिचित और परेशान होना पूर्णतया जायज है। भारत में ऐसे कितने ही किशोर और युवा हैं जो अपने और अपने साथियों के भविष्य के लिए अकेले ही जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध लड़ाई लड़ने निकल पड़े हैं। युवाओं की इस लड़ाई में सबसे विशेष बात है उनकी रचनात्मकता। उनके तरीके बड़े उम्र के लोगों से बहुत भिन्न हैं। वो संसद भवन के बाहर खड़े होके विभिन्न प्रकार के पोस्टर दिखा कर विरोध करना भी जानते हैं, तो सोशल मिडिया पर कैंपेन चला कर सरकारों पर पर्यावरण बचाने वाले नियमों को लाने का दबाव भी बनाते हैं। वो नुक्कड़ नाटकों से लोगों को प्रभावित करके उन्हें जागरूक करना भी जानते हैं, तो ट्विटर पे ट्रेंड चला के देश दुनिया को अपनी मांगों से वाकिफ भी कराते हैं। भारत के ये युवा पर्यवरणविद अपनी बातों से लोगों को प्रभावित करने और पर्यावरण–हितैषी व्यवहार के लिए प्रोत्साहित करने में वरिष्ठ बुद्धिजियों को भी मात देते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे उदाहरण भी हैं जहां युवाओं के पास विभिन्न रचनात्मक और वैज्ञानिक तरीके होते हैं जिनके द्वारा वो कार्बन उत्सर्जन को कम करने के लिए अलग अलग तरह के उपकरण बना डालते हैं। ऐसे तमाम युवा धुरंधरों में से कुछ चुनिंदा युवा जिन्होंने विश्व पटल पर भारत का नाम रोशन किया है, और जिन्होंने कम उम्र में जलवायु कार्रवाई में बड़ी छाप छोड़ी है, निम्न हैं :

लिसिप्रिया कंगुजम (आयु – 11 वर्ष)

महात्मा गांधी के जन्मदिवस (2 अक्टूबर) के दिन पैदा हुई लिसिप्रिया कंगुजम मात्र 11 वर्ष की बाल पर्यावरण कार्यकर्ता हैं। लिसिप्रिया भारत के पूर्वोत्तर राज्य मणिपुर से हैं। लिसिप्रिया विश्व स्तर पर सबसे कम उम्र की जलवायु कार्यकर्ता मानी जाती हैं (अग्रवाल, 2019)। लिसिप्रिया मात्र 7 वर्ष की उम्र में 2018 में पहली बार तब चर्चा में आईं जब उन्होंने जलवायु

कार्यकर्ता ग्रेटा थनबर्ग से प्रेरणा लेकर एक सप्ताह तक भारत के संसद भवन के बाहर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से भारत में 'जलवायु कानून' लाने की अपील करने हेतु डटी रही। उनके इस मांग की देश भर में सराहना हुई, और लोग इस कम उम्र की युवा के जलवायु परिवर्तन के प्रति सजगता को देख कर प्रभावित भी हुए। लिसिप्रिया ने सैकड़ों पेड़ लगाने का बीड़ा भी उठाया और वो आज तक ये काम लगातार करती आ रही हैं। इस युवा कार्यकर्ता ने सरकार से भारत के उच्च प्रदूषण स्तर पर अंकुश लगाने के लिए नए कानूनों पर जोर देने के साथ साथ सभी भारतीय स्कूलों में जलवायु परिवर्तन का पाठ अनिवार्य करने की भी मांग रखी है। बीबीसी को दिए गए एक इंटरव्यू में लिसिप्रिया ने बताया की कैसे उन्होंने मात्र 4 वर्ष की उम्र में 2015 में नेपाल में आए भूकंप में पीड़ितों की सहायता के लिए धन इकट्ठा करने में अपने पिता की मदद की, और वहां से उन्हें जलवायु परिवर्तन से होने वाले आपदाओं के बारे में पता चला। लेकिन 2018 में पिता के साथ मंगोलिया में संयुक्त राष्ट्र आपदा सम्मेलन में भाग लेने के बाद उन्हें जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में सक्रिय होने की आवश्यकता महसूस हुई (बीबीसी, 2020)।

साल 2019 में उन्हें डॉक्टर एपीजे अब्दुल कलाम चिल्ड्रेन अवॉर्ड, विश्व बाल शांति पुरस्कार और भारत शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। लिसिप्रिया ने सबसे अधिक ख्याति तब प्राप्त की जब 2019 में मात्र 8 वर्ष की उम्र में उन्हें सीओपी 25 में हिस्सा लेने के लिए मैड्रिड, स्पेन में बुलाया गया। तबसे लिसिप्रिया को लगातार तीसरी बार सीओपी का हिस्सा बनाया जा चुका है और तीनों ही बार लिसिप्रिया ने अपने भाषणों से न सिर्फ दुनिया को चौंका दिया, बल्कि लाखों युवाओं को अपना भविष्य बचाने के लिए जलवायु परिवर्तन के खिलाफ जंग में आगे आने की प्रेरणा भी दी। सीओपी 25 में दिया गया उनका भाषण बहुत चर्चित हुआ जिसमें उन्होंने अपनी बात शुरू करते हुए ही कहा, "मैं विश्व के नेताओं को यह बताने आई हूं की यह कड़े कदम लेने का समय है, क्योंकि ये समय जलवायु इमरजेंसी का है।" छोटी सी बच्ची की इन समझदार बातों ने सबको झकझोर दिया। 2022 में मिस्र में हुए सीओपी–27 में भी 11 वर्षीय कंगुजम ने अच्छा भाषण दिया। उन्होंने विकसित देशों पर सीधी बात करते हुए कहा की विकसित देशों द्वारा किए गए कार्बन उत्सर्जन का परिणाम पूरे विश्व को भुगतना पड़ रहा है और ऐसे में विकसित और अमीर देशों की जिम्मेदारी है की इसकी भरपाई भी वह स्वयं करें (शर्मा, 2022)। उन्होंने सभी देशों से कार्बन उत्सर्जन कम करने की और इस ग्रह को बचाने की अपील की। लिसिप्रिया 400 से अधिक संस्थानों, विद्यालयों व कॉलेजों में जलवायु परिवर्तन पर अपनी बात रख चुकी हैं। लोग लिसिप्रिया को भारत की ग्रेटा कहते हैं, किंतु लिसिप्रिया को यह तुलना पसंद नहीं। वह खुद को दूसरी ग्रेटा नहीं बल्कि पहली लिसिप्रिया सुनना पसंद करती हैं (दत्ता, 2022)।

छोटी सी उम्र में लिसिप्रिया और उनकी उम्र के अन्य जलवायु कार्यकर्ताओं की अलग सोच और दूरदर्शिता लिसिप्रिया के इस कथन से समझा जा सकता है जो उन्होंने बिजनेस इनसाइडर को दिए गए एक साक्षात्कार में कहा – "तीन नीतियां हैं जो मैं चाहती हूं कि सरकार पेश करे। यदि भारत में जलवायु कानून बन जाए, तो हम शून्य कार्बन उत्सर्जन प्राप्त कर सकते हैं और अन्य ग्रीनहाउस गैसों को नियंत्रित कर सकते हैं। दूसरा, स्कूली पाठ्यक्रम में जलवायु परिवर्तन को एक विषय के रूप में अनिवार्य रूप से शामिल करना। तीसरा, हाई स्कूल के छात्रों के लिए न्यूनतम 100 वृक्षारोपण अनिवार्य किया जाना चाहिए, स्नातक के लिए 500 और विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए 1,000 – उनकी अंतिम परीक्षा पास करने के लिए।"

लिसिप्रिया कंगुजम को अपने मुखर व्यवहार के लिए आलोचनाओं का भी सामना करना पड़ा किंतु उन्होंने हार नहीं मानी। 8 मार्च 2020 को उन्हें अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर भारत सरकार के तरफ से सम्मानित करने के लिए आमंत्रित किया गया, जिसको लिसिप्रिया ने ट्विटर के माध्यम से ठुकरा दिया। लिसिप्रिया ने ट्वीट किया, "प्रिय नरेंद्र मोदी जी, अगर आप मेरी आवाज नहीं सुनेंगे तो कृपया मुझे सेलिब्रेट मत कीजिए। अपनी पहल 'शी इंस्पायर अस' के तहत मुझे कई प्रेरणादायी महिलाओं में शामिल करने के लिए शुक्रिया। कई बार सोचने के बाद मैंने यह सम्मान ठुकराने का फैसला किया है। जय हिंद!" वह यहीं नहीं रुकी और उन्होंने इसके बाद कई ट्वीट करते हुए यह लिखा की वह किसी के खिलाफ या साथ नहीं हैं, अतः उन्हें नेताओं के समर्थन या सराहना की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने साफ किया की वो बस इतना चाहती हैं की जो सांसद उनको सराह रहे हैं वो बस संसद में जलवायु परिवर्तन पर बहस करें और जलवायु कानून लाएं। लिसिप्रिया के इस कड़े रुख पर कुछ लोगों ने उसकी सराहना की तो कुछ ने तंज कसते हुए यह भी कहा की उसे बहकाया जा रहा है (बीबीसी न्यूज हिंदी, 2020)। किंतु लिसिप्रिया की तबसे अब तक बढ़ती लोकप्रियता और जलवायु परिवर्तन के लिए लगातार किए जा रहे कार्यों ने यह साबित किया है की वह भारत और विश्व के युवाओं का जलवायु कार्रवाई में नेतृत्व करने के लिए तैयार है।

रिद्धिमा पांडेय (आयु – 15 वर्ष)

रिद्धिमा पांडेय उत्तराखंड राज्य के पवित्र शहर हरिद्वार की एक 15 वर्षीय स्कूली छात्रा हैं। 10 वर्ष की उम्र से ही रिद्धिमा जलवायु कार्रवाई में सक्रिय हैं। रिद्धिमा ने 2013 में पहली बार प्रकृति का विकराल रूप तब देखा जब उनके राज्य उत्तराखंड में बादल फटने की गंभीर आपदा हुई। उनकी उम्र उस समय सिर्फ 6 वर्ष थी, पर इस घटना ने उनके हृदय पर गहरी छाप छोड़ी। अलजजीरा को दिए गए एक साक्षात्कार में रिद्धिमा ने कहा, "बच्चे रो रहे थे। उनके परिजन, उनके घर, टूटे हुए पेड़; सब कुछ काफी हद तक नष्ट हो गया था। मुझे बुरे सपने आने लगे कि हर जगह पानी है, मुझे तैरना नहीं आता, अचानक आई बाढ़ से मेरी मौत हो गई है, या मेरे माता–पिता खो गए हैं।" उस आपदा का रिद्धिमा पर ऐसा असर हुआ की उन्होंने प्रकृति बचाने की लड़ाई में उतरने की ठान ली (अलजजीरा, 2022)। 2013 की तबाही में उत्तराखंड में 5,000 से अधिक लोगों को मौत हुई, जो विशेषज्ञों का मानना है कि लगातार बारिश, खराब योजना और निर्माण, अवैध रेत खनन और जल–विद्युत परियोजनाओं का मिला जुला प्रभाव था। रिद्धिमा की मां ने उन्हें इस आपदा का कारण बताया और यह पहली बार था जब रिद्धिमा ने जलवायु परिवर्तन का नाम सुना। उन्हें यह निष्कर्ष निकालने में देर नहीं लगी कि आश्वासनों और वादों के बावजूद सरकार पर्याप्त काम नहीं कर रही है। 2017 में रिद्धिमा ने दो वकीलों की सहायता से बच्चों के सुरक्षित और स्वच्छ वातावरण के अधिकार का हनन करने के लिए भारत सरकार के खिलाफ याचिका दायर कर दी (यादव, 2021)। फरवरी 2021 में सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले की सुनवाई करते हुए भारत सरकार से जवाब मांगा की किसी भी नई परियोजना को मंजूरी देने से पहले पर्यावरण संरक्षण का किस प्रकार से ध्यान रखा जा रहा है। इस मामले की सुनवाई अभी भी जारी है।

साल 2020 में बीबीसी की दुनिया की 100 सबसे प्रभावशाली महिलाओं की सूची में रिद्धिमा

का भी नाम था। 2021 में पोप फ्रांसिस ने रिद्धिमा को वेटिकन सिटी मिलने के लिए बुलाया। इन दोनों बड़े सम्मानों ने उन्हें जलवायु के क्षेत्र में और बेहतर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया। रिद्धिमा जलवायु परिवर्तन रोकथाम के लिए जमीनी स्तर पर काम करने वाले बहुत कम लोगों में से हैं। रिद्धिमा प्रतिदिन स्कूल जाने के अलावा गंगा सफाई अभियान में हिस्सा लेती हैं, गंगा को तबाह करने वाले अवैध रेत खनन के खिलाफ भूख हड़ताल में सम्मिलित होती हैं, जलवायु सम्मेलनों में भाषण देती हैं, वृक्षारोपण अभियान चलाती हैं, बढ़ते प्रदूषण पर रोक लगाने की मांगों के साथ विरोध प्रदर्शन करती हैं, और स्वयं द्वारा दायर की गई याचिका की सुनवाई के लिए तमाम पत्र भी लिखती हैं (शर्मा, 2021)। भारत के सभी युवाओं के लिए रिद्धिमा एक मिसाल हैं।

गर्विता गुलाटी (आयु – 22 वर्ष)

गर्विता गुलाटी को 'भारत की जल कन्या' के नाम से भी जाना जाता है (सिंह, 2021)। बंगलुरू की 22 वर्षीय गर्विता ने 'जल ही जीवन है' जैसे नारे को अपने जीवन में उतारा है। अपनी पहल "व्हाई वेस्ट?" के माध्यम से वह लोगों को संवेदनशील बनाती हैं और चाहती हैं कि लोग यह समझें कि कैसे बस एक गिलास पानी की बचत करने से भी वास्तव में बहुत बड़ा फर्क पड़ता है। अपने शहर बेंगलुरु में एक बार पानी की कमी को पास से महसूस करने के बाद गर्विता को लगा कि उसे इस बारे में कुछ करना चाहिए। उस समय को याद करते हुए एक साक्षात्कार में गर्विता कहती हैं, "मुझे लगा कि अगर आज मेरे पास पानी नहीं है और मैं इसके बारे में कुछ नहीं करती हूं तो कई और वर्षों तक परिदृश्य ऐसा ही रहेगा और इसलिए मैं कुछ अलग करना चाहती थी" (बीबीसी, 2020)। और यहीं से 'व्हाई वेस्ट?' की शुरुआत हुई। गर्विता का पहला ध्यान रेस्टोरेंट व अन्य जलपान गृहों पर गया जहां उसे पानी बचाने की सबसे अधिक संभावना दिखी। उन्होंने सैकड़ों भोजनालयों में बरबाद होते जल का सही तरीके से इस्तेमाल करना वहां के लोगों को सिखाया है। गर्विता कहती हैं, "हम जिस मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करते हैं, वह रेस्तरां में गिलास में पानी की बच रही मात्रा है। हम बर्बादी को कम करने के लिए विविध तकनीकों और विधियों का प्रयोग करते हैं" (गुलाटी, 2020)। इसके अलावा वो लोगों को जागरूक करने का भी काम करती हैं। विभिन्न कलाकृतियों व अन्य मॉडलों के सहायता से वह लोगों को व्यर्थ हो रहे जल की कीमत को समझाने की कोशिश करती हैं। गर्विता लोगों को पानी बचाने के विभिन्न तरीके सिखाती है, जिसको हम अपने दैनिक जल प्रयोग में शामिल करके अच्छी खासी मात्रा में पानी बचा सकते हैं। उनमें से कुछ तरीके हैं – नहाने के लिए शॉवर की जगह बाल्टी का प्रयोग करना, पानी पीने हेतु गिलास को आधा भरना, मुंह धुलते समय पानी की टोटी को बेवजह बहने ना देना, आदि। गर्विता ने धीरे–धीरे गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) और विद्यालयों को भी पानी बचाने की अपनी मुहिम में अपने साथ जोड़ा।

गर्विता गुलाटी 2018 में 'ग्लोबल चेंजमेकर' जीतने वाले 42 देशों के 60 अन्य लोगों में से एकमात्र भारतीय बनीं। गर्विता संयुक्त राष्ट्र द्वारा चुने गए 17 युवा जलवायु सेनानियों में भी शामिल रहीं, जिन्हें संयुक्त राष्ट्र के जलवायु अभियान 'वी द चेंज' का हिस्सा बनाया गया। नवीन विचारों के लिए उम्र कोई बाधा नहीं हो सकती, गर्विता ने यह साबित किया है।

सौम्य रंजन बिस्वाल (आयु – 25 वर्ष)

ओडिशा के रहने वाले सौम्य रंजन बिस्वाल वन्य जीव संरक्षण और समुद्री कछुओं के संरक्षण संबंधी गतिविधियों में पिछले कई वर्षों से सक्रिय हैं। बिस्वाल ने बहुत कम उम्र में युवा स्वयंसेवकों का नेतृत्व करते हुए उनके साथ अब तक 250 से अधिक समुद्री तटों पर सफाई अभियान का सफल आयोजन किया है। इसके अलावा उन्होंने कई वनों में वन विभाग और स्थानीय लोगों के साथ मिलकर वन्य जीवों के संरक्षण पर काम किया है (सिंह, 2021)। सौम्य रंजन ने ऑलिव रिडली कछुओं के बारे में अच्छी खासी जानकारी इकट्ठा कर के उनको बचाने का बीड़ा भी उठाया है। ओडिशा का तट दुनिया में ऑलिव रिडली कछुओं के लिए दुनिया का सबसे बड़ा सामूहिक घोंसला बनाने का स्थान है। सौम्य ने 2014 में ओडिशा पर्यावरण संरक्षण अभियान (ओपीएसए) की शुरुआत की, जो की एक स्वैच्छिक संगठन है जिसका मुख्य लक्ष्य है क्षेत्रीय महत्व के संरक्षण संबंधी मुद्दों पर काम करना। ओपीएसए के सदस्यों ने यह पाया की ऑलिव रिडली कछुओं के घोंसला बनाने वाले जगहों पर प्लास्टिक और अन्य कचड़े की भरमार है, जिससे की न सिर्फ उन कछुओं के जनसंख्या में बुरा असर पड़ सकता है बल्कि समुद्र की आहार श्रृंखला को भी खराब कर सकता है जिसका बहुत बड़ा हिस्सा ये कछुए भी हैं। इन कछुओं को घोंसले बनाने के लिए एक स्वच्छ वातावरण की आवश्यकता होती है, और समुद्र तटों पर मछली पकड़ने के जाल और अन्य कचरे की उपस्थिति उन्हें कई तरह से नुकसान पहुंचाती है। इन्हीं कछुओं और अन्य जीवों को बचाने, आहार श्रृंखला को सामान्य रखने व पर्यावरण को स्वच्छ व प्रदूषण मुक्त रखने का कार्य सौम्य रंजन व ओपीएसए पिछले 8 वर्ष से कर रहे हैं (मिरर नाऊ न्यूज, 2022)।

सौम्य रंजन को वर्ष 2022 में ही टाइम्स नाऊ के द्वारा 'अमेजिंग इंडियन' के सम्मान से नवाजा गया। ये सम्मान साधारण भारतीयों के असाधारण कार्य के लिए दिया जाता है। सौम्य रंजन 2021 में संयुक्त राष्ट्र के 17 युवा जलवायु सेनानियों की फेहरिस्त का भी हिस्सा हैं। इसके अलावा सौम्य रंजन बिस्वाल को संयुक्त राष्ट्र ने दुनिया भर के 6 युवा नायकों की पहली सूची में भी जगह दी।

अर्चना सोरेंग (आयु – 26 वर्ष)

युवा पर्यावरणविदों की इस सूची में अर्चना सोरेंग एक खास स्थान रखती हैं। अर्चना सोरेंग स्वयं ओडिशा के खड़िया जनजाति से आती हैं। खड़िया एक ऐसी जनजाति है जिसके लोग अपनी आजीविका और अपने जीवन को चलाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित हैं। जलवायु परिवर्तन ऐसे समुदायों को सीधे तौर पर प्रभावित करता है। ऐसे में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज में शोध करने का मौका मिलने पर अर्चना ने 'वन अधिकार और सरकारी परियोजनाएं' विषय पर शोध करने का फैसला किया। उन्होंने जनजातीय समुदायों के पारंपरिक ज्ञान और सांस्कृतिक प्रथाओं को इकट्ठा करने, संरक्षित करने और बढ़ावा देने का काम करने का बीड़ा उठाया और इस क्रम में बहुत ही कम समय में इतनी ख्याति प्राप्त कर ली कि 2020 में संयुक्त राष्ट्र महासचिव ने अपने जलवायु परिवर्तन के युवा सलाहकार समूह में अर्चना को भी शामिल किया। इस समूह में शामिल होने वाली अर्चना अकेली भारतीय हैं। संयुक्त राष्ट्र को संबोधित एक भाषण में अर्चना ने कहा, "हमारे लिए, युवा लोगों के लिए, पहचान को गले लगाना,

हमारे पारंपरिक ज्ञान और इसे संरक्षित करने के लिए प्रथाओं को जानना, इसकी रक्षा करना और जलवायु निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में स्वदेशी लोगों और स्थानीय समुदायों की भागीदारी की वकालत करना बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि हम जो लोग इसमें (जलवायु कार्रवाई में) सबसे अधिक योगदान दे रहे हैं, फिर भी, हम वही हैं जो इससे (जलवायु परिवर्तन से) सबसे अधिक प्रभावित हैं" (संयुक्त राष्ट्र)। अर्चना के ये शब्द सभी भारतीय युवाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बनने का काम कर सकते हैं। अर्चना ने इतनी कम उम्र में अपने अनुभवों और विवेक के दम पर इतनी समझ विकसित की है और ऐसे विषय पर काम किया है जो कि जलवायु न्याय में सबसे अहम है। वो समुदाय जो प्रकृति पर निर्भर हैं, और जिन्होंने प्रकृति को बचाने में सबसे अधिक और इसे नुकसान पहुंचाने में सबसे कम योगदान दिया है, वो जलवायु परिवर्तन से सबसे अधिक पीड़ित है। अर्चना ऐसे ही समुदायों को जलवायु परिवर्तन के दंश से बचाने की लड़ाई लड़ रही हैं (माथुर, 2021)। बड़े शहरों के बंद कमरों में होने वाली बैठकों का फायदा उन लोगों तक कैसे पहुंचे, इस पर विचार करने की गुहार अर्चना विश्व के नेताओं से लगाती हैं। अर्चना इस मुद्दे पर युवाओं को जागृत करने का प्रयास भी करती हैं (सिंह, 2021)।

दिशा रवि (24 वर्ष) व अन्य

उपरोक्त युवा जलवायु कार्यकर्ताओं के अलावा ऐसे कई भारतीय युवा हैं जो आज जलवायु परिवर्तन की समस्या पर मुखर हो रहे हैं। दिशा रवि उनमें से एक हैं। बेंगलुरु की दिशा रवि ग्रेटा थनबर्ग के संगठन 'फ्राइडे फॉर फ्यूचर' के भारतीय प्रसार की संस्थापक हैं। दिशा देश भर में जलवायु जागरूकता के अभियान चलाती हैं, प्रकृति को नुकसान पहुंचाने वाली गतिविधियों के विरोध में हो रहे प्रदर्शनों में हिस्सा लेती हैं और जलवायु न्याय पर अपनी आवाज मुखर करने के लिए युवाओं को प्रेरित करती हैं (पीटरसन, 2021)। गुवाहाटी के सिद्धार्थ शर्मा एक और युवा जलवायु नायक हैं जो अपनी पहल 'ग्लोबल शेपर्स गुवाहाटी हब' की सहायता से अब तक 10,000 से अधिक बाढ़ पीड़ितों के लिए राहत और पुनर्वास कार्य कर चुके हैं (पलीचा, 2021)। सिद्धार्थ भी अपने इन कार्यों के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा सम्मानित हो चुके हैं। शिवानी गोयल एफएफएफ की एक 22 वर्षीय सदस्य और दिशा रवि की साथी हैं जिन्होंने जलवायु न्याय को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है। शिवानी ने कई ट्विटर क्रांतियों का आयोजन किया है जिसके द्वारा वो जलवायु परिवर्तन संबंधित घटनाओं और मुद्दों से दुनिया को अवगत कराने और सजग करने का काम करती हैं (चक्रवर्ती, 2020)। भारत के इन युवा जलवायु कार्यकर्ताओं की सूची बहुत लंबी है। भारत में इन युवाओं का जलवायु परिवर्तन पर इस तरह सक्रिय होना एक शुभ संकेत है कि भारतीय युवा यह जंग लड़ने के लिए तैयार है, किंतु साथ ही साथ यह इस बात का भी परिचायक है कि जलवायु परिवर्तन की समस्या अब इतनी बढ़ चुकी है कि युवा अपना भविष्य बचाने के लिए स्वयं आगे आने को मजबूर हो गए हैं (ललवानी और जोहरी, 2021)।

समापन अवलोकन

भारत के जनसंख्या की औसत उम्र लगभग 26 वर्ष है और भारत की लगभग 66% जनसंख्या की उम्र 35 वर्ष से कम है (आईएलओ)। जाहिर है कि दुनिया के किसी भी देश की तुलना में भारत में नौजवानों की संख्या सबसे अधिक है। इसका तात्पर्य यह है कि भारत में सबसे अधिक आबादी उन लोगों की है जिन्होंने पर्यावरण को दूषित करने में सबसे कम योगदान दिया

है परंतु जलवायु परिवर्तन की समस्या का सबसे अधिक बोझ उन्हें ही अपने कंधों पर उठाना है। माना जाता है कि किसी देश में युवाओं की आबादी अधिक होना उस देश के लिए एक वरदान है। अधिक युवा आबादी के होने का सीधा मतलब है मजबूत मानव संसाधन का होना। कितने ही देश अपने मानव संसाधन विकास की नीतियों में युवा सशक्तिकरण को भी सम्मिलित करते हैं। जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में भी युवा सिर्फ एक पीड़ित नहीं, बल्कि जलवायु कार्रवाई के मुख्य कार्यवाहक भी हैं। युवाओं के पास नवीन तरीकों से समस्याओं से लड़ सकने की जो क्षमता है वो उन्हें जलवायु कार्रवाई का सबसे अहम हिस्सा बनाती है। शिक्षा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और कला के माध्यम से दुनिया भर के युवा जलवायु कार्रवाई की गति को बढ़ावा देने का काम कर रहे हैं। भारतीय युवाओं का भी इस लड़ाई में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेना भारत के लिए गर्व की बात है। लिसिप्रिया और रिद्धिमा जैसे कितने ही भारतीय युवाओं ने जलवायु परिवर्तन पर अपने अपने तरीके से शानदार काम कर न सिर्फ भारत का नाम रोशन किया है, बल्कि जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध आवश्यक कार्रवाई को थोड़ी और गति और सही दिशा प्रदान करने का काम किया है। ऐसे में यह प्रश्न भी हर भारतीय के मन में उठना आवश्यक हो जाता है की क्या वह सभी युवा जो जलवायु परिवर्तन कार्रवाई में सक्रिय हैं, वह समर्थन या सहयोग प्राप्त कर पा रहे हैं जो उन्हें मिलना चाहिए? जाहिर है कि अर्चना सोरेंग को टाटा इंस्टीट्यूट जैसे प्रतिष्ठित संस्थान से शोध करने के बाद जलवायु कार्यकर्ता बन जाने पर कोई आर्थिक या अन्य लाभ नहीं हुआ होगा। ना ही ऑलिव रिडली कछुओं के संरक्षण और पर्यावरण बचाने के कार्यों को अपना जीवन बना लेने वाले सौम्य रंजन बिस्वाल को इस काम से कोई व्यक्तिगत फायदा होगा। इसके बावजूद ये युवा अपना, अपने साथियों का और तमाम पृथ्वीवासियों का भविष्य सुगम बनाने के लिए अपने छोटे–बड़े योगदान दिए जा रहे हैं। लेकिन इन युवक युवतियों के जीवन के बारे में जानने पर पता चलता है कि उनकी ये राह आसान नहीं रही। इनका काम भले ही निःस्वार्थ हो, परंतु उसके बाद भी इन्हें लोगों का, परिवार का, प्रशासन का और सरकार का सहयोग पाने के लिए बहुत मशक्कत उठानी पड़ी है (मिश्र, 2022)। इसके बावजूद आज यह बात पूर्ण विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता की जिस सहयोग और समर्थन के ये सभी युवा पर्यावरणविद योग्य हैं वो उन्हें मिला है। जलवायु परिवर्तन के लिए उठने वाली युवा आवाजों को आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान तो मिल रही है, पर उनकी मांगों को अभी भी गंभीरता से नहीं लिया गया है। शायद इसीलिए ब्रसेल्स में ग्रेटा थनबर्ग को यह कहना पड़ा कि, "हम दुनिया के नेताओं से भीख मांगने नहीं आए हैं. आपने हमें पहले भी नजरअंदाज किया है और आगे भी करेंगे. अब हमारे पास वक्त नहीं. हम यहां आपको यह बताने आए हैं कि पर्यावरण खतरे में है" (ऑर्टिज, 2020)।

संयुक्त राष्ट्र के कार्यक्रम में सबसे कम उम्र के वक्ताओं में से एक लिसिप्रिया कंगुजम को मिस्र जाकर सीओपी–27 में भाग लेने के लिए दिल्ली के सड़कों पर चाय–कॉफी का स्टॉल लगाना पड़ा (कंगुजम, ट्विटर)। हालांकि यह लिसिप्रिया की खुद की इच्छा थी क्योंकि उनके अनुसार कोई भी कार्य छोटा नहीं होता (शर्मा, 2022)। किंतु उसकी सफलता की जब देश भर में प्रशंसा की जाती है, तो यह बात कहीं दब कर रह जाती है की इस सफलता के पीछे उन्हें क्या क्या झेलना पड़ा। मिस्र भेजे जाने के लिए लिसिप्रिया ने सरकार से कोई अपेक्षा न भी की हो, तो भी वह इतने सहयोग की हकदार तो बिल्कुल थी की उसे चाय का स्टॉल लगाने या अन्य लोगों पर हवाई–जहाज का टिकट लेने के लिए आश्रित होने की आवश्यकता न पड़े। उससे पहले जब 2020 में लिसिप्रिया ने भारत सरकार से मिलने वाले सम्मान को ठुकराने का निर्णय लिया तो

उन्हें तमाम तरह की आलोचनाओं का सामना करना पड़ा, किंतु उन्हीं लोगों ने उन कारणों पर ध्यान नहीं दिया जिस पर सबका ध्यान आकर्षित करने हेतु लिसिप्रिया ने यह कदम उठाया। हो सकता है की लिसिप्रिया की जलवायु कानून व उससे संबंधित अन्य मांगें सरकारों और नीतिकारों को उतनी ठोस न लगती हो, किंतु विश्व पटल पर जिस तरह से लिसिप्रिया ने अपनी उन मांगों का बचाव करते हुए सराहना प्राप्त की है, उनकी मांगों पर विचार अवश्य होना चाहिए। दिशा रवि भी किसान आंदोलन के दौरान तब बहुत चर्चित हुई जब उन पर ग्रेटा थनबर्ग और अन्य विदेशी चर्चित व्यक्तियों के साथ किसान कानूनों संबंधी ट्विटर ट्रेंड का टूलकिट साझा करने का आरोप लगाया गया। दिशा की न सिर्फ गिरफ्तारी हुई बल्कि पूरे देश में उन पर यह आरोप भी लगा कि उन्होंने भारत की छवि धूमिल की है। किंतु बाद में ज्यादातर लोगों को यह समझ आ गया कि टूलकिट व ट्विटर ट्रेंड युवाओं के लिए वो साधन हैं जिनका प्रयोग वह आवश्यक मुद्दों पर अधिक से अधिक सहयोग व समर्थन जुटाने के लिए करते हैं (पीटरसन, 2021)। किसान कानूनों का वापस लिया जाना इस बात का गवाह भी है कि कहीं न कहीं दिशा व अन्य युवाओं का यह प्रयास सफल रहा। किंतु दिशा रवि के लिए गिरफ्तार होना और आलोचनाओं का सामना करना शायद जीवन के बुरे अनुभवों में से एक रहेगा। यह युवा जिस समझ और तेजी के साथ आगे बढ़े रहे हैं, शायद अन्य लोग नहीं बढ़ पा रहे। यह प्रयास होना बहुत ही आवश्यक है की युवा पर्यावरणविदों को अपने कार्यों में रूकावटें कम और समर्थन अधिक मिले। इसमें न सिर्फ भारत व विश्व का सीधा लाभ छुपा है बल्कि इससे देश–दुनिया के तमाम युवाओं को पर्यावरण संरक्षण के लिए आगे आने की प्रेरणा भी मिलेगी। यही युवा भविष्य के जिम्मेदार नागरिक बनेंगे और अभी से सीखा हुआ पर्यावरण–हितैषी व्यवहार जीवन भर अमल में लाएंगे। यह सब तभी संभव है जब युवा जलवायु कार्यकर्ताओं को समाज और सरकार का साथ मिले। उनकी परेशानियां बढ़ाने की बजाय उनके साथ मिलकर काम करने का प्रयास किया जाए। जलवायु परिवर्तन की इस लड़ाई में यह प्रयास किए जाने आवश्यक हैं की वह युवा जो अपने आरामदायक जीवन से आगे बढ़ कर ऐसे जटिल मुद्दों पर काम कर रहे हैं, उनके विचारों, सलाहों और कार्यों का सही सम्मान अवश्य हो और जलवायु संबंधी सरकारी नीतियां बनाते समय उनके सलाहों पर भी गौर किया जाए। जैसा कि लिसिप्रिया सीओपी–27 के अपने भाषण में कहती हैं – "यह हमारे ग्रह के भविष्य के लिए एक लड़ाई है – यानि हमारा भविष्य" (शर्मा, 2021)। भविष्य युवाओं का है, और उन्हें अपना भविष्य स्वयं चुनने और बदलने का अधिकार है। साथ ही जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में उनकी सक्रियता की आवश्यकता इस पूरी दुनिया को है।

निष्कर्ष

आज के दौर में 'जलवायु परिवर्तन' नामक समस्या से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है। जलवायु परिवर्तन आज के समय का सबसे चिंताजनक विषय बनकर उभरा है। आज से चार पांच दशक पहले तक जलवायु परिवर्तन पर गौर कर पाना कठिन था, क्योंकि तब हमारे पास जलवायु परिवर्तन को समझ पाने के लिए कोई ठोस सूचक या उपकरण मौजूद नहीं थे। ऐसे में विशेषज्ञों व पर्यावरणविदों के लिए लोगों को जलवायु परिवर्तन जैसी समस्या समझा पाना मुश्किल था। किंतु अब ऐसा नहीं है। प्रतिवर्ष बढ़ते तापमान, असमय वर्षा होने या न होने के कारण बाढ़ और सूखे की बढ़ती घटनाएं, दुनिया भर में होते हीटवेव व तमाम अन्य सूचकों ने जलवायु परिवर्तन को एक प्रत्यक्ष समस्या बना दी है, जिसे न सिर्फ विशेषज्ञ, बल्कि आम लोग भी देख व महसूस

कर पा रहे हैं। स्मार्टफोन और सोशल मीडिया के बढ़ते इस्तेमाल ने अन्य जानकारियों की तरह ही जलवायु परिवर्तन के बारे में भी दुनिया को पूरी तरह अवगत कराया है। ऐसे में भारतीय युवा भी इस समस्या से अधिक दिन तक अनभिज्ञ नहीं रह सकते थे। युवाओं के लिए यह समस्या कहीं अधिक बड़ी है क्योंकि उनका पूरा भविष्य जलवायु परिवर्तन से प्रभावित रहने वाला है। उन्हें मालूम है की पर्यावरण कि बिगड़ चुकी स्थिति को सुधार पाना जितना मुश्किल है, उतना ही मुश्किल है उस स्थिति को और अधिक बिगड़ने से रोकना। कम उम्र के युवक–युवतियां जिन्होंने जलवायु परिवर्तन में कोई योगदान नहीं दिया, वो इस समस्या से सबसे ज्यादा पीड़ित रहने वाले हैं, क्योंकि पिछली पीढ़ियों द्वारा किए गए ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का भार यह पृथ्वी कई वर्षों तक सहती रहेगी, और युवा पीढ़ी को इन्हीं वर्षों में अपना जीवन जीना है। पिछले उत्सर्जन को अब बदला तो नहीं जा सकता, लेकिन मौजूदा उत्सर्जन को कम अवश्य किया जा सकता है। जलवायु परिवर्तन के डरवाने आंकड़े और अनुभव मौजूद होने के बाद भी पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाली गतिविधियों को रोके जाने की आवश्यकता है। सरकारें आर्थिक विकास की अंधी दौड़ में इन बातों पर ध्यान भले न दे सकें, लेकिन युवा अवश्य दे रहे हैं। और इन्हीं गतिविधियों को रोकने, शासनों से गुहार लगाने, उनका विरोध करने, दुनिया को जलवायु के महत्व को समझाने और लोगों को पर्यावरण हितैषी व्यवहार सिखाने के लिए आज के युवा उठ खड़े हुए हैं (ललवानी और जोहरी, 2021)। उनकी कम आयु उनके लिए बाधा बनने की जगह उनका ताकत बन चुकी है।

इन युवाओं को सरकार और लोगों के समर्थन की आवश्यकता है। इस ग्रह को बचाने के लिए उनकी जिजीविषा सभी के लिए प्रेरणा होनी चाहिए, पर इसके बाद भी उन्हें तमाम तरह की समस्याओं से जूझना पड़ता है। आर्थिक संकट, ऑनलाइन ट्रोलिंग, नैतिक सहयोग की कमी, सरकारों द्वारा नजरअंदाज किया जाना, परिवारजन और मित्रों द्वारा समर्थन न मिल पाने जैसी तमाम समस्याएं उनके इस बड़े कार्य में रुकावट पैदा करते हैं। देश में जलवायु शिक्षा की कमी इसका एक बड़ा कारण है। भारत में कहीं न कहीं पर्यावरण कार्यकर्ताओं, और खासकर युवा पर्यावरण कार्यकर्ताओं, को वो सम्मान नहीं मिल पाता जिसके वो अधिकारी हैं। इसके बाद भी हर दिन तमाम युवा अपने घरों में, अपने विद्यालयों में, अपने गांव में, अपने कस्बे में, अपने शहर में और देश भर में जलवायु परिवर्तन को लेकर सजगता फैलाने व इसके रोकथाम के लिए आवश्यक कदम उठाने का काम कर रहे हैं। युवाओं के इस देश में युवा अपनी जंग तो स्वयं लड़ ही सकता है, साथ ही साथ वह वो जंग लड़ने को भी तैयार है, जो उसने न शुरू की ना उसको बढ़ाने में कोई योगदान दिया। ऐसे में यदि देश के लोगों से और सरकार से कोई सबसे अधिक समर्थन और सम्मान का अधिकारी है, तो वो यह युवा जलवायु नायक–नायिकाएं ही हैं।

संदर्भ

Mueller, M. P. and Tippins, D, J, (Eds.) (2015). EcoJustice, citizen science and youth activism: Situated tensions for science education. Cham, Switzerland: Springer.

Sharma, Yashraj. 2022, 'At COP27, a young climate activist from India demands historical dues*, NBC News, 11 November, https://www.nbcnews.com/news/world/ cop27-india-climate-change-rcna56714

Singh, Bhupinder. 2021, 'Meet 17 Promising Young Environmental Activists Selected For

UN India*s ^We The Change* Campaign*, India Times, 28 October, https://www.indiatimes.com/trending/environment/meet-17-young-indian-activists-selected-for-un-indias-we-the-change-campaign-552809.html

Mishra, Rashmi. 2022, 'Guilt, Anxiety and Hope: The Lives of Young Climate Activists in India*, Vice Media, 1 November, https://www.vice.com/en/article/3ad4z5/climate-change-activists-environment-ecoanxiety-india-genz

Johari, Aarefa and Vijayta Lalwani. 2021, 'Young climate activists in India are shaken – but proud they have rattled the powerful*, Scroll, 18 February, https://scroll-in/article/987173/young-climate-activists-in-india-are-shaken-but-proud-they-have-rattled-the-powerful

"In our LiFEtime" campaign launched by India at COP 27*, Prasar Bharti News Services PBNS, 15 November 2019, https://newsonair.com/2022/11/15/in-our-lifetime-campaign-launched-by-india-at-cop-27/

Fridays For Future. https://fridaysforfuture.org/

Adve, Nagraj. 2021, 'Coming of Age of India*s Youth Climate Movement*, The India Forum, 16 March, https://www.theindiaforum.in/article/coming-age-india-s-youth-climate-movement

'पर्यावरण संरक्षण के लिए दस युवा पर्यावर्विद सम्मानित', हिंदुस्तान, 15 जून 2020, https://www.livehindustan.com/uttarakhand/nainital/story-ten-young-environmentalists-honored-for-environmental-protection-3282954.html

Sharma, Yashraj. 2021, 'India*s Gen Z climate warriors: The young disruptors and innovators taking action now*, Al-Jazeera, 19 November, https://www.aljazeer.com/features/longform/2021/11/19/after-cop26-letdown-can-indias-gen-z-climate-warriors-prevail

'लिसिप्रिया कंगुजमरू पीएम मोदी का सम्मान ठुकराने वाली ये लड़की कौन है?', बीबीसी न्यूज हिंदी, 7 मार्च 2020, https://www.bbc.com/hindi/india-51783905

"Indian climate activist Licypriya Kangujam on why she took a stand*, BBC News, 6 February 2020, https://www.bbc.com/news/world-asia-india-51399721

यादव, माधुरी. 2021, शरिद्धिमा पांडेरू पर्यावरण के लड़ रही इस 13 साल की भारतीय Environmentalist से मिले हैं आप?', इंडिया टाइम्स हिंदी, 22 जून https://www.indiatimes.com/hindi/environment/meet-13-year-old-environment-activist-ridhima-pandey-from-uttarakhand-542858.html\utm_source=share-utm_medium=web_wh

"India*s Water Girl: Is The Crisis More Acute For Women*, She The People, 29 October 2021, https://www.shethepeople.tv/personal-stories/water-girl-garvita-gulhati/

"Archana Soreng: Our voice matters*, United Nations, 2020, https://www.un.org/en/climatechange/voices-of-change-archana-soreng

"Amazing Indians 2022: How Soumya Ranjan Biswal changed the fate of Olive Ridley turtles nesting sites in Odisha, one beach at a time*, Mirror Now Digital, 9 September

2022, https://www.google.com/amp/s/www.timesnownews.com/mirror-now/amazing-indians-2022-how-soumya-ranjan-biswal-changed-the-fate-of-olive-ridley-turtles-nesting-sites-in-odisha-one-beach-at-a-time-article-94101663/amp

Peterson, Hannah Ellis- 2021, 'Disha Ravi: the climate activist who became the face of India*s crackdown on dissent,' The Guardian, 17 February, https://www.google.com/amp/s/amp.theguardian.com/world/2021/feb/18/disha-ravi-the-climate-activist-who-became-the-face-of-indias-crackdown-on-dissent

Nayar, Leesha- 2022, 'Fridays For Future organises Bengaluru Climate Strike held at Freedom Park, ' The Hindu, 23 September, https://www.thehindu.com/news/national/karnataka/fridays-for-future-organises-bengaluru-climate-strike-held-at-freedom-park/article65927486.ece

Mathur, Barkha. 2021, 'Meet Archana Soreng, A Tribal Climate Warrior From Odisha Who Aims To Bring The Indigenous Wisdom To Climate Actions,' NDTV, 14 November, https://swachhindia.ndtv.com/meet-archana-soreng-a-tribal-climate-warrior-from-odisha-who-aims-to-bring-the-indigenous-wisdom-to-climate-actions-64574/

The Economic Times. (2021). Indian Youth wants more participation for itself in action against climate change issues: British Council Report, https://m.economictimes.com/news/india/indian-youth-wants-more-participation-for-itself-in-action-against-climate-change-issues-british-council-report/articleshow/86688865-cms/

Liquin] Emily G. and Alison Gopnik. (2022). Children are more exploratory and learn more than adults in an approach-avoid task. Berkley, United States: Science Direct, https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S0010027721003632

Palicha, Dakshiani. (2021). "Inheritance of loss: The young are restless to conserve the world, want to be heard in global forums,' Down to Earth, 29 October, https://www.downtoearth.org.in/news/environment/inheritance-of-loss-the-young-are-restless-to-conserve-the-world-want-to-be-heard-in-global-forums-79898

Chakraborty, Moumita. (2020). '#DigitalStrike: The world takes the climate fight online,' E Times, 21 March, https://m.timesofindia.com/life-style/spotlight/ digitalstrike-the-world-takes-the-climate-fight-online/amp_articleshow/ 74730952.cms

Levermann, Anders. (2019). 'Individuals can*t solve the climate crisis. Governments need to step up,' The Guardian, 10 July, https://www.theguardian.com/commentisfree/2019/jul/10/individuals-climate-crisis-government-planet-priority

Jaipurkar, Anoop. (2021). 'India*s coal 'phase down* call was all about climate justice,' The Federal, 23 November, https://thefederal.com/cop26-impact/india-at-glasgow-cop26-coal-phase-down/

पवित्र गोस्वामी

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

भारत में परिधीय नगरों का विकास एवं उनका सामाजिक महत्त्व : भारत एवं फ्रांस के परिधीय नगरों के बीच तुलनात्मक अध्ययन

सार संक्षेप

भारत में पिछले दो दशकों से नगरीय जनसंख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हो रही है। इस जनसंख्यात्मक वृद्धि ने न केवल नगरों को प्रभावित किया है बल्कि सभी समाजों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। इस कारण यह घटना समसामयिक समाज में ज्वलंत मुद्दे के रूप में उभरी है बढ़ते नगरीकरण के कारण आने वाले परिवर्तनों ने विद्वानों के मध्य एक नयी बहस छेड़ दी है। चिंतन व समीक्षा के आधार पर समाज विज्ञानियों ने निम्न प्रकार की चिंताएं व्यक्त की हैं जैसे– गाँवों का भविष्य क्या होगा ? तेजी से नगरों के विस्तार की रफ्तार के साथ परिवर्तित होते गाँव एवं कस्बे कैसे सामंजस्य स्थापित करेंगे ? इस प्रकार नगरों में रूपांतरित होने वाले क्षेत्रों का भविष्य (जीवन शैली एवं संस्कृति) कैसा होगा ? भविष्य में नगरों में उत्पन्न होने वाली समस्याओं से नए उभरते संक्रमित नगरीय क्षेत्र कैसे बचेंगे ? इसी प्रकार की विभिन्न संभावनाओं को समझने का प्रयास अध्ययनकर्ता द्वारा विभिन्न अध्ययनों के आधार पर इस शोधपत्र में किया गया है। इस सम्पूर्ण विश्लेषण में फ्रांस में उत्पन्न हुए परिधीय नगरों पर हुए अध्ययनों की तुलना भारत के परिधीय नगरों के अध्ययनों से की गयी है । यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है।

सूचक शब्द : परिधीय नगर, जनसँख्या, जीवन शैली

भूमिका :

किसी भी समाज में मुख्य रूप से दो प्रकार के लोग ही निवास करते हैं– ग्रामीण एवं नगरीय। हमारे भारतीय समाज की लगभग दो तिहाई जनसंख्या ग्रामीण होने के कारण इसको कृषि आधारित देश कहा जाता है। लेकिन वैश्वीकरण के बाद नगरों की विशेषताओं सम्बन्धी मापदंडों में कालांतर में परिवर्तन होता रहा है इस प्रकार नगरों की परिभाषा के स्वरुप को स्थूल से लचीला बनाया गया है। नयी परिभाषाओं के कारण एक बड़ा क्षेत्र नगरों में सम्मलित हुआ है। इस कारण नगरीय जनसंख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। जैसे – नए प्रकार के नगरों जिन्हें 'जनगणना कस्बे' कहा जाता है इनकी संख्या में वृद्धि दर बहुत तीव्र है। ये स्थान मुख्य रूप से 'मध्य वर्ग के लिए' उपयुक्त होते हैं। यहाँ रहने –खाने से लेकर अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति सस्ती कीमतों पर आसानी से उपलब्ध हो जाती है। दूसरा, इन स्थानों को नगरों के सहायक के रूप में कुछ निर्माण कार्यों के लिए भी प्रयोग में लाया जाता है। परन्तु इतने गतिशील एवं निरंतर रूपांतरित होते स्थान अध्ययन की दृष्टि से अनदेखे रहे हैं और केवल जनगणना मात्र की प्रक्रिया के द्वारा ही इनको व्याख्यायित व अवलोकित किया गया है हालांकि कुछ अध्ययनों (सीमित) ने भिन्न प्रकार के मुद्दों की ओर ध्यान आकर्षित किया है लेकिन अभी इन क्षेत्रों के

सहायक आचार्य, इंस्टिट्यूट ऑफ ओरिएण्टल फिलोसॉफी, वृन्दावन, उत्तर प्रदेश।

विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए अधिक अध्ययनों की आवश्यकता है। साथ ही इन अध्ययनों के आधार पर ही इन योजनाओं के निर्माण की आवश्यकता भी है।

भारत की सामाजिक–स्थानिक संरचना

हमारा समाज मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित रहा है– ग्रामीण समाज एवं नगरीय समाज। नगरों का उद्भव हमें कुछ हजार वर्ष पूर्व से देखने को मिलता है, वहीं नगरों का वर्तमान स्वरुप हमें औद्योगीकरण के बाद से देखने को मिलता है। समाजशास्त्र में इन दोनों समाजों का अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र एवं नगरीय समाजशास्त्र दो अलग अलग शाखाओं के रूप में किया जाता है। लेकिन अभी कुछ समय से नए प्रकार के क्षेत्रों का उद्भव हुआ है जिस का अध्ययन विभिन्न विषयों में थोडा पहले से किया जा रहा है किन्तु समाजशास्त्र में इन क्षेत्रों पर चर्चा अभी तीन–चार दशकों से ही शुरू हुई है। इन क्षेत्रों को विभिन्न अध्ययनों में अलग अलग अध्ययनकर्ताओं द्वारा भिन्न भिन्न नाम दिए गए हैं जैसे– परिधीय नगर, किनारे के क्षेत्र, अर्ध नगर, उप नगर इत्यादि। शोधकर्ता ने इस लेख में इन क्षेत्रों को परिधीय नगर कहा है। परिधीय नगरों को एक विशिष्ट क्षेत्र में पूर्ण नगरीकरण की अवस्था के बाद की स्थिति कहा जा सकता है अर्थात जब नगरों का पूर्ण रूप से विकास हो जाता है उसके बाद धीरे धीरे परिधीय नगरों का जन्म होता है क्योंकि ऐसी दशा में नगरों का प्रसार उससे लगे क्षेत्रों में होने लगता है। परिधीय नगर मुख्य रूप से नगर एवं गाँव दोनों की विशेषताओं को सम्मलित किये क्षेत्र हैं। ये नगरों के संपूरक के रूप में कार्य करते हैं। इन क्षेत्रों का अध्ययन मानवशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों, नगर नियोजकों, भूगोलवेत्ताओं इत्यादि ने अपने अपने दृष्टिकोण से किया है। वहीं समाजशास्त्र में परिधीय नगरों का अध्ययन लम्बे समय तक अनदेखा रहा है। नगरीकरण की प्रक्रिया में दो प्रकार के बल– अभिकेन्द्रीय बल एवं अपकेन्द्रीय बल कार्य करते हैं। पहला, अभिकेन्द्रीय बल, उच्च कुशल श्रमिकों को शहरों की ओर आकर्षित करती है वही दूसरा बल, अपकेन्द्रीय, अन्य गतिविधियों जैसे निवास स्थान, कंपनियों इत्यादि को उन शहरों से दूर के क्षेत्रों की ओर ले जाता है जहाँ पर फिर परिधीय नगरीकरण की प्रक्रिया शुरू होती है (आशेर 1995, जुलिएन 2000)। ये क्षेत्र गतिशील एवं हमेशा परिवर्तन की ओर उन्मुख रहते हैं। ये क्षेत्र हमेशा निर्माणाधीन रहते हैं (ईआकुइंता एवं द्रेशेर 2000; गुरूरानी 2020)। इन क्षेत्रों के उद्भव के कई कारण हैं और ये कारण भौगोलिक, पर्यावरणीय एवं अन्य आधार पर असमान हैं। इन क्षेत्रों के उद्भव के पीछे एक प्रमुख कारण शहरों के अन्दर शहरीकरण की प्रक्रिया का उच्चतम स्तर पर पहुँचना है जिसके बाद इन केन्द्रीय या मुख्य शहरों में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है। इस स्थिति में शहर के लोग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शहर से लगे हुए या थोड़ा दूर के क्षेत्रों की ओर प्रवसन एवं निवास करना शुरू कर देते हैं, जिससे इन क्षेत्रों में तत्काल परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। रूमी एजाज 2019, ने अपने अध्ययन में पाया कि भारत में, ज्यादातर परिधीय नगरों का निर्माण महानगरों के आस पास चारों ओर हुआ है।

परिधीय नगर

परिधीय नगरीकरण वर्तमान समाज की एक मुख्य प्रघटना है जो समकालीन विद्वानों व शोधकर्ताओं के बीच चर्चा का विषय है। इसको तीन प्रकार से – एक अवधारणा के रूप में, एक

प्रक्रिया के रूप में एवं स्थान के रूप में प्रयुक्त किया जाता है (नरेन 2009)। सामान्य रूप से, परिधीय नगरीकरण एक प्रक्रिया है जिसमें बाहरी इलाके (नगरों से) भौतिक, आर्थिक एवं सामाजिक लक्षणों में नगरों के समान दिखाई देते हैं और कई बार बनावट के मामले में तो नगरों को भी पीछे छोड़ देते हैं (वेबस्टर 2002)। परिधीय नगर एक सार्वभौमिक प्रघटना है। यह नगरीकरण से आगे की एक अवस्था है। इसको किसी एक सामान्य परिभाषा द्वारा समझाना बहुत कठिन है क्योंकि विद्वानों ने अपने अपने अध्ययनों के आधार पर इसको भिन्न भिन्न रूप से परिभाषित किया है। थोमस 1990, का तो ऐसा मानना है कि ऐसे क्षेत्र नगरीय क्षेत्रों के उद्भव के साथ ही सह अस्तित्व में रहे हैं। भारतीय समाज में, इन क्षेत्रों के उद्भव के पीछे एक प्रमुख कारक है – पुराने शहर नियोजित रूप से विकसित नहीं थे इस कारण इनके उद्भव के बाद से ही कुछ समस्याएं उत्पन्न होना शुरू हो गयी जिसमे – असीमित जनसंख्या, निवास, गन्दगी, प्रदूषण, अपराध इत्यादि प्रमुख हैं। इस कारण अधिक जनसंख्या को कम करने एवं ऐसी समस्याओं से निजात की दृष्टि से शहर के किनारे के क्षेत्रों में नियोजित रूप से लोगों का विस्थापन शुरू हुआ चूँकि शहरों से सटे ये क्षेत्र ग्रामीण थे लेकिन नगरीकृत लोगों के आगमन से वहां नगरीकरण के कुछ लक्षणों का फैलाव हो गया। इस प्रकार इन क्षेत्रों में ग्रामीण एवं शहरी दोनों विशेषताओं का सम्मलित रूप सामने आया। इन क्षेत्रों की सीमा को निर्धारित करना संभव नहीं है। एक अन्य कारक भी है जो भारत के एवं दक्षिण एशिया के सन्दर्भ में देखा जा सकता है – वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के कारण पूरी दुनिया में प्रतिस्पर्धा को एक नयी गति मिली है चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो। ऐसे में अपने कुछ शहरों को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने के लिए भारत भी प्रयासरत है। इस कारण 'स्मार्ट शहरों' की होड़ सारी दुनिया में शुरू हो गयी है जिसके आधुनिक व वैश्विक होने के साथ ही जीवन अवसर सम्बन्धी कुछ मानक भी हैं। सस्किया ससेन ने ऐसे नगरों को 'वैश्विक नगर' कहा है। इस कारण परिधीय क्षेत्रों का महत्त्व बढ़ गया है। नगरों के विस्तार की यह दर विकासशील देशों में सर्वाधिक है। इस प्रकार के विकास के कारण लगभग 15 मिलियन लोग प्रत्येक वर्ष विस्थापित होते हैं (यू एन डीपी 2019)। जॉन वाल्त्जर (2014) ने अपने अध्ययन में परिधीय नगरों के कुछ सार्वभौमिक विशेषताओं पर विचार किया और कुछ सामान्य लक्षणों को बताया। उन्होंने सम्पूर्ण विश्व को दो भागों में विभाजित किया – वैश्विक उत्तर एवं वैश्विक दक्षिण। और दोनों के बीच कुछ मुख्य अंतर बताए। उन्होंने पाया कि वैश्विक उत्तर में जब नगरों में जनसंख्या बढ़ती है तब उसी अनुपात में गाँवों में जनसंख्या कम होती जाती है जबकि वैश्विक दक्षिण में जनसंख्या का बढ़ना एक प्राकृतिक घटना है अर्थात यहाँ गाँवों एवं शहरों दोनों की जनसंख्या लगातार बढ़ रही है यही कारण है कि वैश्विक दक्षिण में कुल जनसंख्या लगातार बढ़ रही है।

फ्रांस में परिधीय नगर

परिधीय नगर अंतर्युध काल (1918–1939) के समय में पेरिस व उसके आस पास अस्तित्व में आ गए थे, जब कामगार वर्गों ने बड़ी संख्या में पेरिस के केन्द्रीय उप नगरों, जिन्हें बन्लिकुई (banlieues) भी कहा जाता है, वहां पर जाकर गृह निर्माताओं से घर प्राप्त किये। चोम्बर्ट डे लोवे (1952) ने इन क्षेत्रों के लोग, उपादेयताओं एवं मूलभूत आर्थिक संरचना, का एक सीमित विशिष्ट क्षेत्र में किस प्रकार का वितरण है और ये कैसे इन क्षेत्रों को केन्द्रीय शहरों और उपनगरों से अलग करता है इस सभी को समझने में रूचि ली और पाया की ये स्थान मुख्य रूप से परिधीय

नगर हैं। जो 'डारमेट्री कस्बे' हैं जहाँ मुख्य रूप से गृह भू संपत्ति हैं एवं रहने के लिए कई मंजिला इमारतें बनी हैं। इन स्थानों पर प्रमुख रूप से 'मध्यम वर्ग' के लोग निवास कर रहे हैं जिनकी जीवन शैली शहरों से दूर होने के कारण दोनों रूप से, नकारात्मक व सकारात्मक, प्रभावित हुई है। शहरों और गावों के मध्य स्थित इन क्षेत्रों पर ध्यान 1962 में दिया गया। यह अवधारणा जो शहर के परिधीय क्षेत्रों को चिन्हित करती है उसकी कुछ विशेषताएं चिन्हित की गयी जो निम्न हैं – (1) जनसंख्या का एक बड़ा अनुपात कृषि क्षेत्र में ना रहता हो। (2) कार्य का परिवर्तन एवं (3) जनसंख्या में लगातार वृद्धि। आईएनएसइइ ने फ्रांस के परिवर्तन को समझने का प्रयास किया। इसके द्वारा 1950 में फ्रांस के नगरों और उपनगरों को नगरीय इकाईओं में बांटा गया जिसमें इन इकाईओं को कार्यों की संख्या के आधार पर साधारण इकाई एवं पोल में वर्गीकृत किया गया। इस वर्गीकरण का आधार – 5000 नौकरियों को रखा गया। यह 1962 तक प्रासंगिक रहा और इससे पहले की व्याख्याओं को, जो आकृति सम्बन्धी थी, इसने विस्थापित कर दिया था। इन स्थानों को "इंडस्ट्रियल एंड अर्बन सेटलमेंट जोन" कहा गया। यह व्याख्या मुख्य रूप से सामाजिक–आर्थिक कसौटी जैसे– कार्यस्थल से दूरी, सामान्य कृषक जनसंख्या का परिमाण, जनसंख्या वृद्धि दर, इत्यादि पर आधारित थी। लगभग तीन दशक बाद 1990 तक इस वर्गीकरण में फ्रांस के सभी क्षेत्रों की लगभग 96% आबादी शामिल हो गयी। इस व्याख्या/वर्गीकरण से गाँव एवं ग्रामीयता का अस्तित्व समाप्ति की ओर दिखाई दिया। इस कारण से 1996 में इस आबादी का पुर्नवर्गीकरण किया गया और ऐसे स्थानों को ZAUs - नगरीय क्षेत्र कहा गया ये क्षेत्र 1990 की जनगणना के आंकड़ों पर निर्धारित किये गए। इसमें भी नगर को इकाईओं में बांटा गया जिसमें एक नगरीय क्षेत्र सतत इकाईओं व परिधीय–नगरों को मिलाकर माना गया जिसमें बाद वाला (परिधीय नगर) उन नगर पालिकाओं से मिलकर बनता है जहाँ की 40% कामगार आबादी संबंधित नगर इकाईओं में या अन्य नगरपालिका से जो नगर इकाईओं के प्रभाव क्षेत्र से जुडी हो, में कार्यरत हो। इस संरचना को स्नोब्बाल प्रभाव के आधार पर बनाया गया। उदाहरणस्वरूप, एक नगरपालिका जहाँ 20% कार्यकारी आबादी नगर इकाई में काम करती हो और 25% आबादी उस नगरपालिका में जो परिधीय नगरीय किनारों में स्थित हैं, को परिधीय नगर कहा गया। इस प्रकार परिधीय नगर बहुध्रुवीय नगरपालिकाओं को सम्मलित कर लेते हैं अर्थात जिसमें ऐसे कस्बे भी सम्मलित हो जाते हैं जिनकी 40% आबादी इन दो प्रकार के संबंधित नगरीय क्षेत्रों में कार्यरत हैं। इस प्रकार के वर्गीकरण ने फ्रांसिसी नगरों को समझने की एक समझ विकसित की। इसके बाद 2002 में आईएनएसइइ ने इन क्षेत्रों/स्थानों का पुनः पुनर्वर्गीकरण किया और नए जोन ZAUER में विभाजन किया लेकिन साथ ही पुराना वर्गीकरण भी अस्तित्व में रहा। इसके बाद 2010 में आईएनएसइइ ने 2008 की जनसंख्या सांख्यिकी के आधार पर तीन भागों में विभाजित करते हुए इनको वरीयता क्रम में इस प्रकार रखा – बड़े नगरीय क्षेत्र (10000 व अधिक नौकरियां), मध्यम नगरीय क्षेत्र (5000–10000 नौकरियां), लघु नगरीय क्षेत्र (1500–5000 नौकरियां)। इसमें मध्यम नगरीय क्षेत्रों को अब परिधीय नगर का दर्जा नहीं दिया गया। अब ये जगह ग्रामीण क्षेत्रों की श्रेणी में रखे गए। ओलीविएर पाईरोन (2014) ने इस सम्पूर्ण व्याख्या का आलोचनात्मक विश्लेषण किया और कुछ कमियों को इंगित किया। उन्होंने इस अत्यधिक नगरीय प्रभाव से प्रभावित व्याख्या को "शहरीकरणवादी साम्राज्यवाद" कहा। उन्होंने कहा कि इस प्रकार की व्याख्याओं ने फ्रांसिसी समाज में ग्रामीणता के अस्तित्व को दरकिनार कर दिया है। पाईरोन ने जीवन शैली व निवास को आधार बनाने के स्थान पर

आईएनएसइइ की रोजगार के आधार पर अर्थ आधारित व्याख्या का विरोध किया। एमेनुएल रॉक्स एवं मार्टिन वनिएर (2008) ने भी आईएनएसइइ की रोजगार ध्रुवित एवं प्रतिदिन काम के लिए शहर जाने वाले लोगों के आधार पर की गयी व्याख्या की आलोचना की।

इस गेरार्ड बौएर व जीन मिचेल रॉक्स (1976) ने परिधीय नगरीकरण की प्रक्रिया के दौरान हो रहे शहरों के फैलाव व बिखराव की ओर ध्यान आकर्षित किया और इस घटना को ग्राम्य–नगरीकरण कहा। 1980 के दशक में, यह मुद्दा उठा कि इस प्रक्रिया को जिसमें गावों का नगरीकरण हो रहा है, अंततः क्या कहा जाये तब ग्राम्यनगरीकरण शब्द को परिधीय नगर एवं परिधीय नगरीकरण नाम से संबोधित किया गया । जैकलिन बेजिऊ गर्निएर (1983) ने स्पष्ट रूप से उपनगर/बन्लिकुई (banlieues) के स्थान पर इस नए शब्द परिधीय नगर को उचित बताया। बेजिऊ गर्निएर के अनुसार "यह शब्द नयी बन रही वास्तविकताओं को समझने के लिए उपयोगी है। संपर्क के ऐसे स्थान जहाँ दो संसार, गावं एवं नगर, आपस में टकराते हुए व्याप्त हैं। विन्सेंट नेग्री (2013) के अनुसार परिनगरीय क्षेत्र शहर नहीं हैं लेकिन ये अब ग्रामीण क्षेत्र भी नहीं रहे। ये तो एक पहले से ही प्रारूपित दो स्थानों के मध्यवर्ती के रूप में हैं। चूँकि नगरों का सर्वाधिक तीव्रता के साथ फैलाव अमेरिका में हो रहा था इसलिए यहाँ की अध्ययन एवं व्याख्याएँ प्रमुख रहीं।

भारत में परिधीय नगरों का अध्ययन

भारत में भी परिधीय नगरों के क्षेत्र का सीमांकन करना व उनको परिभाषित करना एक जटिल कार्य है। भारत में भी फ्रांस की ही भांति अन्य विषयों में इन क्षेत्रों के विभिन्न पहलुओं जैसे – शासन संरचना का राजनीतिशास्त्र, नगरीय योजनाकारों द्वारा नीतियों एवं योजनाओं का निष्पादन, भूगोलविदों द्वारा भौगोलिक स्थिति का, अर्थशास्त्रियों द्वारा अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में इत्यादि अध्ययन किये गए हैं। किस प्रकार के स्थानों को परिधीय नगर कहा जाए ? यह एक विवाद का विषय है लेकिन अभी तक के अध्ययनों के आधार पर हम इसको चार प्रकारों में वर्गीकृत कर सकते हैं – पहला, ऐसे ग्रामीण स्थान जो महानगरों एवं केन्द्रीय शहरों से सटे हुए हैं। इन क्षेत्रों का शहरों से प्रत्यक्ष संपर्क होने के कारण यहाँ स्वतः ही नगरों का कुछ प्रभाव दिखाई देता है व इस प्रकार के स्थानों का नगरों के विकास के साथ ही सहअस्तित्व रहा है। दूसरा, ऐसी जगह जो न तो नगर के अंतर्गत आते हैं न ही गाँव के अंतर्गत। बल्कि ये बीच के स्थान हैं। तीसरा, ऐसे स्थान जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नगरों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं लेकिन शहरों से कुछ दूर स्थापित होते हैं। अंतिम, इन स्थानों का विकास केन्द्रीय शहरों का भार कम करने के लिए उद्देश्यपूर्ण रूप से किया जाता है और ये शहरों के संपूरक का कार्य करते हैं। भारत में परिधीय नगर सम्बन्धी अध्ययन बहुत सीमित हुए हैं लेकिन "कस्बों" के रूप में एक वर्गीकरण पाया जाता है। इन कस्बों को गाँव एवं शहर को जोड़ने वाले स्थान के रूप में जाना जाता है, साथ ही कालांतर में जनगणनाओं से प्राप्त आंकड़ो के आधार पर कस्बों को जनसंख्या के आधार पर परिभाषित किया गया है लेकिन सभी कस्बों को हम परिधीय नगर के रूप में नहीं देख सकते। हालांकि यहाँ द्वितीयक एवं तृतीयक सेक्टर अधिक प्रभावी रहते हैं लेकिन ये मुख्यतः ग्रामीण समाज की शहर सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। भारत के सन्दर्भ में यदि हम देखें तो पाते हैं की परिधीय नगरों के अध्ययनों में सभी ने अपने अपने आधार पर इसकी व्याख्या करके अध्ययन किये हैं। किस क्षेत्र को किस आधार पर परिधीय नगर कहा

जाये इसकी तस्वीर बहुत अस्पष्ट रही है। 1901–51 के दशकों में कस्बों की विशेषताएं यह थी – (अ) किसी भी आकार की नगरपालिका (ब) सभी सिविल लाइन्स (स) लोगों का स्थायी निवास जिसकी जनसंख्या 5000 हो (इस दशा में यह निर्धारण प्रांतीय अधीक्षक के हाथ में था कि किस क्षेत्र को कस्बा कहा जाएगा व किसको नहीं)। 1951 के बाद ये योग्यताएं तो समान रही लेकिन ऐसे स्थान जो 5000 से अधिक जनसंख्या वाले थे लेकिन नगरीय चरित्र नहीं रखते (राज्य या जनगणना अधीक्षक का निर्णय अंतिम होगा) गाँव की श्रेणी में आ गए। 1961 के जनगणना में कस्बों की परिभाषा में थोड़ा परिवर्तन किया गया – (अ) जनसँख्या घनत्व 10000 प्रति वर्ग मील से कम नहीं होना चाहिए (ब) कार्यकारी जनसँख्या में 75% लोग गैर–कृषि कार्यों से सम्बद्ध होने चाहिए (स) 5000 की जनसंख्या (द) उस स्थान में कुछ नगरीय गुणों का होना आवश्यक है (ये गुण राज्य अधीक्षक द्वारा निर्धारित होंगे)। 1971–81 का शहर के मापदंड ये हैं – (अ) ऐसे स्थान जो नगरपालिका, निगम, छावनी एवं चिन्हित कस्बे हैं। (ब) ऐसे स्थान जो निम्न अहर्ताता पूरी करते हों – (क) न्यूनतम 5000 जनसंख्या, (ख) 75% कार्यकारी पुरुष जनसंख्या गैर–कृषि कार्यों में संलिप्त हो (ग) जनसँख्या घनत्व 1000 व्यक्ति प्रति वर्ग मील हो। (अ) व (ब) के अंतर्गत निर्देशित अहर्ताताओं को अलग श्रेणियों में क्रमशः 'सांविधिक कस्बे' व 'जनगणना कस्बे' के रूप में विभाजन किया गया है। 2001 की जनगणना में जनगणना कस्बों की संख्या जहाँ 1362 थी वहीँ 2011 की जनगणना के अनुसार जनगणना कस्बों की संख्या 3894 हो गयी हैं। अतः ये नयी अहर्ताताएं नगरीय जनसंख्या में तीव्र वृद्धि को प्रदर्शित करती हैं। 'संयुक्त राष्ट्र जनसांख्यिकीय वर्ष पुस्तक' (1988) में सभी देशों के लिए नगरों को चिन्हित करने के लिए मापदंड अलग अलग रखे गए हैं।

नगर की उपरोक्त दी गयी व्याख्याओं में परिधीय नगरों की चर्चा नहीं की गयी है। इसके स्थान पर नगरों के लिए बनाये गए मानकों में काफी परिवर्तन हुआ है कस्बों में मुख्य रूप से द्वितीयक एवं तृतीयक अंचल, प्राथमिक अंचल से अधिक प्रभाव में होने के कारण इन कस्बों में एवं परिधीय नगरों में लक्षणों के आधार पर थोड़ी समरूपता दिखाई देती है। तब प्रश्न है कि क्या विशिष्टताएं इनके बीच अंतर स्थापित करती हैं ? भारत में नगरों, गाँवों,परिधीय नगरों एवं कस्बों को परिभाषित करने में जनगणना के आंकड़े ही आधार रहे हैं और इन आकड़ो से इतर निर्णय लेने की सारी शक्ति जनगणना अधीक्षक के विवेक पर आधारित थी। इस प्रकार जहाँ एक ओर ये व्याख्याएँ न तो पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ ही हैं और न ही ठीक प्रकार से व्यक्तिनिष्ठ हैं। क्योंकि किसी समाज (ग्रामीण / शहर) के परिवेश में परिवर्तन होने पर न केवल परिमाणात्मक परिवर्तन आते हैं बल्कि गुणात्मक परिवर्तन भी आते हैं। दोनों ही दशाओं में अधिक गहन अध्ययनों की आवश्यकता है। अध्ययनों के आधार पर और कुछ समितियों, थिंक टैंक का गठन करके निर्णय होना चाहिए जैसा फ्रांसिसी समाज में किया गया। चूँकि इस प्रक्रिया से विकसित देश अन्य देशों से थोड़ा पहले गुजर चुके हैं और यह प्रक्रिया वर्तमान में दक्षिण एशिया में बहुत तीव्र गति से अपना आकार ले रही है ऐसे में इन समाजों को अन्य देशों के अनुभवों से सीखते हुए इस प्रक्रिया को नियोजित तरीके से जमीन पर लाने की आवश्यकता है।

भारत में कुछ मुख्य महानगरों, केन्द्रीय शहरों से संबंधित परिधीय नगरों का वर्णन यहाँ आवश्यक है। हैदराबाद के परिधीय नगरों के अध्ययन में देखा गया कि यहाँ के परिधीय नगर जलीय पर्यावरण व सामाजिक सम्बन्ध के साथ साथ जल से जुड़े संगठन भी आपस में अधिक

संख्या में अप्रत्याशित रूप से अंतर्संबंधित हैं व एक दूसरे के सहयोगी हैं। जलीय पर्यावरण केवल परिधीय नगरों का ही परिवर्तित होता है, नगरों व गाँवों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इन स्थानों के जल का केन्द्रीय नगरों की आवश्यकता पूर्ति के लिए प्रयोग किये जाने से यहाँ पर जल की कमी हो गयी है। दूसरा, इन स्थानों का प्रयोग नगरों से निकटता, जमीनों के सस्ते दामों के कारण उद्योग धंधों के लिए किया जाता है, जिस कारण यहाँ पर जमीन व भू जल दोनों जगह प्रदूषण में वृद्धि हुई है और यहाँ की जमीनें कृषि योग्य नहीं रह गयी हैं। इस प्रकार महत्वपूर्ण संसाधनों व उससे जुड़ी पर्यावरणीय सेवाओं के क्षीण होने का कारण 1990 से चले आ रहे निजी पूंजी के द्वारा आर्थिक वृद्धि सम्बन्धी नीतियों पर जोर है (सुचित्रा सेन, अंशिका जॉन, श्रेया चक्रबर्ती, मनोज जाटव 2019)।

भारत में विशेष रूप से नगरों का विकास एवं वृद्धि तटीय नगरों- कोलकाता, मुंबई एवं चेन्नई में हुई। विशेषतया, कोलकाता शहर की भौगोलिक अवस्थिति का लाभ पश्चिम बंगाल में ब्रिटिश काल में तीव्र नगरीकरण के रूप में फलित हुआ। शुभ्रा दत्ता और सुमेंदु चक्रवर्ती 2015 ने अपने अध्ययन में यह जानने की कोशिश की कि क्या ग्रामीण औद्योगीकरण, गाँव के लोगों को, गाँव में या आस पास के छोटे कस्बों में रोजगार पाने में मदद करता है ? अध्ययन में पाया गया कि कृषि व्यवस्था पर जीविका सम्बन्धी दवाब में जबरदस्त वृद्धि हुई है क्यूंकि औद्योगिक इकाइयां ग्रामीण अकुशल श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराने में विफल हैं। अतः पश्चिम बंगाल का यह अध्ययन ग्रामीण औद्योगीकरण को उचित बताता है यदि वहां कृषि व गैर–कृषि दोनों व्यवस्थाएं साथ साथ रहें।

बंगलुरु का एक अध्ययन बंगलुरु में विकसित हो रहे परिधीय नगरों पर आधारित है जिसमें नगरीकरण के प्रभाव का नगरों से लगे स्थानों की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव देखा गया है और ग्रामीण आर्थिकी में कृषि व गैर कृषि कार्यों के भाग और व्यवसायों के बदलते स्वरुप का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन में इन क्षेत्रों को तीन उप–क्षेत्रों में विभाजित किया गया है, उच्च नगरीय प्रभाव वाले क्षेत्र (FHUI), निम्न नगरीय प्रभाव वाले क्षेत्र (FLUI), और गौण नगरीय प्रभाव वाले क्षेत्र (FNUI)। परिणामस्वरूप, कुछ रोचक तथ्य प्राप्त हुए – FLUI में प्रति व्यक्ति आय FHUI से अधिक थी क्योंकि FHUI में स्वास्थ्य पर खर्चा बहुत अधिक हो जाता है वहीं कृषि में प्रति एकड़ सकल आय FHUI में अधिक थी जबकि प्रति व्यक्ति आय में यह FNUI से भी पीछे है ये आंकड़े अधिक नगरीय प्रभाव के परिणाम की दुर्दशा को दिखाते हैं। नगरों व परिधीय नगरों से सम्बद्ध गैर कृषि कार्यों में कृषि कार्यों की तुलना में आय अधिक थी। सम्पूर्ण अध्ययन में FLUI क्षेत्र सर्वाधिक लाभान्वित रहते हैं। इन स्थानों के घरों में ग्रहीय आवश्यकता सम्बन्धी संपत्ति जैसे – ए सी, रेफ्रिजरेटर, वाहन इत्यादि भी सर्वाधिक पाए गए (रामलिंग गोव्डा, चंद्रकांत, श्रीकांथमूर्ति, जी यादव, एन नागराज, चन्नावीर 2012)।

परिधीय नगरीय क्षेत्रों में संक्रमण का दौर

नगरों के विस्तार के परिणामस्वरूप, परिधीय नगर विभिन्न प्रकार के अनुभवों – भौतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं वैचारिक से गुजरे हैं। नगरों के विस्तार व उद्योगों एवं अन्य विकास के आयामों के कारण इन स्थानों पर परम्परागत व्यवस्था एवं आधुनिक व्यवस्था के बीच एक

अंतर्विरोध उत्पन्न हुआ है। नए प्रकार के उत्पन्न हुए निवास स्थानों ने एक नया प्रश्न चिन्ह लगाया है और पुरानी गाँव – नगर की द्विविभाजित व्यवस्था में एक तीसरे आयाम के रूप में यह सामने आ रहा है। इन क्षेत्रों में जहाँ एक ओर विकास की नयी आकांक्षाएं विकसित हुई हैं वहीं पुरानी पारंपरिक कृषक अर्थव्यवस्था का भविष्य खतरे में दिखाई पड़ता है ऐसी दशा में ग्रामीण लोगों के सामने आजीविका का खतरा उत्पन्न हो रहा है। चूँकि 2001 की जनगणना की तुलना में 2011 की जनगणना में 'जनगणना कस्बों' की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, जिससे इस नगरीय वृद्धि दर ने अध्ययनकर्ताओं के समक्ष चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। इस दर ने ग्रामीण व्यवस्था, गाँव, एवं कृषि सम्बन्धी व्यवसायों के भविष्य के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। शिकागो स्कूल के अनुसार नगरों की व्याख्या करने के लिए केवल जनसंख्या, घनत्व एवं विषमरूपता ही काफी नहीं है बल्कि इसका अध्ययन सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से करना भी आवश्यक है। जैसा विर्थ (1938) ने कहा है कि नगरीकरण कोई घटना नहीं है बल्कि यह एक 'जीवन शैली' है। इस प्रकार भारत में नगरीकरण के इस नए स्वरुप को, जो नगरीकरण से प्रभावित संक्रमण की अधूरी घटना है, 'कृषक नगरीयवाद' या 'अधीनस्थ नगरीकरण' कहा जाता है, जहाँ गाँव व नगर एक दूसरे में व्याप्त हैं (गुरूरानी 2020; मुकोपाध्याय, जेरह एवं डेनिसय राठी 2021)। इन क्षेत्रों में अध्ययन की कई सम्भावनाओं को देखा गया है इन सभी बिन्दुओं पर सारगर्भित रूप से चर्चा की आवश्यकता है – (अ) केंद्र किस प्रकार परिधीय क्षेत्रों से जुड़े हैं ? केंद्र व परिधि के बीच विशेष प्रकार के अंतर्संबंध पाए जाते हैं। (ब) तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर हम परिधीय क्षेत्रों के कुछ मुख्य बिन्दुओं की तुलना कर सकते हैं। रेन ने इसमें संरचित तुलना के लिए कुछ मुख्य व सामान्य बिंदु बताए – घटनाओं का चुनाव, केन्द्रीय समस्या की पहचान, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का समावेशन, वृहद समस्याओं एवं अर्थों का स्पष्टीकरण। (स) परिधीय स्थानों पर रहने वाले समाज की संस्कृति अर्थात जीवन शैली, परम्पराएँ, रीति रिवाज और सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'जाति संरचना' का अध्ययन आवश्यक है (रेन 2021)।

चुनौतियाँ :

ग्रामीण अंचल आज भी परंपरा एवं एतिहासिक विरासत के प्रतिनिधि हैं, वहीं नगरों में आधुनिकता का और मोजेक (जगत) का बोध होता है। ऐसे में परिधीय नगर दोनों का मिला–जुला रूप रखते हैं। इन क्षेत्रों में सबसे बड़ा संकट आजीविका का है, क्योंकि यहाँ की परंपरागत कृषि व्यवस्था तीव्रता के साथ बदल रही है। यहाँ विकास के नाम पर होने वाला निर्माण कार्य यहाँ के मूल निवासियों को ही अन्य स्थानों पर प्रवास करने के लिए मजबूर करता है। यहाँ स्थापित होने वाली फैक्ट्रियां, मॉल, शोपिंग काम्प्लेक्स, व अन्य स्थानों पर मूल निवासियों को रोजगार नहीं दिया जाता है (शुभ्रा दत्ता और सुमेंदु चक्रवर्ती 2015)। ऐसे लोगों को रोजगार न मिलने के पीछे कई कारण जैसे – यूनियन का निर्माण, स्थानीय होने का लाभ इत्यादि सम्मलित है। दूसरी चुनौती यहाँ पर जाति व्यवस्था की संरचना की है। शहरों में जाति व्यवस्था बहुधा विलुप्त रहती है जबकि गाँव में इसमें अधिक परिवर्तन नहीं आया है, वहीं इन क्षेत्रों में इस व्यवस्था ने जातिगत असमानता को बढ़ा दिया है। जैसा कि एम एन श्रीनिवास ने प्रभु जाति की विशेषताओं में बताया है की प्रभु जाति के लोगों का गाँव से बाहर शहरों में संपर्क होता है, वे शिक्षा व अन्य आधारों पर शहरों से कुछ हद तक सम्बद्ध रहते हैं और वे नगरीय संस्कृति से एक सीमा तक सुपरिचित होते हैं। ऐसे में यह अनुभव उनको नए परिवर्तनों से निपटने में अन्य

लोगों की अपेक्षा अधिक सहायता करता है। इस प्रकार उनका संपर्क नगरीय संस्कृति से पहले से ही भली भांति से होता है। तब इस विस्थापन से प्राप्त मुआवजे को, जो उन्हें जमीनों एवं खेतों के अधिग्रहण के कारण मिलता है, दुसरे कार्य क्षेत्रों में निवेश कर देते हैं और जातिगत अंतर के साथ वर्गीय अंतर भी सदृढ़ हो जाता है। यहाँ के कुछ निवासी मुआवजे में प्राप्त धन का कुछ भाग पेटी कारोबार में लगा देते हैं, जबकि कुछ लोग अपनी दैनिक जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं जैसे – फ्रिज, एसी, कार गृह निर्माण आदि में लगा देते हैं जिससे इनके जीवन स्तर में, संस्कृति में, जीवन शैली में परिवर्तन आ जाता है (मोहम्मद आरिफ, श्री निवास राव, दास आर्य 2019)। वहीं कुछ अध्ययनों में देखा गया है कि कम होते कृषि के महत्त्व के चलते लोग इस प्रकार के परिवर्तनों का स्वागत करते हैं और रोजगार व आमदनी के नए साधनों को खोजते हैं। ऐसे में परिधीय नगरों के कारण होने वाले भूमि अधिग्रहण के लिए वह तैयार रहते हैं (नरेन एवं निश्चल 2007)। इस संक्रमणकालीन समय में सभी पहलुओं को सम्मिलित करते हुए विकास की राह खोजने का प्रयत्न करना आवश्यक है।

उपसंहारः

नगरों में वृद्धि एक अपरिहार्य घटना है। और नगरीकरण की यह प्रक्रिया सर्वाधिक अपने आस– पास के क्षेत्रों को प्रभावित करती है, अर्थात नगरीकरण की तीव्रता केन्द्रीय शहर से दूरी बढ़ने के साथ ही बढ़ती चली जाती है। औद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण के फलस्वरूप नगरीकरण का जन्म होता है। यह एक विकासमूलक प्रक्रिया है जिससे समाज की वर्तमान संरचना में परिवर्तन होता है ओर यह परिवर्तन आधारभूत संरचना में होता है जिससे पूरा समाज प्रभावित होता है। इन विकास मूलक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मूल निवासियों को मुआवजे के रूप में धन मिलता है जो उनके परिवार के भविष्य के लिए निर्णायक साबित होता है। केवल धन के रूप में अनुदान देकर इन लोगों का पुनर्वासन संभव नहीं है क्योंकि ये लोग संक्रमण के काल से गुजरते हैं। एक ओर जहाँ उनके पास आजीविका का संकट होता है वहीं दूसरी ओर ये लोग आधुनिकता व नगरीयता की नयी जीवन शैली के संपर्क में होते हैं। चूँकि उपभोगवाद नगरीकरण की एक प्रमुख विशेषता है इसलिए ये लोग जो अपने पास धन रखते हैं, इस दलदल में फंसने के अधिक निकट हो जाते हैं और ये भिन्न प्रकार की गलत आदतों व नगरीकरण के नकारात्मक प्रभावों में आसानी से संलिप्त हो जाते हैं क्योंकि यह उस नए परिवेश के लिए चेतनशील व तैयार नहीं होते हैं।

सन्दर्भ

आशेर, एफ., 1995- Métapolis oul avenir des villes- पेरिसः ओडिल जैकब

Julien, P. 2000.Mesurer un univers urbain en expansion,ß Économie et Statistique 336% 3–33.

इयाकुन्ता., डेविड, एल. और एक्सेल डब्लू डरेशर 2000."डीफाइनिंग पेरी अर्बन : अंडरस्टैंडिंग रूरल–अर्बन लिंकएजस एंड देयर कनेक्शन टू इंस्टीटूशनल कॉन्टेक्स्टस", paper presented at the Tenth World Congress of the International Rural Sociology Association in Rio de Janeiro 25 pages

गुरूरानी, शुभ्रा. 2019.''सिटीज इन अ वर्ल्ड ऑफ विल्लेजसः अग्ररियन अर्बनिज्म एंड दा मेकिंग ऑफ इंडिया'स अर्बनिजिंग फ्रंटियर्स'', अर्बन जियोग्राफी, DOI: 10.1080/02723638.2019.1670569.

एजाज, रूमी.2019." इंडिया पेरी–अर्बन रीजन्सः दा नीड फॉर पालिसी एंड चौलेंजेज ऑफ गवर्नेंस", आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन Issue Brief No. 285

वेबस्टर, डी.2002. ऑन दा एजः शेपिंग दा फ्यूचर ऑफ पेरी–अर्बन ईस्ट एशिया.स्टेनफोर्डः स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

थॉमस, डी.1990." दा एज ऑफ दा सिटी", ट्रान्सएक्शनस ऑफ दा इंस्टिट्यूट ऑफ ब्रिटिश जिओग्राफरस. Vol.15, No.2, pp-131-138

वाल्त्जेर, जोहन. 2014. "अ ग्लोबल रिव्यु ऑन पेरी–अर्बन डेवलपमेंट एंड प्लानिंग", जर्नल पेरेंकनअन विलयाह डान कोटा. Vol. 25 No. 1 pp . 116

यूएनडीपी एवं ओपीएचआई, 2019. Poverty Index 2019 Illuminating

लुए डी चोम्बर्ट .1952. Paris et agglomération parisienne- Paris Presses Universitaires de France vol-2

INSEE 2011- Méthode dactualisation du nouveau zonage en aires urbaines

पैरों, ओ. 2014. Lurbanisme de la vie privée- La Tour dAigues Éditions de Aube-

रौऊ, इ एवं एम, वनिएर. 2008- La périurbanisation problématique et perspectives- Paris La Documentation française-

नेग्री, वी.2013- "Le périurbain dans ses dimensions juridiques et institutionnelles" in "Périurbains- Territoires réseauet temporalités," Cahiers du Patrimoin 102% 40–2

राठी अंकिता. 2021.''सीइंग दा अर्बन फ्रॉम दा अग्ररियनः इमर्जिंग फॉर्म्स ऑफ अग्ररियन अर्बनाइजेशन इन इंडिया'' साउथ एशिया मल्टीडिसिप्लिनरी अकेडमिक जर्नल http//journals-openedition-org/samaj/7306-

डेनिस, इ., जिरह.2014. "रूरल–अर्बन लिंकेजेसः इंडिया केस स्टडी" वर्किंग ग्रुपः डेवलपमेंट विद टेरीटोरियल कोहेशन. टेरीटोरियल कोहेशन फॉर डेवलपमेंट प्रोग्राम. Rimisp, Santiago, Chile.

रेन, एक्स.2021."दा पेरिफेरल टर्न इन ग्लोबल अर्बन स्टडीजःथ्योरी, एविडेंस, साइट्स" साउथ एशिया मल्टीडिसिप्लिनरी अकेडमिक जर्नल

आरिफ, मोहम्मद, श्रीनिवास राव दसराजू और कृष्णेंदु गुप्ता.2019. ''पेरी–अर्बन लिवलीहुड डायनामिक्सः अ केस स्टडी फ्रॉम इस्टर्न इंडिया'', फोरम जियोग्राफिक.Vol.18. No.1,pp-40-52

नरेन, वी. व शिल्पा निश्चल.2007."दा पेरी–अर्बन इंटरफेस इन शाहपुर खुर्द एंड करनेरा,

इंडिया", एन्वायरमेंट – अर्बनाइजेसन. Vol-19, No-1,pp- 261-273

दत्ता, सुब्राता और शुभेंदु चक्रबर्ती. 2015.''रूरल–अर्बन लिंकजेस, लेबर माइग्रेशन व रूरल इंडस्ट्रियलाईजेसन इन वेस्ट बंगाल'', दा इंडियन जर्नल ऑफ़ इंडस्ट्रियल रिलेशनस - Vol-50, No-3,pp-397-409

विर्थ, एल.1938."अर्बनिस्म एस अ वे ऑफ लाइफ".अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी, Vol-44, No-1, pp-1-24

क्युसिन, फरन्कोइस., लेफेब्रे, ह्यूगो., सिगौड, थॉमस और एमी जेकोबस. 2016."दा पेरी–अर्बन कोशियनः अ स्टडी ऑफ ग्रोथ एंड डाइवर्सिटी इन पेरिफेरल एरियाज इन फ्रांस" Revue française de sociologie (English Edition).साइंस पो यूनिवर्सिटी प्रेस Vol- 57, No- 4, pp-437-471

डैमन,जुलिएन., मार्कल, हेर्वे., स्टिब,जीन–मार्क. और पीटर हैमिलटन.2016-"सोशियोलॉजिस्टस एंड पेरी–अर्बनः इट्स लेट डिस्कवरी, चेंजिंग डेफिनेशंस एंड सेंट्रल कंट्रोवर्सिस" Revue française de sociologie (English Edition). साइंस पो यूनिवर्सिटी प्रेस Vol- 57, No- 4, pp-418&436

जनगणना.1961.

सेन, सुचित्रा., अंशिका, जॉन., चक्रबर्ती, श्रेया. व मनोज जाटव .2019-"जियोग्राफीस ऑफ ड्रिंकिंग वाटर इन्सिकयुरिटीस इन पेरी–अर्बन हैदराबाद अ इकोलॉजिकल पर्सपेक्टिव". इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली. Vol- 54, No- 39, pp- 42-50.

गोव्डा, रामलिंग., चंद्रकांत, श्रीकांथमूर्ति, यादव, जी. ,नागराज, एन. व चन्नावीर.2012. "इकोनॉमिक्स ऑफ पेरी–अर्बन एग्रीकल्चरः केस ऑफ मगदी ऑफ बंगलोर",इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली. Vol- 47, No- 24, pp- 75-80.

डॉ. अरूण कुमार उपाध्याय

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

सहरिया जनजातियों में भूमि अपवर्तन जनित आर्थिक वंचना के सामाजिक–सांस्कृतिक आधार

सार संक्षेप

भारत वर्ष मे जनजातियों का जो स्वरूप विद्यमान है, वह विश्व के किसी भी अन्य देश में देखने को नही मिलता। भारतीय संविधान के अनुसार लगभग 667 समूहों को अनुसूचति जनजातियों की सूची में सम्मलित किया गया है, जो 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है। इनमें से 75 ऐसी जनजातियां है जिन्हें आदिम समूह कहा जाता है। आदिम समूह का दर्जा अबूझ, माडिया, बोडो, बादो, बिरहोर, बैगा, कमार, और सहरिया जनजातियों को मिला है। इन्हे भारतीय संस्कृति और सभ्यता का अमूल्य धरोहर माना जाता है, पर इनकी समाजिक व आर्थिक स्थिति हमेशा से दयनीय रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ब्रिटिश शासकों और राजा महाराजाओं ने इनके विकास हेतु कोई ध्यान नहीं दिया। प्रभुत्वशाली वर्ग के लोगों ने इनका दमन और शोषण किया। इसका परिणाम जनजातियों के सामजिक, शैक्षणिक, व सांस्कृतिक पिछड़ेपन के रूप में सामने आया। भारत को स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही राष्ट्रीय विकास के सम्बन्ध में गहन चिन्तन का फलीतार्थ इन वंचित वर्ग के लोगों के उत्थान की आवश्यकता के रूप में सामने आया। विचारकों, नीति निर्माताओं एवं बुद्धिजीवियों ने माना कि राष्ट्रीय विकास के लक्ष्य की प्राप्ति इन वंचित वर्गों के उत्थान के अभाव में असम्भव है। संविधान निर्मात्री समीति ने इस उद्देश्य को अभिव्यक्त करते हुए कहा कि कमजोर और पिछड़े वर्ग के लोगों को विकास के विशेष अवसर दिये जायेंगे, जिससे इस वर्ग के लोग देश की आर्थिक व राजनीतिक मुख्य धारा से अपना एकीकरण कर सकें। इन उपायों का उद्देश्य आदिवासी वर्ग के लोगों को विशेष सुविधाएं प्रदान कर उनके जीवन स्तर में सुधार लाना था। इन संवैधानिक प्रवाधानों के अन्तर्गत भूमि कानून में सुधार, सूदखोरी पर प्रतिबन्ध, शिक्षण संस्थाओं और नौकरी में आरक्षण, जनजातियों हेतु विशिष्ट सुविधायें, उद्यमिता आदि का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। इनके उत्थान के लिये केन्द्र और राज्य सरकारों ने बहुत बड़ी धनराशि व्यय की, पर जनजातियों की स्थिति में अपेक्षाकृत बदलाव नही आ पाया। वे आज भी गरीबी, निरक्षरता, बेरोजगारी, ऋणग्रस्तता, बीमारी व भुखमरी से त्रस्त है। भूमि एवं जंगल पर इनका अधिकार समाप्त हो गया है। शिक्षा, स्वास्थ्य और पेयजल की बुनियादी सुविधाएं भी इन्हे प्राप्त नही हो पा रही हैं।

प्रस्तुत अध्ययन मध्य प्रदेश में सहरिया जनजातियों में भूमि अपवर्तन जनित आर्थिक वंचना के सामाजिक सांस्कृतिक आयाम के विश्लेषण पर केन्द्रित है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य सहरिया जनजातियों में भूमि अपवर्तन और प्रवर्जन के बीच सह सम्बन्धों को ज्ञात करना और भूमि अपवर्तन जनित आर्थिक वंचना से उनके जीवन शैली पर पडने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना है। इस अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि भूमि अपवर्तन के कारण उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन में घटित परिवर्तन

प्राध्यापक समाज शास्त्र, डा भगतवत सहाय शासकीय महाविद्यालय, ग्वालियर।
मोबाइल नम्बर 9406976899

की दिशा क्या है ? विकास की इन जनजातियों की अपनी धारणा क्या है? क्या वे अपने प्रयास से विकास के इस लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है ?

हमारा यह अध्ययन इस मान्यता पर आधारित है कि गैर–जनजातियों का इनके क्षेत्र में प्रवेश से पहले सहरिया जनजाति आत्मनिर्भर थी। जब इनका सम्पर्क बाहरी लोगों से हुआ तो बाहरी लोगों ने इनका भरपूर लाभ उठाया। भूमि अपवर्तन जनित आर्थिक वंचना गैर जनजातियों के शोषण का परिणाम है।

सहरिया जनजातियों में भूमि अपवर्तन जनित आर्थिक वंचना के सामाजिक सांस्कृतिक आयाम से सम्बन्धित यह प्रपत्र मेंरे द्वारा किये गये एक शोध अध्ययन पर आधारित है, जो मध्य प्रदेश के ग्वालियर सम्भग के शिवपुरी जिले में सम्पादित किया गया। शिवपुरी जिले के चार विकास खण्डो–शिवपुरी, कोलारस, पोहरी और पिछोर को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चुना गया। इन चार विकास खण्डों से चार गावं–शिवपुरी, सुनोज, बीलवर माता और मानपुरा का चयन किया गया। ये ऐसे गावं थे जहां सहरिया जनजातियों की संख्या अधिक थी। इन चारों गावों से पहले सहरिया परिवारों की संख्या ज्ञात की गयी और दैवनिदर्शन विधि से 125 उत्तरदाताओं का चयन किया गया। अध्ययन की इकाई परिवार की मुखिया को माना गया। इनका चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखा गया कि वे समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाले हो।

तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची और अवलोकन विधि का उपयोग किया गया। साक्षत्कार अनुसूची में शोध समस्या से सम्बन्धित अनेक प्रतिबन्धित व अप्रतिबंधित प्रश्नों को सम्मलित किया गया। स्वतन्त्र रूप से उन्हें अपनी बात कहने का अवसर दिया गया ताकि वे अपनी भावनाओं को स्वच्छन्दता से व्यक्त कर सके और प्राप्त तथ्य प्रमाणित और विश्वसनीय हो सके।

सूचक शब्द : सहरिया जनजाति, आदिम समूह, ऋणग्रस्तता, भूमि अपवर्तन, कुटुम्ब

अध्ययन की उपलब्धियां–

सहरिया अत्यन्त पिछडी हुई एवं कोलारियन परिवार की जनजाति है। यह जनजाति मुख्यतः ग्वाालियर, भिन्ड, मुरैना, दतिया, शिवपुरी, गुना, अशोकनगर, विदिशा, रायसेन और सिहोर जिलो में रहती है। सहरिया भीलो की एक उपशाखा के रूप में पायी जाती है। ये अपने आप को भीलों का छोटा भाई मानते हैं तथा स्वयं को रामायण कालीन शबरी के वंशज बताते हैं। सौरी से उत्पन्न होने के कारण ये शबर, सबर, सौर या सहरिया कहलायें।

सहरिया अपनी अलग कतारबद्ध मकानों की श्रंखला बना कर समूह में रहते हैं जिसे सहराना कहा जाता है। सहराना का मुखिया पटेल होता है। इनकी नियुक्ति जाति परम्परा के अनुसार होती है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है।

सहरिया जनजातियों का रहन सहन, खान पान, वेष–भूषा सरल और आडम्बर हीन है। इन लोगों में साफ सफाई पर विशेष ध्यान नही दिया जाता। नियमित रूप से न तो ये स्नान करते और न ही कपड़े धोते हैं जिससे इनकी स्वास्थ समस्या बनी रहती है। ज्वार, बाजरा, चना, व चावल इनका मुख्य भोजन है। गेहूं की रोटी केवल पर्व और त्यौहारों पर ही बनायी जाती है। सहरिया जीवन पूर्णतः प्रकृति और उसके उत्पादों पर ही निर्भर है। जंगल से मिलने वाले खाद्य फल, बेर, बिला, आम, जामुन, कन्द, मूल और हरी साग सब्जी इनके शरीर के खनिज तत्वों की पूर्ति करते हैं। इनके खान पान में पौष्टिक तत्व न के बराबर ही रहता है। आर्थिक विसंगतियों के

कारण इनको पौष्टिक भोजन नही मिलता।

सहरिया जनजाति की वेषभूषा पर राजस्थानी प्रभाव ज्यादा देखने को मिलता है। इनकी स्त्रियां लहंगा, घाघरा व सलूका पहनती हैं जबकि पुरूष रंगीन कमीज व साफा पहनते है। इनके वस्त्रों के रंग गहरे चटकदार हरे, पीले, नीले और लाल रंग के होते है। आभूषण पहनने की परम्परा स्त्री और पुरूष दोनों में है।

सहरिया जनजाति मद्यपान के भी शौकीन हैं। परिणाम स्वरूप उनमें निर्धनता, निम्न जीवन स्तर, पारिवारिक कलह और असमय मृत्यु आदि समस्याएं व्याप्त हो गयी। इन समस्याओं से इन्हें मुक्ति दिलाने के लिये शासन प्रशासन व स्वयंसेवी संगठनों का ध्यान इस ओर अपेक्षित है।

सामाजिक संगठन के पारम्परिक स्वरूप और परिवर्तन–

प्रस्तुत अध्ययन में सहरिया जनजातियों के सामाजिक संगठन के विभिन्न स्वरूपों एवं तदजनित घटित परिवर्तनों का विश्लेषण किया जा रहा है। सामाजिक संगठन के पारम्परिक स्वरूपों के विश्लेषण के लिये जिन बिन्दुओं को लिया गया उनमें पारिवारिक संरचना, विवाह परम्परा, परिवार में महिलाओं की स्थिति, गोत्र एवं धार्मिक सांस्कृतिक गतिविधियां मुख्य हैं।

परिवार सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक संस्था के रूप में समाज की निरन्तरता को बनाये रखने वाली समाज की एक आधारभूत संस्था है। सहरिया जनजातियों में परिवार एक संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक इकाई होता है जिसे ये कुटुम्ब कहते हैं। ये परिवार पितृवंशीय, पितृस्थानीय एवं पितृसत्तात्मक परिवार के रूप में पाये जाते हैं। पिता की सत्ता सर्वोपरि होती है। बच्चे पिता के कुल या वंश का नाम ग्रहण करते हैं। पारिवारिक सम्पत्ति पर उनका पूर्ण अधिकार होता है। के. एम. कपाडिया (1962) की मान्यता है कि खासी, गारो, नायर आदि जनजातियों के समान सहरिया जनजातियों में मातृसत्तात्मक परिवार नहीं पाये जाते हैं। इस जनजाति में मातृसत्तात्मक परिवार न होने के कारण महिलाओं का स्थान पुरूषों से नीचे होता है।

सहरिया समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा का प्रचलन है। हमारे आधे से अधिक उत्तरदाता संयुक्त परिवारों में रहते है। संयुक्त परिवार के प्रकार्यात्मकता के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं का विचार सकारात्मक है। हमारे आधे से अधिक उत्तरदाता यह मानते है कि संयुक्त परिवार में धन का सही उपयोग होता है और इसी के द्वारा संस्कृति की रक्षा होती है। साथ ही राष्ट्रीय एकता में ये सहायक है। परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण इसके अकार्यात्मकता को हमारे उत्तरदाताओं ने नजर अन्दाज नहीं किया। उत्तरदाताओं का मानना है कि मकान छोटे होने और मजदूरी पर आश्रित होने के कारण जितना एकाकी परिवार अच्छे हैं उतने संयुक्त परिवार नहीं। यही कारण है कि एक तिहाई से अधिक उत्तरदाता एकाकी परिवारो में रह रहे है। सर्वेक्षित गांव शिवपुरी जिले से जुड़े हुए है। अतएव विकास के आधुनिक संसाधन परिवार के स्वरूप को प्रभावित कर रहे हैं। के. एम. कपाडिया (1959) का मत है कि औद्यौगीकरण, नगरीकरण एवं पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप पारिवारिक संरचना में तीव्र परिवर्तन हो रहा है। फिर भी ग्रामीण और जनजातीय समुदायों में संयुक्तता के तत्व अभी भी विद्यमान है।

आजीविका के प्रकार एवं परिवार के स्वरूप में गहरा सम्बन्ध है। जो लोग मजदूरी से आय

प्राप्त करते है उनके यहां एकाकी परिवारो का प्रचलन अधिक है। अध्ययन की प्रवृत्ति यह है कि जीवन निर्वाह के साधन में संघर्ष कठिन होने के साथ संयुक्त परिवार का विघटन होता है। इसमें एक तथ्य यह भी जुड़ा हुआ है कि आय कम होने की स्थिति में संयुक्त परिवार के विघटन की दशायें उत्पन्न होती है।

सभी मामलों में सहरिया परिवार का एक मात्र मुखिया पिता होता है। हालांकि एकाधिक कारणों से उसकी स्थिति में परिवर्तन आ रहा है, तथापि बच्चों के विवाह सम्बन्धों का निर्धारण, उसका आयोजन, परिवार के सदस्यों पर नियन्त्रण एवं धार्मिक कार्यो का नेतृत्व आज भी परिवार का मुखिया ही करता है। लेकिन परिवार का शासक होना, परिवार पर पूर्णतया अधिकार होना और आय–व्यय के पूर्ण नियन्त्रण पर विरोध के स्वर उभरने लगे हैं। इस प्रकार अध्ययन में यह देखा गया कि परिवार के पारस्परिक सम्बन्धों के स्वरूप में आज बदलाव हो रहा है। इस बदलाव का मुख्य कारण मकानो की कमी, अपने आय पर अपना अधिकार की भावना, महिलाओं द्वारा अर्जित आय और युवा वर्ग का नगरीय सम्पर्क तथा सास बहू के आपसी कलह आदि मुख्य है।

सामाजिक संगठन का दूसरा मुख्य आधार गोत्र व्यवस्था है। डा मजूमदार के अनुसार, एक गोत्र कुछ वंशो का योग होता है, जिसकी उत्पत्ति एक काल्पनिक पूर्वज से होती है जो कुछ भी हो सकता है। उत्प्रेती (1970) के अनुसार अण्डमान द्वीप समूह के कादर एवं बैगा जनजातियों को छोड़ कर शेष सभी भारतीय जनजातियों में गोत्र व्यवस्था पायी जाती है। सहरिया जनजातियों में गोत्र की अवधारणा गोत्र के नाम से ही जानी जाती है। यह जनजाति अनेक गोत्रों में बंटी हुई है। इस जनजाति में प्रचलित गोत्रों में सौजकिय, सनौरिया, नवटेले, बगुलपा, लुधया, बेलिया, छिरोजया, धुरारिया, राजोरिया, रखबूड़ा, सोहरे, कुसमोरया, कुडवारिया, लुधया, कायथ, खिमरिया, छयूलिया, जचरैया, चकरदैया, आदि कुल 19 गोत्र पाये जाते हैं। एक गोत्र के लोग कुटुम्बी, सगोती या भाई बन्धू कहलाते हैं। गोत्र जनजातीय इतिहास के पहचान का प्रतीक हैं। सहरिया जनजातियों में गोत्र वनस्पति जगत, जीवजगत और भौतिक पदार्थों से मिलकर बने होते हैं। गोत्र बहिर्विवाही होते हैं। गोत्र के सदस्य भ्रातृत्व भाव से जुड़े होने के कारण परस्पर सम्मान रखते हुए एक दूसरे के साथ सहयोग करते हैं और सुख–दुख के सहभागी बनते हैं। गोत्र का मुख्य कार्य निकटाभिगमन को रोकना, समाज के सदस्यों को एकता के सूत्र में बांधे रखना, व्यक्तियों के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखना, तथा सामाजिक व धार्मिक कार्यों को सुचारू रूप से संचालित करना है।

सामाजिक संगठन का तीसरा प्रमुख आधार विवाह सम्बन्ध है। जनजातियों में विवाह प्रथा उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना अन्य समाजो में। सहरिया समाज में विवाह एक धार्मिक कार्य है जिसे फूफा सम्पन्न कराता है। पर अब नगरीय समाजो से सम्पर्क और उसके प्रभावो के कारण ब्राह्मणो द्वारा विवाह सम्पन्न कराये जाने लगे हैं। विवाह में लगुन, टीका, भेट, भावर आदि रस्में अदा की जाती हैं।

सहरिया जनजातियों में अन्य जनजातियों की भांति विवाह प्रथा जैसे परिवीक्षा, क्रय, अपहरण, परीक्षा, विनिमय, सेवा, हठात या सहपलायन जैसे वैवाहिक स्वरूप दृष्टिगत नहीं होते। इस जनजाति में चार प्रकार के विवाह पद्धति प्रचलित हैं– सगाई विवाह, झगड़ा विवाह, विधवा विवाह और झारा फेरा विवाह। इनमें से सगाई विवाह को सर्वोच्च माना जाता है। हमारे सभी

उत्तरदाता विवाहित हैं और सगाई विवाह द्वारा ही इनका विवाह सम्पन्न हुआ है। सगाई विवाह दोनो पक्षों के राजी बाजी से सम्पन्न होता है। हमारा यह अध्ययन जी. पी. द्विवेदी (2003) के अध्ययन से भिन्न निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। जी पी द्विवेदी ने कोल परिवारों का अध्ययन कर यह बताया कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया ने वैवाहिक क्रियाओं को भी प्रभावित किया है, पर सहरिया जनजाति के लोग प्राचीन पद्धति सगाई विवाह को ही उचित मानते हैं।

सहरिया जनजातियों में बाल विवाह प्रथा का भी आरम्भ में प्रचलन था और कमोवेश मात्रा में आज भी है। पर अब अधिकांशतया वय संन्धि पार होने के बाद ही विवाह सम्पन्न हो रहे है। इनके यहां बच्चो के विवाह की न्यूनतम आयु 15 वर्ष रखी गयी है जो शासन द्वारा निर्धारित आयु से कम है। इनके यहा अर्न्तविवाह का ही नियम स्वीकृत है और सगोत्र विवाह निषिद्ध है। सामाजिक व्यवस्था और रक्त की पवित्रता को बनाये रखने के लिये, पारिवारिक जीवन में शान्ति और सांस्कृतिक विषमता को समाप्त करने के लिये अर्न्तविवाह का नियम स्वीकृत है। चूकि सहरिया समाज में सगोत्र विवाह निषिद्ध है। पर अपवाद स्वरूप उसका उल्लंघन करने पर उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। इनके यहां मामा का गोत्र छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी विवाह किये जा सकते है।

सहरिया जनजातियों में एक विवाह प्रथा का ही प्रचलन है। एक समय मे एक पुरूष एक स्त्री के साथ ही विवाह कर सकता है। किन्तु पत्नी की मृत्यु के पश्चात सहरिया पंचायत की अनुमति से दूसरा विवाह कर सकता है। इनके यहां विधवा विवाह का भी प्रचलन है। पति की मृत्यु के पश्चात पंचायत की अनुमति से गोत्र सम्बन्धी नियमो का पालन करते हुए किसी दूसरे पुरूष के साथ रहने की अनुमति दे दी जाती है। चूंकि स्त्री को एक ही बार हल्दी चढ़ती है, अतः वैवाहिक क्रियाकलाप ऐसे में वर्जित रहता है। विधवा स्त्री को इनके यहां खाली कहा जाता है और स्त्री को खाली नही रखा जा सकता है। इसलिये विधवा विवाह अनिवार्य है। डा. जी. पी. द्विवेदी (2003) ने रीवा के कोल जनजातियों के सामाजिक परिवेश का अध्ययन किया और पाया कि सहरिया परिवारों की भांति कोल परिवारो में भी एक विवाह प्रथा का ही प्रचलन है पर विधवा विवाह का निषेध है। हमने अपने अध्ययन में देखा कि सहरिया परिवार में एक विवाह के प्रचलन के साथ साथ विधवा पुर्नविवाह की भी मान्यता है। इस प्रकार हमारा अध्ययन जी. पी. द्विवेदी के अध्ययन से कुछ सीमा तक ही मेल खाता है।

सामाजिक संगठन का एक अन्य आधार धर्म है। धर्म अलौकिक भाक्ति में विश्वास के रूप में माना जाता है। सहरिया जनजाति एक ऐसी जनजाति है जो ईश्वर पर विश्वास के साथ साथ निर्जीव वस्तुओं में भी अलौकिक शक्ति के निवास करने के तथ्य को स्वीकार करते हैं। हिन्दू समाज में प्रचलित मान्यताओं के अनुरूप सहरिया लोग आत्मवादी होते हैं और पुर्नजन्म में आस्था रखते हैं। हिन्दू देवी देवताओं के अतिरिक्त प्राकृतिक आत्माओं, वृक्षों आदि में अलौकिक भाक्ति के निवास के साथ साथ मृतात्माओं पर भी काफी विश्वास है। मृतात्माओं को ये अपना कुल देवता मानते है और अपने घर में ही मिट्टी का घरौंदा बना कर इन्हें प्रसन्न करने के लिये बलि देते हैं।

सहरिया समाज में धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न कराने के लिये कोई पण्डित या पुजारी नहीं आता। परिवार का वयोवृद्ध व्यक्ति ही विभिन्न आयोजनों में पुरोहित का कार्य करता है पर

वाह्य सम्पर्क (गैर–जनजातियों) के कारण गैर–आदिवासी ब्राह्मण इनके धार्मिक जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। यद्यपि ये अभी आरम्भिक स्तर पर ही है पर धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न कराने की मानसिकता विकसित हो रही है।

सहरिया जनजाति समय समय पर आने वाली बीमारियों, कष्टों और विपत्तियों से मुक्ति पाने के लिये बलि दे कर अदृश्य शक्ति को प्रसन्न करने का प्रयास करती है। इनमें नीम, पीपल, व अन्य वृक्षों की पूजा–अर्चना की जाती है। सहरिया जनजाति के लोग अज्ञानता व अतार्किक विचारों के कारण पुरातन परम्परा के अनुसार जीवन व्यतीत कर रहे हैं। डा एस सी दूबे (1961) ने कमार जनजातियों के अध्ययन में पाया कि कमार जनजाति के लोग मृत व्यक्ति का शरीर मढिया बनाकर रहने लगते हैं। उसी प्रकार सहरिया जनजातियों में मृत आत्मा के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास है। उनकी पूजा अर्चना समय–समय पर की जाती है।

जीवन निर्वाह के उपक्रम परम्परा और परिवर्तन–

प्रस्तुत अध्ययन में सहरिया जनजातियों के जीवन निर्वाह के उपक्रमों का विश्लेषण किया गया है। इसके अन्तर्गत तीन पक्षो को विश्लेषित किया गया है– प्रथम पक्ष के अन्तर्गत परम्परागत व्यवसायों का उल्लेख किया गया है वही दूसरे पक्ष में उनके स्वयं का व्यवसाय, भूस्वामित्व, भूमि अपवर्तन, प्रवर्जन और उसके कारणो को विश्लेषित किया गया। तीसरे पक्ष के अन्तर्गत आर्थिक वंचना के कारण और उसके दुष्परिणामो को, परम्परागत व्यवसायों के प्रति उनके दृष्टिकोण, व्यावसायिक गतिशीलता व श्रमविभाजन के विभिन्न स्वरूपो को विश्लेषित किया गया है।

अतीत में सहरिया जनजाति कृषि, वनोत्पाद के संग्रह, लकडी बेचना, मजदूरी करना और शिकार कर के जीवन निर्वाह करते थे। वनों पर शासकीय नियन्त्रण हो जाने के कारण वनोत्पाद संग्रह और शिकार निषिद्ध हो गया। वर्तमान में उनके द्वारा जीवन निर्वाह हेतु किये जाने वाले कार्यो में कृषि, कृषि सह–मजदूरी, चोरी छिपे वनोत्पाद संग्रह, तथा कुटीर उद्योग धन्धा मुख्य है। हमारे उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि न के बराबर है। सर्वाधिक उत्तरदाता भूमिहीन हैं। कुछ न्यूनतम उत्तरदाताओं के पास एक से साढ़े चार बीघा जमीन है, वह भी कम उपजाऊ की असींचित भूमि। हमारे उत्तरदाताओं के एक चौथाई से कम भाग के पास उतनी ही भूमि थी जितनी उन्हें अपने पूर्वजो से मिली थी जबकि तीन चौथाई से अधिक उत्तरदाता यह मानते है कि उनके पूर्वजो द्वारा भूमि का एक बड़ा हिस्सा या तो औने पौने दामों पर बेच दी गयी या ऋणदाता को हस्तान्तरित कर दी गयी। वह भूमि जिसका उनके पास पट्टा नहीं था वह भी बन्दोबस्त व्यवस्था के अन्तर्गत उनके हाथ से निकल गयी। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि सहरिया जनजातियो में अशिक्षा, ऋणग्रस्तता और सरल स्वभाव के कारण उनके हाथों से भूमि निकल गयी। उनको भूमि से बेदखल करने में बाहरी तत्वों का हाथ रहा जिसमें सहकारी नीतियां, प्रशासनिक उपेक्षा, जटिल न्याय व्यवस्था, साहूकार, ठेकेदार, और समाज के दबंग लोग मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं। इस कारण उनका आर्थिक आधार बहुत कमजोर रहा है।

भूमि अपवर्तन के परिणाम स्वरूप उत्तरदाताओं का तीन चौथाई भाग कृषित्तर मजदूरी पर निर्भर है। ये लोग जीविकोपार्जन के लिये पास के नगरीय इलाकों या कस्बों में चले जाते हैं।

उन्हें अपने जीविकोपार्जन के लिये कृषि सह–मजदूरी या अन्य प्रकार के मजदूरी पर निर्भर रहना पडता है। अत्यधिक गरीबी के कारण ये साहूकारों, ठेकेदारों व जमींदारों से कर्ज लेते हैं और बदले के रूप में बंधुआ मजदूरी के रूप में कार्य करते हैं। मुरम और पत्थर के खादानो मे इनका शोषण देखने को मिलता है।

वनोत्पाद सहरिया जनजातियों के जीवन निर्वाह का परम्परागत आधार रहा है। जगंल से मिले उत्पादों को चोरी छिपे इकट्ठा कर शहर में बेचते हैं और आवश्यक वस्तुयें क्रय करते हैं। सहरिया मधुमक्खी के छत्ते से शहद निकालने में माहिर होते हैं। यह ज्ञान उन्हें अपने पुरखों से मिला है। शहद बेचकर वे अच्छी आमदनी कर लेते हैं।

हमारे उत्तरदाताओं का दो तिहाई से अधिक भाग यह मानता है कि भूमि अपवर्तन का प्रभाव सबसे पहले उनके पारिवारिक संरचना पर पड़ा है। आर्थिक वंचना के वजह से उनके परिवार में परस्पर मतभेद, श्रमविभाजन व धन के असमान वितरण में झगडे के कारण उनका पारिवारिक संरचना असन्तुलित हुआ है। साथ ही जब जीविकोपार्जन के लिये पास के नगरीय इलाको में गये तो उनका सम्पर्क गैर–जनजातीय समाज से हुआ जिस कारण उनकी जीवन शैली भी प्रभावित हुई। उत्तरदाताओं का तीन चौथाई भाग यह मानता है कि जनजातीय मूल्यों, उनके आदर्श, प्रथा, परम्परा और रीति रिवाज में पहले की तुलना में कमी आयी है। जनजातीय जीवन शैली का भौतिक पक्ष इन बाहरी लोगों के सम्पर्क में आने के कारण सरलता से परिवर्तित हो गया पर अभौतिक संस्कृति में परिवर्तन न के बराबर है।

सहरिया जनजातियों में भूमि अपवर्तन के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के उद्योगों में कार्य करने के कारण उनकी सामान्य जीवन शैली भी प्रभावित हुई। हमारे उत्तरदाताओं का अधिकांश भाग यह मानता है कि पीढ़ियों से परम्परागत व्यवसायों में संलग्न होने की प्रवृत्ति के कारण कलकारखानो की दैनिक जीवन शैली को पूर्णतया आत्मसात नही कर पाये। ये लोग केवल आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य से मजबूरी मे इन उद्योग धन्धों मे लगे। इस प्रकार के कार्य इनके लिये उबाऊ प्रकृति का था जिसका प्रभाव इनके कार्य क्षमता पर पडा। औद्योगीकरण और नगरीकारण ने व्यक्तिपरक प्रवृत्ति को बढावा दिया है जिसके कारण पारस्परिक सम्बन्धों की प्रगाढता में कमी आयी है। इसका प्रभाव विवाह और परिवार जैसी महत्वपूर्ण संस्थाओं पर पडना शुरू हो गया है। आज सहरिया युवा अर्न्तविवाह के नियमो का उल्लंघन कर अपने समाज से बाहर विवाह कर रहे हैं जिससे तलाक की घटनायें बढ़ रही हैं।

अध्ययन में यह ज्ञात हुआ कि इनकी आय बहुत ही न्यूनतम है और ये औसत आय से ज्यादा व्यय करते है। इससे ये ऋणग्रस्त हो जाते है। फलस्वरूप इन्हे बंधुआ मजदूरी के लिये भी बाध्य होना पड़ता है। सहरिया जनजातियों को इस शोषण से बचाना आवश्यक है ।

आज सहरिया जनजातियों में अपने परम्परागत व्यवसायों के प्रति उपेक्षा की भावना पैदा होती जा रही है और वे आज विकासोन्मुख व्यवयसाय की ओर जाने का प्रयास कर रहे हैं। इनमें व्यापार, व्यवसाय, पशुपालन, कुक्कुट पालन आदि के प्रति अभिरूचि है। अतः इन्हें वैकल्पिक व्यवसाय प्रदान करने का सार्थक प्रयास आवश्यक है।

परम्परात्मक राजनीतिक व्यवस्था और नवीन पंचायती राज व्यवस्था–

प्रस्तुत अध्ययन में पारम्परिक पंचायत या जातिगत पंचायत व नवीन पंचायती राज व्यवस्था से सम्बन्धित तथ्यों का विश्लेषण किया जा रहा है। इस अध्ययन में यह देखा गया कि अन्य जनजातियों की भांति ही सहरिया जनजातियों में पंचायत व्यवस्था पारम्परिक रूप से विद्यमान रही है। उनकी पृथक जाति पंचायत होती है जिसमें तीन पद– माते, मुखिय और साना होते हैं। यह समय समय पर आवश्यकतानुसार जाति विषयक किसी भी समस्या के सन्दर्भ में निर्णय देने का कार्य करता है। उक्त पदों के गठन की भागीदारी के लिये 12 गांवों के सहरिया आते हैं और तीन सहरिया व्यक्तियों का चयन करते हैं। जब तक ये पद भरे रहते हैं तब तक अन्य व्यक्ति का चयन नही होता है।

सहरिया पंचायत समुदाय के सदस्यों के जीवन के प्रत्येक पक्ष को नियन्त्रित करती है तथा उसको निर्देशित करती है। पारम्परिक पंचायतों का मुख्य कार्य विवाह से सम्बन्धी मान्यताओं व निषेधों का पालन, समाज विरोधी कार्यो को रोकना, सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक कार्यो का निर्वहन करना है। इसके अतिरिक्त विधवाओं व परित्यक्ताओं के लिये पुर्नविवाह की अनुमति प्रदान करना, उत्तराधिकार सम्बन्धी विवादों का हल करना व मजदूरी सम्बन्धी विवादों का निराकरण करने का भी कार्य करती है। हमारी सर्वाधिक तीन चौथाई से अधिक उत्तरदाता यह मानते हैं कि परम्परागत पंचायते आज भी उपयोगी हैं।

वैधानिक प्रावधानों के कारण परम्परागत पंचायतों के अधिकार सीमित हो गये हैं, फिर भी पारम्परिक विवादों में परम्परागत पंचायतो को ही महत्वपूर्ण माना गया है। सहरिया पंचायतें अपनी विशिष्ट परम्पराओं को बनाये रखने का प्रयास कर रही हैं। पर वाह्य परिणामों के कारण आ रहे परिवर्तनों को रोक पाने में कठिनाई का अनुभव कर रही हैं। अध्ययन से यह विदित होता है कि सहरिया आज भी परम्परागत पंचायतों के प्रति आस्था रखते है। वैधानिक पंचायतों ने परम्परागत जाति पंचायत के अधिकार कार्यक्षेत्र व प्रभाव को प्रतिकूल प्रभावित किया है, फिर भी परम्परागत पंचायते भविष्य में बनी रहेंगी क्योंकि परम्परागत पंचायतें वैधानिक पंचायतों के कार्यो में हस्तक्षेप न करते हुए स्वयं की अनुरक्षा के प्रति जागरूक है।

सहरिया जनजाति केवल अपनी जातिगत पंचायतों के प्रति जागरूक नहीं है बल्कि वैधानिक पंचायतों व राजनीतिक क्रियाकलापों के प्रति भी जागरूक है। मतदान व्यवहार में इनके परिवार के स्त्री–पुरूष समान रूप से भागीदारी करते हैं। हमारे उत्तरदाताओं के सर्वाधिक तीन चौथाई से अधिक भाग ने पिछले पंचायत चुनाव में भागीदारी की थी। मतदान न करने वाले लोगों की संख्या न्यूनतम होती है।

हमारे उत्तरदाताओं का एक न्यूनतम भाग अभी हाल में हुए पंचायत चुनाव में पंच–सरपंच हेतु प्रत्याशी बने और निर्वाचित भी हुए। शेष ने प्रत्याशियों के लिये चुनाव कार्य में सहयोग दिया। चुनाव कार्य मे सहयोग का तात्पर्य प्रत्याशी को वोट दिलाने के लिये मतदाताओं से सम्पर्क, चुनाव प्रचार करना, इश्तहार लगाना आदि है। हमारे उत्तर दातओं का का एक न्यूनतम भाग चुनाव के समय राजनीतिक विचार विमर्श भी करते हैं। यह विचार विमर्श परिवार, पड़ोसी व जातिगत पंचायतों के सदस्यों के बीच की जाती है।

हमारे उत्तरदाताओं का सर्वाधिक भाग यह मानता है कि वैधानिक पंचायतें जनजातीय विकास में अधिक प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो पा रही हैं। पंचायत से जिन लोगो ने जनजातीय

क्षेत्रो में लाभ उठाया है वे या तो जनजातियों के निर्वाचित प्रतिनिधि थे या जनजातियों के परम्परागत अभिन्न वर्गो में से थें। अर्थात व्यवस्था परम्परागत हो या आधुनिक, जनसामान्य विकास से हमेशा ही वंचित रहा है। विकास योजनाओं का लाभ निर्वाचित नेतृत्व ही उठाने में सफल रहा है।

हमारे सर्वाधिक उत्तरदाता यह मानते है कि जनजातियों का सामजिक, आर्थिक विकास केवल जनजातीय संगठन से ही हो सकता है क्योंकि गैर–जनजातीय सदस्यों द्वारा उनके प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया जाता है। यह उपेक्षापूर्ण व्यवहार सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक क्षेत्रों में अधिक किया जा रहा है। इसलिये जातिगत संगठन का होना आवश्यक है।

सहरिया जनजातियों की मुख्य समस्यायें–

प्रस्तुत अध्ययन में सहरिया जनजातियों की मुख्य समस्याओं को भी विश्लेषित किया गया। सहरिया समाज की समस्यायें बहुआयामी है पर विश्लेषण के लिये जिन बिन्दुओं को लिया गया उनमें सामाजिक व धार्मिक कुरीतियां, अशिक्षा, निर्धनता व बेरोजगारी, भूमि हस्तान्तरण और प्रवर्जन मुख्य है। तथ्यों के विश्लेषण के बाद हमने पाया कि अशिक्षा, बाल विवाह, नशाखोरी, अन्धविश्वास की समस्या सहरिया जनजातियों में अधिक है। हमारे सर्वाधिक उत्तरदाता अशिक्षित हैं और उन्हे इस बात की जानकारी नही है कि शासन द्वारा उनके बच्चों के विवाह की आयु निर्धारित की गयी है। वे आज भी अपने बच्चों का विवाह 15–17 वर्ष के बीच सम्पन्न कर देते हैं। इनके यहां अन्धविश्वासिता भी अधिक मात्रा में पायी जाती है। ये लोग समय समय पर आने वाली बीमारियों, कष्टों और विपत्तियों से मुक्ति पाने के लिये अदृश्य शक्ति को प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं। जादू–टोना, झाड–फूँक, अनिष्ट के पीछे मृतात्मा का प्रकोप आज भी ये स्वीकार करते हैं। हमारे तीन चौथाई से अधिक उत्तरदाता मद्यपान का सेवन करते हैं। मद्यपान में महुआ का बना हुआ कच्चा शराब का अधिक मात्रा में सेवन करते हैं। ये कच्ची शराब स्वयं बनाते है और कुछ मात्रा में क्रय करते हैं।

सरकारी आंकड़े के अनुसार ग्वालियर सम्भाग के सहरिया परिवार गरीबी रेखा के नीचे निवास कर रहे हैं। इनकी जीविकोपार्जन अर्थव्यवस्था बाजार व्यवस्था में बदल गयी है। इस परिवर्तन ने इन्हे त्रस्त कर दिया है। इनमें भूमि अपवर्तन या हस्तान्तरण की समस्या सर्वाधिक है। इनके पड़ोसी समुदायों कुर्मी, मुस्लिम, मारवाड़ी, पंजाबियों ने इनके भूमि पर अतिक्रमण कर लिया जिस कारण अधिकांश सहरिया भूमिहीन हो गये हैं और अब जीविकोपार्जन के लिये केवल मजदूरी पर निर्भर हो गये हैं। उत्तरदाताओं का सर्वाधिक भाग मजदूरी करके अपनी जीवन निर्वाह कर रहे है। भूमिहीन होने और मजदूरी पर आश्रित होने के कारण नगरीय इलाकों में प्रवास के लिये बाध्य हैं। ये ऋणग्रस्तता व कुपोषण की समस्या से ग्रसित हैं। ऋणग्रस्तता के कारण उनका शोषण जागीरदारों, जमींदारों और साहूकारों ने किया। उन्हे बंधुआ मजदूर बनकर अपने कर्ज का निपटारा करना पडता है। निर्धनता और ऋणग्रस्तता के कारण उन्हे सन्तुलित आहार भी नही मिल पा रहा है जिससे वे कुपोषण के शिकार हो रहे हैं। निर्धनता, ऋणग्रस्तता, साहूकारों और महाजनों द्वारा आर्थिक शोषण आर्थिक समस्याओं के विभिन्न स्वरूप हैं।

भूमि और वनों पर जनजातियों के अधिकारों का हनन, अपव्यय की प्रवृत्ति, अशिक्षा, भाग्यवादिता व संकुचित विचारधारा सहरिया समाज की निर्धनता के मुख्य कारण है। निर्धनता

के कारण तीन चौथाई से अधिक उत्तरदाता सेठ, साहूकारों और महाजनों के ऋणी हैं। आकस्मिक व्यय की पूर्ति हेतु इन्हे ऋण लेना पड़ता है।

आवास की समस्या इनकी मुख्य समस्या है। सर्वाधिक उत्तरदाता कच्ची मिट्टी के बने मकानों में रहते है जिसमें केवल एक या दो कमरे बने हुए हैं। ये लोग आपसी सहयोग से मकान बना लेते हैं। मकान बनाने की आवश्यक सामग्री वनों से प्राप्त कर लेते हैं। शासन ने इन्हें कुटीर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की है पर शासन द्वारा बनाये गये कुटीरों में ये नही रहना चाहते है। इसका मुख्य कारण कुटीर का उनकी बस्ती से बहुत दूर होना है। असुरक्षा, एकाकीपन, अन्य स्वजातीय लोगो की दिनचर्या में सम्मलित न होने के कारण ये लोग उसे पसन्द नही करते हैं। स्वयं के भवन बनाने या उसमें सुधार के लिये भी शासन द्वारा सुविधायें उपलब्ध करायी जाती हैं पर जानकारी के अभाव में उन्हे इसका लाभ नही मिल पा रहा है।

सहरिया जनजातियों में गत्यात्मकता का मूल्यांकन–

प्रस्तुत अध्ययन में उन कारकों का विश्लेषण किया गया जो गतिशीलता को बढ़ाने में अपना योगदान देते हैं। इसमें एक ओर गतिशीलता के साधक कारकों यथा संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण, औद्यौगीकरण व नगरीकरण की प्रक्रिया को सहरिया समाज पर पड़ने वाले प्रभावों को विश्लेषित किया गया तो दूसरी तरफ इनके विकास हेतु संचालित योजनाओं, कल्याण कार्यक्रमों और उनके क्रियान्वयन को विश्लेषित किया गया।

तथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त हमने पाया कि गतिशीलता के साधक कारकों ने सहरिया जनजीवन को प्रभावित किया है। हमारे एक तिहाई से अधिक उत्तरदाता यह मानते हैं कि उनके रीतिरिवज, कर्मकाण्ड, विचारधारा, व जीवन पद्धति गैर–जनजातियों से भिन्न है पर वे गैर–जनजातियों के रीति रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा व जीवन पद्धति को अपने जीवन में उतारने का प्रयास कर रहे हैं जिससे उनके सामाजिक स्थिति में सुधार हो सके। हमारे अधिकांश उत्तरदाता धार्मिक कृत्यों, भोजन करने, महिलाओं को अधिकाधिक स्वतन्त्रता देने व बच्चों के जीवन साथी के चयन में आधुनिकता के उतने हिमायती नहीं हैं जितना व्यवसाय चयन और पहनावे में। इससे यह स्पष्ट होता है कि संस्कृति के प्रमुख क्षेत्रों धर्म, विवाह, पारिवारिक मर्यादा व आचार व्यवहार में गतिशीलता की मात्रा कम है जबकि व्यवसाय या पहनावे में अधिक। हमारे आधे से अधिक उत्तरदाता परम्परागत व्यवसायों के स्थन पर विकासोन्मुख पेशों में लगना चाहते हैं। इसका प्रमुख कारण परम्परागत पेशों की अनुपयुक्तता, नये व युवा सदस्यों द्वारा परम्परागत व्यवसायों को अपनाने का विरोध, श्रम साध्य व हीनता का सूचक होना है। वे व्यसाय, रोजगार व मजदूरी के लिये गावं की अपेक्षा नगर को अधिक उपयुक्त मानते है क्योकि नगर का वातावरण औद्यौगिक है। यातायात व संचार की अधिकता, कार्यकुशलता में वृद्धि व अधिक मजदूरी इसका कारण है।

परिवर्तन को घटित करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है पर हमारे सर्वाधिक उत्तरदाता अशिक्षित हैं। पुरूषों में नाम मात्र की शिक्षा है पर महिलाएं शत प्रतिशत अशिक्षित हैं। हालांकि जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा का स्तर ऊँचा करने के लिये शासन द्वारा पर्याप्त प्रायस किये जा रहे हैं। आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा आदिवासी बच्चों को शासन द्वारा शैक्षणिक सुविधायें

उपलब्ध करायी जा रहीं हैं। फिर भी सहरिया समाज में शिक्षा के प्रति अभिरूचि पैदा नहीं हो पायी। इसका मुख्य कारण यह है कि वे यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि किस प्रकार शिक्षा उनके जीवन निर्वाह में सहायक हो सकती है। पाठशाला, पाठ्यक्रम, शिक्षक, शाला का समय, बच्चों का पारिवारिक दायित्व, घर व परिवार का वातावरण आदि ऐसे अनेक कारक हैं जिससे आदिवासी बालक व समुदाय शिक्षा के प्रति उदासीन है। वे शिक्षा के स्थान पर रोजी रोटी में व्यस्त रहते हैं। पढाई के स्थान पर पेट भरना इनका प्राथमिक कार्य होता है। इस समस्या के समाधान हेतु आवश्यक है कि ऐसी शिक्षा योजना बनायी जाये जो शिक्षा के साथ साथ निश्चित आय प्रदत्त कर सके। उनमें स्वरोजगार की क्षमता उत्पन्न करे। उन्हें अपने घर या गावं में ही रोजगार के अवसर उपलब्ध हों। उन्हे इस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है जो आर्थिक सम्बल और रोजगार प्रदत्त कर सके।

अध्ययन के दूसरे भाग में आदिवासियों के विकास हेतु चलायी जा रही शसकीय योजनाओं एवं उनके क्रियान्वयन का मूल्यांकन किया गया। हमारे सर्वाधिक उत्तरदाता यह मानते हैं कि जनजातीय कल्याण हेतु सरकारी योजनायें संचालित हो रही हैं और इन योजनाओं में लगान माफी, काम के बदले अनाज, कम ब्याज पर ऋण की सुविधा, विभिन्न क्षेत्रों में आरक्षण, जवाहर रोजगार योजना, कुटीर उद्योग धन्धों के लिये प्रोत्साहन, कृषि और पशुपालन के लिये सहायता, आदि मुख्य हैं। पर इन योजनाओं का क्रियान्वयन इस ढंग से किया जा रहा है कि सहरिया समुदाय को इसका वांछित लाभ नहीं मिल पा रहा है। अधिकांश उत्तरदाताओं की दृष्टि में जनजातीय कल्याण हेतु जो भी प्रयास किये जा रहे हैं वे कागजी अधिक व्यवहारिक कम है। हमारी तीन–चौथाई से अधिक उत्तरदाता उनके उत्थान हेतु चलायी जा रही योजनाओं के क्रियान्वयन से असन्तुष्ट हैं। इसका मुख्य कारण योजनाओं का कागजी कार्यवाही अधिक होना, अधिकारियो द्वारा योजनाओं के क्रियान्वयन में रूचि न लिया जाना, कमजोर वर्ग के लोगो के साथ भेदभाव व उपेक्षित व्यवहार, जनसंख्या के अनुपात में मिलने वाली सुविधाओं का नगण्य होना, मुख्य रूप से चिन्हित किये गये। हमारे उत्तरदाताओं ने स्पष्ट किया कि कार्यक्रम और योजनायें उद्देश्य–पूर्ण होने के बावजूद भी इनके क्रियान्वयन में ढिलाई व भ्रष्टाचार के कारण सभी कार्यक्रम अर्थहीन हो गये। वांछित लाभ इन गरीब और कमजोर वर्गों को नही मिल पाया। इसके अतिरिक्त सहरिया समाज का अशिक्षित होना और सरकारी कर्मचारियों के मनमानी के कारण सरकारी सुविधाओं का लाभ इन्हें नही मिल पा रहा है।

उक्त विवेचना के आधार पर सहरिया जनजातियों के विषय में कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते है उनको हम निम्न बिन्दुओं में रख रहे हैं–

1. सहरिया जनजाति कोलारियन परिवार की और ग्वालियर की प्रमुख जनजाति है। यह अपनी उत्पत्ति राजस्थान के भीलों के छोटे भाई के रूप में मानते हैं। यद्यपि जनजाति संस्कृति एक अखण्ड व्यवस्था है और यह माना जाता है कि इसमें अभिजात लोक संस्कृति के तत्व सम्मलित नही हैं, किन्तु सहरिया जनजाति में हिन्दू संस्कृति के लोक तत्व विद्यमान हैं।

2. सहरिया समाज की सामाजिक स्थिति समाज में अपेक्षाकृत निम्न है और उन्हें गैर–जनजातियों की उपेक्षा व उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। यह स्थिति सामाजिक

संगठन एवं एकता की दृष्टि से गम्भीर मानी जानी चाहिये।

3. सहरिया जनजातियों में समाजिक संगठन का मुख्य आधार संयुक्त परिवार व्यवस्था है। इनके यहाँ परिवार पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय और पितृवंशीय पाये जाते हैं। परिवार में महिलाओं की स्थिति अपेक्षाकृत निम्न है तथापि सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक क्षेत्रों में काफी स्वतन्त्रता है। घर परिवार के आर्थिक प्रबन्धन में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। परिवार का बड़ा होना या संयुक्तता का मुख्य कारण कृषि था। पर जैसे–जैसे कृषि योग्य भूमि अन्य लोगों को हस्तान्तरित होती गयी सहरिया परिवार की संयुक्तता टूटती गयी।

4. सहरिया जनजातियों में अन्तर्विवाही समूह, को मान्य किया गया है जबकि सगोत्र विवाह निषिद्ध है। अतः अपवाद स्वरूप इनका उलंघन होने पर जाति पंचायत द्वारा कठोर दण्ड का प्रावधान है। इस प्रकार सांस्कृतिक क्षेत्रों जैसे विवाह, खान पान, महिलाओं की स्वतन्त्रता आदि क्षेत्रो में अधिकांश लोग पालन करत पाये गये।

5. सहरिया जनजाति धर्म एवं तत्समबन्धी हिन्दू धर्म से प्रभावित है। इनके यहां हिन्दू देवी देवताओं की पूजा की जाती है। इसके अतिरिक्त इनके देवी देवता भी हैं। धार्मिक विश्वासों में विशेष परिवर्तन दिखाई नही देता है। धार्मिक क्रियाकलाप एवं कर्मकाण्ड स्वयं सम्पन्न करते हैं।

6. सहरिया जनजातियों की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार परम्परागत रू‍प से कृषि और पशुपालन था। किन्तु यह जनजाति अपनी भूमि को सुरक्षित नही रख पायी। यद्यपि सरकार द्वारा इनके भू अधिकरो की सुरक्षा के लिये इन्हें भूमिधर श्रेणी प्रदान किया गया और भूमि को बेचने या उपहार देने या गिरवी रखने पर प्रतिबंध लगा दिया गया, फिर भी इनकी अधिकाशं भूमि गैर–जनजातियों के पास चली गयी।

7. वर्तमान में सहरिया जनजाति एक भूमिहीन जनजाति है जिसका मौलिक पेशा लकडी बेचना, अस्थायी कृषि करना, कृषि मजदूरी करना, वनोत्पाद संग्रह करना है। वनो पर शासकीय नियन्त्रण हो जाने के कारण वनोत्पाद का संग्रह व शिकार निषिद्ध हो गया। जीविकोपार्जन हेतु ये कृषि मजदूरी या मजदूरी पर निर्भर है। इन्हें व्यापार और पशुपालन मे रूचि है अतः वैकल्पिक व्यवस्था करने की सार्थक पहल आवश्यक है।

8. यह दुर्व्यसनों, विवाह, कर्मकाण्ड व उत्सव पर आय से अधिक व्यय करते हैं। इस कारण अधिकांश परिवार ऋणग्रस्तता की स्थिति में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। फलस्वरूप ये साहूकारो के शोषण के शिकार होते हैं। धनाभाव व ऋणग्रस्तता भूमि हस्तान्तरण का मुख्य कारण है।

9. भूमि व वनों पर जनजातियों के अधिकारो का हनन, विवाह, मृत्यु, मेलों, उत्सवों आदि पर क्षमता से अधिक व्यय करने की प्रवृत्ति ने सहरिया जनजातियों के आर्थिक स्तर को बदतर बनाया है। सुविधाओं के बावजूद अशिक्षा, सरल स्वभाव, व भाग्यवादी होने के कारण वे निम्न जीवन स्तर निर्वहन कर रहे हैं।

10. कृषि भूमि के अभाव में जीविकोपार्जन के लिये इधर उधर जाने के कारण सहरिया

जनजातियों की जीवन शैली प्रभावित हुई है। इनका जनजातीय स्वरूप, मूल मान्यतायें प्रथा व परम्परा, खान– पान, रहन– सहन, वेष –भूषा परिवर्तित हो रहा है। जीवन शैली में परिवर्तन का मुख्य कारण गैर–जनजातियों का सर्म्पक है।

11. संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकारण का प्रभाव भी उत्तरदाताओं पर देखा गया। गैर–जनजातियों का रहन–सहन, रीति–रिवाज, विचारधारा व कर्मकाण्ड, जीवन विधि जाने अनजाने में अधिकांश लोग स्वीकार करने लगे हैं। इसी तरह पश्चिमीकारण और आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण इस जनजाति में उन्नत तकनीकि, तार्किक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण परम्परात्मक मूल्यों को प्रभावित कर रही है। वाह्य संस्कृतियों का प्रभाव व सरकारीकरण के कारण आधुनिक परिवर्तन इनमें आरम्भ हो गये हैं।

12. औद्यौगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रियाओं ने गतिशीलता को बढ़ाया है। व्यवसाय व रोजगार के क्षेत्र में गतिशीलता देखने को मिली है।

13. विभिन्न सरकारी योजनाओं के परिणाम स्वरूप इनकी भौतिक संस्कृति में परिवर्तन हो रहा है। इनके उत्थान के लिये सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं एवं सरकारी प्रयासों को इन्होने महत्वपूर्ण माना। साथ ही इस बात को दृढ़ता से स्वीकार भी किया कि सरकारी प्रयासों से जितना लाभ उन्हे मिलना चाहिये था उतना नहीं मिल पाया।

14. अधिकांश लोग यह स्वीकार करते हैं कि सरकार द्वारा सहरिया जनजातियों के उत्थान के लिये जो भी योजनायें क्रियान्वयन की जाती हैं उसका अधिकांश लाभ उन्हें नहीं मिल पा रहा है क्योंकि उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति कमजोर है और गैर–जनजातियों द्वारा बहुत अधिक मात्रा में हस्तक्षेप किया जाता है। सरकारी योजनाओं का वांछित लाभ न मिल पाने का मुख्य कारण सरकारी कर्मचारियों द्वारा किया जाने वाला पक्षपात भी है।

15. गैर–जनजातियों द्वारा इनका शोषण, उत्पीड़न और दुर्व्यवहार किया जाता है जिसके कारण उनमें जातिगत चेतना बढ़ी है और जातिगत संगठन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है।

16. जनजातियों में शिक्षा का स्तर ऊँचा करने के लिये शासन द्वारा प्रर्याप्त प्रयास किये जा रहे हैं। फिर भी सहरिया जनजातियों में शिक्षा के प्रति अभिरूची पैदा नहीं हो पायी। शिक्षा के प्रति अभिरूची पैदा न होने का मुख्य कारण यह है कि वे यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि किस प्रकार शिक्षा उनके जीवन निर्वाह के लिये सहायक सिद्ध हो सकती है। बच्चों की पढ़ाई के स्थान पर पेट भरना इनका प्राथमिक कार्य होता है। अतः यह आवश्यक है कि ऐसी शिक्षा योजना बनायी जाये जो शिक्षा के साथ साथ निश्चित आय भी दे सके। उनमें स्वरोजगार की क्षमता उत्पन्न करे और आर्थिक सम्बल व रोजगार प्रदान कर सके।

17. अध्ययन से यह विदित हुआ कि जनजातियों का समग्र विकास न होने का एक कारण यह भी है कि विकास की प्रक्रिया अवैज्ञानिक रूप से लागू की गयी। जनजातियों का वर्गीकरण भी अवैज्ञानिक व राजनीतिक दृष्टि से प्रेरित हो कर किया गया। राजनीतिक स्वार्थ की दृष्टि से देखने पर न तो सही वास्तविकता का आकलन होता है और न ही अवलोकन। अतः विकास योजना बनाते समय यह ध्यान रखा जाये कि विकास प्रक्रिया ऐसी हो जिससे

उनकी सांस्कृतिक गरिमा नष्ट न हो। उनकी आत्मनिर्भरता, आत्म विश्वास और जातीय गर्व बना रहे।

सन्दर्भ

कपाडिया, के एम, 1959, द फेमिली इन ट्रान्जिशन, सोशियोलाजिकल बुलेटिन, खण्ड–8, अंक–2।

द्विवेदी, जी पी, 2003, कोल जनजातियों का सामाजिक परिवेश, समाज वैज्ञानिकी, अंक–5।

दूबे, एस सी, 1961 द कमार, लखनऊ।

उपाध्याय, अरूण, 2021 जनजातीय समाज में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन, मानव, वर्ष–39, अंक– 1–2

शर्मा, तारा, 2007 खरिया जनजीवन, के के पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।

उत्प्रेती, हरीश चन्द्र, 2000 भारतीय जनजातियां –संरचना और विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

शर्मा, निर्मला, 1997 बुन्देलखण्ड की सहरिया जनजाति, मानव, वर्ष–25, अंक–2।

अशोक कुमार यादव[1], डॉ. सर्वेन्द्र यादव[2]

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

मेलघाट टाइगर रिजर्व क्षेत्र में कोरकू जनजाति के स्वास्थ्य और पोषण स्थिति पर एक अनुभवजन्य अध्ययन

सार संक्षेप

स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण, बुनियादी जरूरत और मानव जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है। मानव स्वास्थ्य का निर्धारण पोषण की स्थिति पर निर्भर करता है जो मुख्य रूप से व्यक्ति के आहार और जीवन शैली से निर्धारित होता है । आहार उन खाद्य पदार्थों और पेय पदार्थों का योग है जो एक व्यक्ति खाता है। एक व्यक्ति की पोषण स्थिति उनके आहार और जीवन शैली दोनों से प्रभावित हो सकती है। खराब आहार और जीवन शैली विकल्पों से पोषक तत्वों की कमी हो सकती है, जो बदले में स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म देती है। विश्व स्तर पर, दुनिया की आधी आबादी का गठन ग्रामीण व आदिवासी क्षेत्र करती हैं। आजादी के बाद स्वास्थ्य और पोषण पर नियंत्रण के बावजूद, भारत में आधी आबादी उचित पोषण की कमी के कारण विभिन्न सह–रुग्णताओं से पीड़ित है। पोषण संबंधी विभिन्न कारण जैसे आयु, लिंग, शरीर का आकार, संस्कृति, स्वास्थ्य स्तर, आहार का प्रभाव और शारीरिक क्रियाओं की मात्रा आदि घटक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप एनीमिक और कुपोषित होते हैं, जो आगे चलकर अनेक स्वास्थ्य समस्याओं से पीड़ित होते हैं। इन सभी कारकों की प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए, यह अध्ययन मध्य भारत के सतपुड़ा क्षेत्र के प्रमुख जनजातीय समूहों में से एक कोरकू पर केंद्रित हैं, जो महाराष्ट्र के अमरावती जिले में स्थित मेलघाट टाइगर रिजर्व क्षेत्र के पिछड़े क्षेत्रों मे 600 से अधिक वर्षों से निवास करती है। वर्तमान अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कोरकू जनजाति की स्वास्थ्य एवं पोषण स्थिति ज्ञात करना है। इस क्रॉस–सेक्शनल आधारित अध्ययन में कुल 301 उत्तरदाताओं को शामिल किया गया था। आकड़ों का संकलन घर–घर सर्वेक्षण द्वारा एक पूर्वनिर्धारित और पूर्व–परीक्षण अनुसूची का उपयोग करके एकत्र किया गया। बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआई) के अंतर्राष्ट्रीय कटऑफ अंक का उपयोग (बीएमआई ≥18) कम वजन, अधिक वजन (बीएमआई ≥25–30) और मोटे (बीएमआई <30) के रूप में वर्गीकृत करने के लिए किया गया। सरल अनुपात की गणना की गई, और एसपीएसएस संस्करण 25 का उपयोग करके सांख्यिकीय महत्व के लिए काई –स्क्वायर ($\chi 2$) और एनोवा परीक्षण किया गया। अध्ययन के निष्कर्ष में कम वजन, सामान्य वजन और अधिक वजन मोटापा क्रमशः 37.9%, 57.4% और 4.8% पोषण स्तर पाया गया। स्त्रियों और पुरुषों के औसत भार, शारीरिक लम्बाई, कमर परिधि, रक्तदाब सिस्टोलिक में अंतर देखने को मिला है जबकि बीएमआई, रक्तदाब डायास्टोलिक, बाइसेप्स में कोई अंतर नहीं मिला है।

सूचक शब्द : आदिवासी, पोषण की स्थिति, मानवमिति माप, बीएमआई।

[1](पी–एच. डी.शोधार्थी), डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश, भारत
email-coolashok451@gmail.com
[2]असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर, मध्य प्रदेश, भारत
email-sarvendra2u@gmail.com

परिचय

कोरकू मध्य भारत के सतपुड़ा क्षेत्र के प्रमुख जनजातीय समूहों में से एक है और वे महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में केंद्रित हैं। उनका नाम 'कोरू' शब्द के संयोजन से है जिसका अर्थ है 'आदमी' और 'कू' जो इसे बहुवचन बनाता है, जिसका अर्थ है 'आदिवासी मानव' (रसेल, 1916)। कोरकू मुंडा जनजातियों की एक शाखा हैं और यह जनजाति– गोंड (रायकवार और शर्मा, 2016) के आसपास के क्षेत्र में स्थित हैं। ताप्ती नदी के दोनों किनारों पर सतपुड़ा पर्वतमाला के जंगलों में मूल रूप से एक शिकार–संग्रहकर्ता समुदाय माना जाता है। पिछले कुछ दशकों के शोध अध्ययनों से पता चला है कि कोरकू गंभीर कुपोषण की चपेट में हैं। 1992 और 1997 के बीच मेलघाट, महाराष्ट्र में इस समुदाय के अनुमानित 5000 आदिवासी बच्चों की कुपोषण से मृत्यु हो गई (दास, 2010) । इन इलाकों में आज भी स्थिति जस की तस बनी हुई है। मेलघाट, महाराष्ट्र में आदिवासी आबादी के बीच कुपोषण और कुपोषण से होने वाली मौतों के उच्च प्रसार के लिए भी प्रसिद्ध है (द टाइम्स ऑफ इंडिया, 2008)।

राष्ट्रीय पोषण निगरानी ब्यूरो (एनएनएमबी), राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस) द्वारा किए गए राष्ट्रव्यापी अध्ययनों पर भारत में जनजातीय बच्चों की पोषण स्थिति का पता लगाया गया था। एनएफएचएस–4 सर्वेक्षण रिपोर्ट से पता चलता है कि महाराष्ट्र में, पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की पोषण स्थिति में सुधार हुआ है क्योंकि पिछले दशक में एनएफएचएस–3 में स्टंटिंग 46% से घटकर 34% हो गया और बच्चों में कम वजन का प्रतिशत 37% से मामूली रूप से कम होकर 36% हो गया है। आगे इसी कार्यकाल में वास्टिंग से पीड़ित बच्चों का अनुपात 17% से बढ़कर 26% हो गया और 33% आदिवासी बच्चे अभी भी वास्टिंग से पीड़ित थे।

भुखमरी और कुपोषण रिपोर्ट (2012) के अनुसार सरकार कुपोषण से निपटने के लिए अभी भी पोषक दोपहर भोजन कार्यक्रम (एनएमपी) चलाती है, दुनिया के तीन कुपोषित बच्चों में से एक भारतीय है। पांडे, कुंदन (2013) ने कहा है कि 2012 की कुपोषण रिपोर्ट बताती है कि देश के 59 प्रतिशत बच्चों का विकास अवरुद्ध हो सकता है और 42 प्रतिशत का वजन कम हो सकता है।

अध्ययनों से पता चला है कि ऐसे कई कारक हैं जो पोषण की स्थिति को प्रभावित करते हैं, जिनमें गरीबी, खराब आहार और घरों की पर्यावरणीय स्थिति शामिल है। ये कारक बच्चों में विकास को बाधित कर सकते हैं और शरीर के वजन या ऊंचाई में कमी ला सकते हैं। हालांकि गरीबी अल्पपोषण का एक कारक होती है (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2004)। कुमार और गौतम (2014) ने मध्य भारत के बीड़ी श्रमिकों के बीच लिंग–वार पोषण मे अंतर की सूचना दी है। उन्होंने यह भी बताया कि बॉडी मास इंडेक्स मानवमिति माप और शारीरिक और सामाजिक–आर्थिक लक्षणों द्वारा निर्धारित किया जाता है। राव (2003) ने चिन्हित किया है कि जलवायु और स्थलाकृतिक स्थिति आदिवासी संस्कृति और उनके स्वास्थ्य और धन को अलग–थलग करने और संरक्षित करने के लिए जिम्मेदार रही है। पंत, बी.आर. (2010) ने ठीक ही कहा है कि आदिवासी विशेष रूप से सबसे कम आय वर्ग के लोग हैं जो पूरी तरह से गरीबी में रहते हैं और पोषक तत्वों की गंभीर कमी में भी जीवित रहते हैं, इनकी कमी से संबंधित बीमारियों सहित कई

और बीमारियों को आमंत्रित करते हैं। रिजी, हरि (2006) ने कहा है कि तकनीकी अतिक्रमण के कारण वन क्षेत्रों में लगातार गिरावट आ रही है, जो आदिवासियों को नए वातावरण में स्थानांतरित करने के लिए मजबूर करता है और इसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य समस्याओं, रुग्णता और अत्यधिक कुपोषण और साथ ही वित्तीय समस्याओं का कारण बनता है। दाश और नायडू (2007) ने जोर देकर कहा कि जनजातीय लोग अपने स्थान, संस्कृति, भाषा और विभिन्न पारिस्थितिक रूप से सेटिंग के बावजूद विशेष रूप से उनमें कैल्शियम, कैरोटीन और आयरन के सेवन में पोषक तत्व की मुख्य रूप से बहुत कमी पाई गई थी। राजेश्वरी (2012) के अनुसार, अनिवार्य रूप से दो अलग–अलग चीजें हैं जिनके माध्यम से स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार किया जा सकता है। पहला आर्थिक विकास और रोजगार जबकि दूसरा भोजन की खपत, सामुदायिक स्वास्थ्य, चिकित्सा देखभाल, बुनियादी शिक्षा और जागरूकता का विशिष्ट समर्थन सामान्य स्वास्थ्य स्थितियों को बदल सकता है।

आदिवासियों का आहार सबसे महत्वपूर्ण कारक है जो उनके बीच पोषण की स्थिति को नियंत्रित करता है। यह प्रकृति द्वारा ही सीमित है और सीमित संसाधनों, पत्तेदार सब्जियों की मौसमी उपलब्धता, पानी की कमी आदि के कारण और अधिक संवेदनशील हो जाती है। हरलॉक (1985) ने कहा है कि कुपोषण गरीबी के कारण हो सकता है, लेकिन अक्सर यह पोषक तत्वों से भरपूर भोजन और आहार के बारे में माता–पिता की अज्ञानता के कारण खाने की खराब आदतों से उत्पन्न होता है। मोआतुला, हेमखोथांग ल्हुंगदिम (2014) ने बताया है कि बच्चों में कुपोषण बच्चे, माँ और घरेलू वातावरण से सीधे जुड़े कई कारकों के कारण होता है। काजिमी और काजिमी (1979) ने देखा है कि नाइजीरियाई इग्बो जनजाति के बीच डायरिया, कुपोषण और मौतों की व्यापकता को अस्वच्छ परिस्थितियों में पूरक भोजन के शुरुआती परिचय और भोजन के बारे में माताओं की अज्ञानता के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

उद्देश्य

पिछले शोधों और अध्ययनों के आधार पर प्रस्तुत वर्तमान अनुभवजन्य अध्ययन का उद्देश्य अमरावती, महाराष्ट्र के मेलघाट टाईगर रिजर्व क्षेत्र के कोरकू जनजाति में कुपोषण की व्यापकता और कुपोषण से जुड़े कारकों का पता लगाना है ।

शोध प्रविधि

इस वर्तमान क्रॉस–सेक्शनल डोर–टू–डोर सर्वेक्षण में अनुभवजन्य अनुसंधान डिजाइन को अपनाया गया। महाराष्ट्र के मेलघाट टाइगर रिजर्व क्षेत्र के 100 कोरकू जनजाति परिवारों के 301 उत्तरदाताओं के बीच जनवरी से फरवरी, 2019 के महीने में यह सर्वेक्षण आयोजित किया गया था। पूर्व–परीक्षणित, अर्ध–संरचित साक्षात्कार अनुसूची में महाराष्ट्र के अमरावती के मेलघाट टाइगर रिजर्व क्षेत्र के स्तरीकृत गांवों के यादृच्छिक रूप से चयनित परिवार के सदस्यों से जैव– सामाजिक–आर्थिक, जनसांख्यिकीय, स्वास्थ्य प्रोफाइल और मानवमितीय माप के गणनात्मक और गुणात्मक आकड़ों का संकलन किया गया था।

हाल ही की स्वास्थ्य समस्याओं और आहार संबंधी आदतों के प्रति उनकी धारणा, ज्ञान और व्यवहार के लिए भी व्यक्तियों का साक्षात्कार लिया गया। मानव निर्मित पर्यावरण के प्रभाव का

आकलन करने के लिए, आदतों, संसाधनों और अन्य कारकों पर केंद्रित समूह चर्चा, अवलोकन और साक्षात्कार भी आयोजित किए गए। आईसीएमआर आहार दिशा–निर्देशों का उपयोग करके आहार सेवन का मूल्यांकन किया गया और दुनिया भर में स्वीकृत बीएमआई का उपयोग पोषण स्तर के आकलन के लिए किया गया। डब्ल्यूएचओ–एलएमएस विधियों का उपयोग <20 वर्ष की आयु के बच्चों और डब्ल्यूएचओ, एशिया–प्रशांत बीएमआई वर्गीकरण और जेएनसीवीआईआई के बीच पोषण की स्थिति का अनुमान लगाने के लिए किया गया। पूर्व–मानकीकृत उपकरणों का उपयोग करके शारीरिक विकास और पोषण, एंथ्रोपोमेट्रिक और शारीरिक माप भी लिए गए। वयस्कों का वजन किलोग्राम (किलो) में निकटतम 100 ग्राम तक साल्टर की तौल मशीन का उपयोग करके मापा गया। डेटा एकत्र करने के बाद, एसपीएसएस और एमएस एक्सेल वर्कशीट विश्लेषण के लिए इस्तेमाल किया गया।

परिणाम एवं परिचर्चा

1. कोरकू जनजाति की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

कोरकू प्रजातीय दृष्टिकोण से प्रोटो–ऑस्ट्रेलॉयड समूह के हैं। गोल चेहरा, चौड़ा नाक, छोटी आँखें, उठे हुए गाल, गहरा काला रंग से लेकर साँवला तथा गोरा रंग एवं काले घुँघराले बाल इनकी विशेषता है। पुरुषों और महिलाओं की औसत लंबाई 5 फीट से लेकर 6 फीट के बीच होती है। कोरकू की भाषा 'कोरकू' है, जो एस्ट्रो–एशियाटिक भाषा परिवार की 'मुंडा शाखा' की भाषा है। कोरकू जनजाति का कोई विशेष प्रकार का पहनावा नहीं है, पुरुष सामान्य कुर्ता–धोती एवं महिलाएं साधारण रंग–बिरंगी ब्लाउज पहनती हैं। धोती को 'सुलुंग–लीबा', कुर्ता को 'अंगी' एवं ब्लाउज को 'तोलका' कहते हैं। कोरकू महिलाएं जेवरों में सुतरा, पायल, बिछिया, मुडी, कड़ा, निगड़ी, पायरपट्टी और मछी अधिक पहनती हैं जो पीतल, तांबा और चांदी के बने होते हैं। इनमें विशेषकर महिलाओं में गोदना (टैटू) बनाने की परंपरा भी है। वर्तमान में आधुनिकता ने कोरकू के पहनावे को भी प्रभावित किया है। नई पीढ़ी के आधुनिक फैशन वाले कपड़े व आभूषण भी पहनते हैं। दस्तावेजों में उनके धार्मिक संस्कार या रीति–रिवाज, परंपराओं आदि का विशेष महत्व रहता है। कोरकू जनजाति के जीवन में भी धार्मिक क्रिया, संस्कार और त्यौहार आदि का विशेष महत्व है। इनके कुल देवता महादेव, मुठवा देव आदि हैं। उद्योग मुख्य रूप से कृषि पर आधारित है। कृषि के अलावा वनोत्पाद, व्यापार, दैनिक मजदूर, नौकरी, अन्य शहरों में काम करना आदि से भी आय उपार्जन करते हैं।

2. कोरकू जनजाति की सामाजिक–आर्थिक स्थिति

कोरकू सामाजिक–आर्थिक रूप से पिछड़ी जनजाति हैं और उन्हें अपने सामाजिक और आर्थिक विकास की जानकारी नहीं है। वे सामाजिक–आर्थिक और शैक्षिक–स्वास्थ्य पहलुओं से बेखबर हैं। कोरकू महिलाएं अपने जनजाति में बहुत सामाजिक हैं लेकिन वे अन्य समुदायों के साथ घुलमिल नहीं पाती हैं। वे केवल एक ही समुदाय और गोत्रों से संवाद और संबंध बना सकते हैं। वे नृत्य और गीतों के साथ अपने त्योहारों और सामाजिक कार्यक्रमों जैसे विवाह, जन्म आदि का जश्न मनाते हैं। वे केवल एक ही गोत्र में विवाह करते हैं, और वे दूसरों के साथ बातचीत करने की अनुमति नहीं देते हैं। ये कुटकी, मक्का, बाजरा, चावल और गेहूं जैसे कृषि उत्पादों का उत्पादन करते हैं। कोरकू पुरुष और महिलाएं अपनी आजीविका के लिए सादा

जीवन और कड़ी मेहनत करने वाले लोग हैं।

3. कोरकू जनजाति की स्वास्थ्य एवं पोषण स्थिति

प्रस्तुतु अध्ययन में कोरकू जनजाति के स्वास्थ्य और पोषण स्थिति ज्ञात करने के लिए मेलघाट टाइगर रिजर्व क्षेत्र की धारणी तालुका के तीन ग्राम बोरी (53 %), कोठा (44 %), और चित्री (3 %) का चयन किया गया है, जिसके अंतर्गत 100 परिवारों का अध्ययन किया गया है। जिसमें स्त्रियों की संख्या 156 (51.8 %) और पुरुषों की संख्या 145 (48.2 %) है।

कोरकू जनजाति की पोषण स्थिति (बीएमआई के आधार पर)–

सारणी–1 कोरकू जनजाति की पोषण स्थिति (बीएमआई के आधार पर)

कुपोषण स्तर	संख्या	प्रतिशत (%)
कम वजन	132	43.8 %
सामान्य वजन	156	51.8 %
अधिक वजन / मोटापा	13	4.4 %
कुल	301	100

उपरोक्त सारणी के अनुसार कोरकू जनजाति के बीच 43.8 प्रतिशत व्यक्ति अल्पपोषण, 4.4 प्रतिशत अधिक वजन या मोटापे से पीड़ित पाये गये।

कोरकू जनजाति के बीच डायस्टोलिक रक्तचाप

सारणी–2 कोरकू जनजाति के बीच डायस्टोलिक रक्तचाप

रक्तचाप–डायस्टोलिक (mmHg)	संख्या	प्रतिशत (%)
हाइपोटेंशन (<60)	26	8.6 %
सामान्य (60–80)	172	57.1 %
हाइपरटेंशन (>80)	103	34.2 %
कुल	301	100

उपरोक्त सारणी के अनुसार कोरकू जनजाति के बीच डायस्टोलिक रक्तचाप का 8.6 प्रतिशत व्यक्ति हाइपोटेंशन जबकि सबसे अधिक 34.2 प्रतिशत हाइपरटेंशन रक्तचाप पाया गया।

कोरकू जनजाति के बीच सिस्टोलिक रक्तचाप–

सारणी–3 कोरकू जनजाति के बीच सिस्टोलिक रक्तचाप

रक्तचाप–सिस्टोलिक (mmHg)	संख्या	प्रतिशत (%)
हाइपोटेंशन (<90)	5	1.7 %
सामान्य (90–120)	146	48.5 %
हाइपरटेंशन (>120)	150	49.8 %
कुल	301	100

उपरोक्त सारणी के अनुसार कोरकू जनजाति के बीच सिस्टोलिक रक्तचाप का 49.8 प्रतिशत हाइपरटेंशन और 1.7 हाइपोटेंशन से पीड़ित पाये गये।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन मे निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कोरकू जनजाति के स्त्री और पुरुष के औसत भार, शारीरिक लंबाई, बैठकर लंबाई, ट्राईसेप्स, सबस्कैपुलर, गर्दन परिधि, ऊपरी मध्य भुजा परिधि, रक्तदाब सिस्टोलिक मे तुलनात्मक अंतर देखने को मिला है और 19 वर्ष के आयु से कम 67 % व्यक्तियों की निर्धारित ऊँचाई उनके उम्र के अनुसार नहीं पायी गयी अतः वो कुपोषित है साथ ही 19 वर्ष के आयु से कम कुल कुपोषण स्तर में से 12.3 % कुपोषित और बचे हुए 2.7 % अपने उम्र के अनुसार अधिक वजन के पाये गये इसके अलावा 12 और 15 वर्ष की स्त्रियों का भार पुरुषों के आयु की तुलना मे अधिक है। उम्र के अनुसार स्त्रियों और पुरुषों की औसतन शारीरिक लंबाई में महिला की लंबाई बढ़ रही है और यह 18 वर्ष तक पुरुषों की तुलना मे अधिक है। रक्तचाप में 34 % लोग उच्च रक्तचाप से ग्रसित हैं क्योंकि ये अपने खाने मे अधिकांशतः नमक का प्रयोग अधिकता से करतें है जो उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करता हैं। अध्ययन से यह भी पता चला है कि इस क्षेत्र के अधिकांश कोरकू जनजाति निरक्षर हैं। उनकी परंपरा के अनुसार, उनके पास पारम्परिक जड़ी–बूटियों का ज्ञान और कौशल है। वे विभिन्न रोगों के उपचार में जड़ी–बूटियों का उपयोग करते हैं। वे मेलघाट की घाटी से औषधीय जड़ी बूटियों की खोज करते हैं। इस घाटी के कुछ महत्वपूर्ण और प्रभावी औषधीय पौधों में शामिल हैंः एब्रस प्रीटोरियस, एनोना स्क्वामोसा, ब्रायोनिया लैकिनोसा, आदि। वे प्रभावी औषधि बनाने के लिए वन पौधों का उपयोग करने में कुशल हैं। पारम्परिक चिकित्सकों को भूमकों के रूप में जाना जाता है। वे बीमारियों को ठीक करने के लिए पौधों के गूदे और अर्क बनाने में असामान्य रूप से कुशल हैं। खसरा, हैजा, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, खांसी, सर्पदंश और यहां तक कि दर्द सहित कई बीमारियों के लिए उनके पास औषधीय उपचार हैं। कुछ रोग तो (प्राथमिक स्तर पर) इनकी जड़ी–बूटी से ठीक हो जाते हैं लेकिन इनकी दवा से एडवांस स्टेज या खतरनाक बीमारी ठीक नहीं होती और रोगी मर जाता है। खासकर महिलाएं अपनी बीमारी को कम आंकती हैं और पहले से ही हर्बल दवा का इलाज कराती हैं लेकिन उपचार और उन्नत चिकित्सा के वैज्ञानिक ज्ञान के अभाव में महिला बचती नहीं है। जिसके फलस्वरूप वे विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जाते है। इसके साथ ही गरीबी और भुखमरी के कारण ये कोरूकू जनजाति मेलघाट क्षेत्र की अन्य जनजाति की भांति पीड़ा और शोक में अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं।

संदर्भ

Publication Division (1973) The tribal People of India, New Delhi, Govt. of India.

Russel, R. V. & Hiralal (1975, Rept.) Tribes and Caste of Central Provinces of India, Delhi, Cosmo Publication.

Das, Megha (2010) Study of Nutritional Status of Korku Tribes in Betul District of Madhya Pradesh, Studies of Tribes and Tribals, 8:1, 31-36.

Kazimi, L.J.and Kazimi, H.R. (1979). Infant Feeding Practices of Igbo, Nigeria. Ecology and Food and Nutrition. Vol. 8.2.P 111.

Moatula, Hemkhothang Lhungdim (2014). Re-estimating Malnourishment and Inequality among Children in North-East India. Economical and Political Weekly, Vol. XLIX No.6. P 53.

Dualeh, K.A. and Henry, F.J. (1989). Breast Milk-the Life Saver. Observation from Recent Studies. Food and nutrition Bulletin, Vol.11. P 43-46

Hurlock, E.B. (1985). Child Development. Paras Publication.P 25

Riji, Hari. (2006). Morbidity Rate and Nutritional Status of Tribal and Non tribal Pre- School Children in Backward Districts of Northern Kerala. Unpublished Doctoral Dissertation, Mahatma Gandhi University, Kerala P17.

Rao, V.M. (2003). Tribal Women of Arunachal Pradesh.Published and Prited by Naurang Rai, New Delhi: Mittal Publication. P 98.

Rajeshwari (2012). Determinants of Women's Health and Nutrition in Rural Haryana: Socio-Spatial Analysis. Transaction. IIG Pune. P 96

Pant, B.R. (2010). Tribal Demography of India. New Delhi: Anamica Publisher. P 235.

National Nutrition Monitoring Bureau (NNMB). Diet and nutritional status of tribal population Report on first repeat survey. Hyderabad: National Institute of Nutrition, ICMR; 2000. 11.

More V. 337 Melghat kids dies of malnutrition in 6 months. The Times of India 2008 Dec 16; 1.12.

World health organization. Training Course on Child Growth Assessment. Version_1. Geneva: WHO; 2006. Available from: URL: www.who.int/entity/childgrowth/training/module_h_ directors_guide.pdf.

Fishman SM, Caulfield LE, de Onis M, Blössner M, Hyder AA, Mullany L, et al. Childhood and maternal underweight. In: Ezzati M, Lopez A, Rodgers A, Murray CJL, eds. Comparative Quantification of Health Risks: Global and Regional Burden of Disease Attributable to Selected Major Risk Factors. Geneva: World Health Organization; 2004. pp. 39–162.

ICMR. A report of the expert group of the Indian Council of Medical Research. Nutrient requirements and recommended dietary allowances for Indians. Hyderabad: National Institute of Nutrition; 1990

E-Sources:

World health organization. The WHO Child Growth Standards [Online] 2006 [cited on 2023 January 23]; Available from: URL: http:// www.who.int/childgrowth/en/. https://madhyapradeshholiday.com/destinationdetail/The-Korku---Tribes-of-Madhya-Pradesh

https://www.apnimaati.com/2022/12/blog-post_73.html?m=1

[Online] cited on 2023 January 23]

Government of India. Census 2001. [Online]. 2001 [cited 2008 Sept 10]; Available from: URL: www.censusindia.org.

नीतू सिंह

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

औरंगाबाद की माटीकला का सांस्कृतिक एंव संज्ञानात्मक पक्षः–नृतत्वशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

सार संक्षेप

गोरखपुर जनपद के औरंगाबाद गाँव की माटीकला के नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन पर यह शोधपत्र आधारित हैं। माटीकला आदिकाल से ही किसी समूह या समुदाय के सामाजिक–सांस्कृतिक व धार्मिक आवश्यकता की वस्तुओं को निर्मित करने का सर्वाधिक प्राचीन माध्यम रहा है। इसका संभवतः सबसे बड़ा कारण यह रहा कि मिट्टी सर्वत्र उपलब्ध रहती है। नवपाषाण काल में पहिए के अविष्कार ने माटीकला को विशेष गति प्रदान की। हडप्पा से प्राप्त मिट्टी की वस्तुऐं ज्यामितीय आकारों तथा पशु–पक्षियों के विभिन्न चित्रों से सुसज्जित हैं। यह सभी आकृतियाँ आज भी विभिन्न स्थानों के लोक कलाओं में आधुनिक तत्वों के साथ देखे जा सकते हैं (चट्टोपाध्याय 1980:26)। इस प्रकार माटीकला की निरन्तरता और उपयोगिता पाषाण काल से लेकर आज तक बनी हुई है। प्रस्तुत लेख में औरंगाबाद गाँव की माटीकला की उत्पत्ति, विकास, शैली, औजारों का प्रयोग, लिंग विभाजन, रोजगार के अवसर, परिवर्तन तथा एक–जिला एक उत्पाद में (ओ0डी0ओ0पी0) जैसे बिन्दुओं का वर्णन प्राथमिक तथ्य संकलन के आधार पर किया गया है। इस अध्ययन के द्वारा इस लोक कला का अभिलेखीकरण भी संभव हुआ। साथ ही लोक कला शैली के संज्ञानात्मक पक्ष का विश्लेषण किया गया है। संज्ञानात्मक पक्ष से तात्पर्य है सोचने, समझने की प्रक्रिया अर्थात् माटीकला को किस प्रकार उस समुदाय के लोगो द्वारा ग्रहण किया गया। गुडनाऊ (1957:168) के अनुसार *"संस्कृति का अस्तित्व वस्तुओं, लोगो के व्यवहारों और भावनाओं में नही अपितु लोगो के मष्तिष्क में वस्तुओं के संगठनों या रूपों में होता हैं।"* अतः संस्कृति का संज्ञानात्मक पक्ष वह मानसिक गतिविधि है जिसमें व्यक्ति अपने ज्ञान को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में लागू करता है। अर्थात् संस्कृति का अमूर्त पक्ष विभिन्न सन्दर्भों में मूर्त पक्ष के रूप में अभिव्यक्त होता है

सूचक शब्द : माटीकला, मूर्त और अमूर्त संस्कृति, संज्ञानात्मक पक्ष

भूमिका

नृतत्वशास्त्री लोक ज्ञान को संस्कृति का एक पक्ष मानते हैं। संस्कृति का अध्ययन लोक परम्पराओं के ज्ञान के बिना अधूरा है। पृथ्वी पर मानव उद्विकास के साथ ही सांस्कृतिक उद्विकास के विभिन्न चरण देखने का प्राप्त होते हैं। संस्कृति के विभिन्न तत्वों का उद्भव कैसे हुआ ? तत्कालीन मानव ने अपने जीवन को संरक्षित करने तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिन उपादानों का प्रयोग किया वह आस–पास के पर्यावरण पर आधारित थे और यही उनकी संस्कृति थी। हर्सकोविट्ज ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा "संस्कृति पर्यावरण का मानव–निर्मित प्रभाग है।"

Neetu Singh, Department of Anthropology, Vidyant Hindu PG College, Lucknow.
E-Mail:somvanshineetu@gmail.com

पाषाणकालीन संस्कृति की रचना उत्खनन व अन्वेषण से प्राप्त सामग्रियों में मृदभाण्डों का विशेष महत्व है, क्योंकि ये टिकाऊ होते हैं तथा काल–निर्धारण के द्वारा तत्कालीन संस्कृति के अध्ययन में सहायक होते हैं। मिट्टी के बर्तनों का पहला प्रयोग मेहरगढ़ (पाकिस्तान) के नवपाषाणिक स्थल से प्राप्त हुआ है। उत्खनन में प्राप्त मृदभाण्ड, मनकें, मुहरें, खिलौने व आभूषण संस्कृति के बारे में आकर्षक अन्तदृष्टि प्रदान करते हैं। गेरू रंग के मृदभाण्डों से ताम्रपाषाणिक संस्कृति का, काले रंग के मृद्भाण्डों से हड़प्पा संस्कृति का चित्रित धूसर मृद्भाण्डों से उत्तरवैदिक कालीन संस्कृति तथा उत्तरी काले मृद्भाण्डों से मौर्यकाल की पहचान की जाती है।

माटीकला किसी भी संस्कृति के मूर्त पक्ष का महत्वपूर्ण अवयव है। यद्यपि विश्लेषण से ज्ञात होता है कि मृदभाण्ड कला किसी भी संस्कृति का अमूर्त पक्ष भी अपने भीतर समेटे रहती है। संस्कृति के अमूर्त पक्ष में ; माटी से निर्मित वस्तुओं का विश्वास, धर्म, अनुष्ठानों में महत्वपूर्ण स्थान है। यह पक्ष देश–काल व परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं क्योकि ये स्थानीय संस्कृति से जुड़े होते हैं। इसके साथ दन्तकथाओं, विश्वासों व निषेधों का विस्तृत संसार विद्यमान रहता हैं।

अध्ययन का उद्देश्यः–

1. औरंगाबाद की माटीकला का नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन
2. माटीकला से जुड़ी परम्पराओं, विश्वास, नियमों व निषेधों की सास्कृतिक संज्ञानात्मकता को समझना
3. श्रम विभाजन व महिलाओं की भूमिका

अध्ययन का क्षेत्र व सामाजिक संरचनाः–

गोरखपुर जनपद 25 डिग्री 51′ उत्तर व 26 डिग्री 30′ उत्तर अक्षांश तथा 83 डिग्री 25′ पूर्व व 84 डिग्री 20′ पूर्व देशांतर के मध्य उत्तर प्रदेश की उत्तरी पूर्वी सीमा के सन्निकट स्थित है गोरखपुर जनपद का कुल क्षेत्रफल 3483.8 वर्ग वर्ग किमी एवं कुल जनसंख्या 44,40,895 हैं। नाथ परम्परा के अलौकिक संत साधक गुरु श्री गोरक्षनाथ की पावन साधना स्थली होने के कारण ही इसका नाम गोरखपुर पड़ा गोरखपुर जनपद में सात तहसील, 1294 ग्राम पंचायत, 3448 ग्राम, बीस विकासखण्ड, एक नगर निगम, नौ नगरपंचायत, अठाईस पुलिस थाना, दो लोकसभा श्रेत्र और नौ विधानसभा क्षेत्र हैं। राप्ती, घाघरा, रोहित, आमी, कुआनो तथा गोर्रा जनपद में प्रवाहित होने वाली प्रमुख नदियां है। 2011 जनगणना के अनुसार इस गाँव की कुल जनसंख्या 785 है।गाँव का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 51.38 हेक्टेयर है। औरंगाबाद के साथ भरवालिया गाँव को भी जोड़ कर एक ग्राम सभा बनाई गयी है। दोनों गाँव को मिलाकर कुल जनसंख्या 1600 हैं। औरंगाबाद गाँव में हिंदू और मुस्लिम दोनों प्रकार के लोग निवास करते हैं। हिंदुओं में कई जाति के लोग गाँव में रहते हैं जैसे निषाद (मल्लाह) यादव (अहिर) उपाध्याय (ब्राह्मण) प्रजापति (कुम्हार) बेलदार गुप्ता (बनिया) सिंह (सैंथवार)। मुसलमानों में दो उपजातियाँ हैं– पठान और धुनिया। प्रजापति समुदाय द्वारा ही माटीकला का कार्य किया जाता है।

प्रजापति (कुम्हार) – औरंगाबाद गाँव में कुम्हारों कुल 20 परिवार व 180 लोग हैं। कुम्हारों के पास कुल 35 बीघा खेती है। अधिक परिवारों के पास ट्रैक्टर–ट्राली हैं। यह खेती भी करते हैं। इसके अलावा इनका अपना जातिगत व्यवसाय मिट्टी की कलाकृतियों का निर्माण करना हैं। औरंगाबाद गाँव में जो कुम्हार है उनका गोत्र मठिया है।

कुम्हार शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा 'कुंभकार' शब्द से हुई है। जिसका अर्थ होता है मिट्टी के बर्तन बनाने वाला। कुम्हार को प्रजापति भी कहा जाता है। एक दंतकथा के अनुसार कुम्हार के काम के प्रति निष्ठा देख ब्रह्मा जी ने प्रजापति नाम से पुरस्कृत किया। एक दूसरे मत के अनुसार पारंपरिक मिट्टी का प्रयोग करने के कारण इन को सम्मान देने हेतु प्रजापति कहा गया। वैदिक साहित्य के अनुसार यज्ञ के लिए मंगल कलश की आवश्यकता होने पर ब्रह्मा ने कुम्हारों को उत्पन्न किया।

अध्ययन की प्रविधिः

औरंगाबाद की माटीकला उत्तर प्रदेश सरकार की योजना एक–जिला एक उत्पाद (ओ डी. ओ पी.) के अन्तर्गत सूची बद्ध है। इसका अध्ययन उत्तर प्रदेश के सभी जनपदों में ओडीओपी के सूची बद्ध उत्पादों के अभिलेखीकरण के लिए निर्देश के रूप में किया गया है। ओडीओपी के उत्पाद वे हैं, जिनसे स्थान विशिष्ट की पहचान होती है। अध्ययन के लिए सर्वप्रथम गाँव का पायलट सर्वेक्षण करके माटीकला का कार्य करने वाले प्रजापति समुदाय के लोगों से सम्पर्क किया गया। इस गाँव में माटीकला के कुल 75 कलाकार है। पुरूष व महिला को साक्षात्कार व समूह चर्चा हेतु दो आयु वर्गों में बाँटा गया है। प्रथम आयु वर्ग में 45 से 65 वर्ष तथा द्वितीय आयु वर्ग में 25 से 44 वर्ष के महिलाओं व पुरूषों को रखा गया। अध्ययन के उद्देश्यों के आधार पर तैयार अनुसूची से व्यक्तिगत व सामूहिक साक्षात्कार किया गया। समूह चर्चा (एफ जी डी) के लिए 15–15 कारीगरों के 5 समूह बनाए गए जिसमें 3 समूह 45 से 65 वर्ष के कारीगरों तथा 2 समूह 25 से 44 वर्ष के कारीगरों के बनाए गए। इन समूहों के साथ 2 वर्ष में 5–5 बार सामूहिक चर्चा (एफ जी डी) किया गया। जिसमें न्यूनतम 5 व अधिकतम 8 सदस्य ही उपस्थित होते थे। इसी प्रकार महिलाओं को दो आयु वर्ग में बाँट कर समूह चर्चा की गई व व्यक्तिगत साक्षात्कार भी किए गए। व्यक्तिगत साक्षात्कार हेतु 15 पुरूष व 15 महिलाओं का चयन किया गया। इनका चयन सोदेश्य निदर्श विधि के आधार पर प्रजापति परिवारों से ही किया गया। गाँव में टेराकोटा माटीकला की शुरूआत करने वाले कलाकार का वैयक्तिक अध्ययन किया गया। तथ्य संकलन के दौरान अध्ययन के उद्देश्य के साथ अन्य पक्षों को भी ध्यान में रखा गया। अक्टूबर 2019 व नवम्बर 2021 में एक एक माह का सहभागी अवलोकन किया गया। रोजगार सृजन, परिवर्तन व श्रम विभाजन का भी अध्ययन किया गया।

गाँव में माटीकला का उद्‌गम इतिहास

गाँव के नाम के बारे में कोई लिखित साक्ष्य नहीं प्राप्त है। इस गाँव का पुराना नाम नौरंगाबाद था। इस गाँव के नाम के विषय में गाँव के बुजुर्ग लोग एक लोक कथा सुनाते हैं– ''इस गाँव में कभी एक लेखपाल कर्मचारी आये थे। जिनकी यहाँ पर रिश्तेदारी थी। यहाँ पर लेखपाल के पत्नी के भाई, अर्थात उनके साले निवास करते थे। जिसके कारण इसका नाम लोग

'सल्हपुर औरंगाबाद' हंसी – मजाक में पुकारा करते थे। अतः हंसी– मजाक में उनके द्वारा गाँव का परिवर्तित किया हुआ नाम, हमेशा के लिए गाँव का नाम हो गया। बाद में लोग, बोलचाल की भाषा में और सरलता लाने के लिए, सिर्फ औरंगाबाद के नाम से पुकारने लगे।''

कला इसी गाँव में ही क्यों इतनी अधिक विकसित हुई, इसका कारण यहाँ के लोग किसी दैवी संपदा या अलौकिक शक्ति को मानते हैं। उनका कहना है कि, *"सबसे पहले जिसने इस कला की शुरुआत की उसका नाम 'विजयी प्रजापति'था। यह बहुत ही आश्चर्यजनक है कि इस कला के नींव को मजबूत करने वाले तथा कला को नया जन्म देने वाले, सिर्फ एक ही व्यक्ति हैं– 'विजयी प्रजापति'। 'श्री यादे माँ' कुम्हारों की कुलदेवी होती है। विजयी प्रजापति अपनी कुलदेवी के अनन्य भक्त थे और गाँव में पूजा–पाठ, तंत्र– मंत्र आदि क्रियाएं किया करते थे। वह इतने सिद्ध पुरुष थे, कि पानी से दीपक जला देते थे तथा जब उनकी मृत्यु होनी थी, तब उन्होंने उस समय सब को बताया था, कि आज मेरी मृत्यु हो जाएगी। प्रारंभ में विजयी प्रजापति सिर्फ तंत्र– मंत्र, पूजा– पाठ की क्रियाएं किया करते। कुम्हार थे, परंतु मिट्टी के बर्तन नहीं बनाते थे। एक दिन उनकी 'इष्ट देवी' ने उनको स्वप्न दिया, की तुम जाति के कुम्हार हो, और तुम्हारा कार्य है मिट्टी के बर्तन आदि वस्तुएं बनाना। तुम उसे प्रारंभ करो। इसके बाद विजयी प्रजापति ने अपना जातिगत कार्य करना प्रारंभ किया। पास के ही पोखरे से मिट्टी निकाल कर ले आए (यह पोखरा अभी तक गाँव में मौजूद है) और एक पुराना चाक लिया, और मिट्टी के बर्तन बनाना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार से कुछ दिन बीता, इसी बीच में इनके बड़े पुत्र का भी जन्म हुआ। कुछ समय बाद इनकी 'इष्ट देवी' ने एक बार फिर से इनको स्वप्न दिया कि तुम पूजा– पाठ करने वाले व्यक्ति हो, और तांत्रिक क्रियाएं भी करते हो। तुम आज से सभी देवी–देवताओं के लिए हाथी– घोड़े बनाना प्रारंभ करो। विजयी प्रजापति ने अपनी कुलदेवी व ग्राम देवताओं को अर्पित करने के लिए, हाथी, घोड़े बनाना प्रारंभ किया। मिट्टी के हाथी घोड़े न केवल औरंगाबाद, बल्कि आसपास के अन्य गाँव में भी बहुत प्रसिद्ध हुए। इसके बाद इनके दो पुत्र और पैदा हुए। जब इनके तीनों पुत्र बड़े हो गए, तब उन्होंने भी अपना योगदान इस कार्य में देना प्रारंभ किया।"*

इस गाँव में यह परंपरा है कि कुल देवता, ग्राम देवता को मिट्टी से बने हाथी घोड़े भेंट किए जाते हैं। सन् 1964–1965 तक यह कलाकृति बहुत ही अधिक प्रसिद्ध हो गई तथा बहुत ही अधिक मात्रा में पूजा–पाठ व तंत्र– मंत्र और सोखइती (तंत्र–मंत्र) करने वाले लोग, इसे खरीद कर ले जाने लगे। इस प्रकार की कलाकृति उस समय और कहीं भी नहीं पाई जाती थी।

विजयी प्रजापति जो इस कला के जन्मदाता हैं, कुम्हार जाति के पहले व्यक्ति हैं जो औरंगाबाद गाँव में आकर बसे थे। इसके पहले औरंगाबाद गाँव में कुम्हार जाति निवास नहीं करती थी। आज औरंगाबाद गाँव में जितनी भी कुम्हार जाति के लोग हैं वह विजयी प्रजापति के ही वंशज हैं। विजयी प्रजापति अपनी युवा अवस्था में (लगभग सोलह वर्ष की उम्र में) औरंगाबाद गाँव में आये थे। इससे पहले वह 'रिक्शानारा गाँव (खजनी) जो कि गोरखपुर जिले में ही स्थित है, में निवास करते थे। यही उनकी जन्म भूमि थी। रिक्शानारा गाँव औरंगाबाद के दक्षिण में 36 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। बहुत गरीबी के चलते वह अपने पैतृक गाँव को छोड़कर औरंगाबाद गाँव में आये। यहाँ पर वह सोखइती व (तंत्र– मंत्र) का कार्य करते थे।

सन 1904 के दशक में गाँव की जमीदारी रामसूरत उपाध्याय की थी। उस समय अन्य

जातियों को लोग, बसने के लिए जमीन दान में दे देते थे। विजयी प्रजापति ने रामसूरत उपाध्याय से बसने के लिए जमीन मांगी, रामसूरत उपाध्याय ने निवास करने के लिए उनको जमीन दे दी। उस समय विजयी प्रजापति एक झोपड़ी डालकर रहते, और तंत्र – मंत्र, टोटका, सोखइती आदि क्रियाएं करते थे। इसके बाद जब इनकी कुल देवी ने स्वप्न में इनको मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए आज्ञा दी, तब से यह मिट्टी के बर्तन बनाने लगे।

औरंगाबाद के पोखरे की मिट्टी की विशेषता –

यह एक विशेष प्रकार की मिट्टी होती है। जिसे **काबिस मिट्टी** कहते हैं। इस मिट्टी की यह विशेषता है कि कलाकार जैसी भी आकृति चाहे, हाथ के द्वारा निर्मित कर सकते हैं। यह गुण अन्य किसी मिट्टी में नहीं पाया जाता है। कलाकार अन्य किसी मिट्टी के द्वारा जैसी भी आकृति चाहे, आसानी से नहीं दे सकते। इस मिट्टी द्वारा बने कलाकृति के विभिन्न भाग को पानी की सहायता से आसानी से चिपकाया जा सकता है। जैसे – एक मिट्टी के घोड़े निर्माण में उसके कान, पेट का हिस्सा और सर अलग से बनाए जाते है, उसकी पूंछ अलग से बनाई जाती है और उसके चारों पैर भी अलग से बनाए जाते हैं। फिर इन समस्त अंगों को पानी की सहायता से चिपका कर एक संपूर्ण घोड़े का निर्माण किया जाता है। यह मिट्टी सिर्फ पानी की सहायता से मजबूत पकड़ बना लेती है। गोरखपुर शहर में केवल तीन गाँव **औरंगाबाद, बूढ़ाडीह और भरवलिया** में इस प्रकार की मिट्टी पाई जाती है। यहाँ के अलावा, यह मिट्टी और कहीं भी नहीं पाई जाती है।

इस मिट्टी में सूनापन पाया जाता हैं। **सूनापन का तात्पर्य,** अगर इस मिट्टी से कोई वस्तु बनाकर उसे सुखाया जाता है, तो उसमें दरारे नहीं आती हैं। अन्य किसी मिट्टी का प्रयोग किया जाए, तो कलाकृति में दरारे आ जाती हैं और वह फट जाती है। यहाँ के कुम्हार दिल्ली, राजस्थान, तमिलनाडु, भोपाल आदि जगहों की मिट्टी का प्रयोग कर चुके हैं। परंतु उससे कोई लाभ नहीं हुआ।

औरंगाबाद, बूढ़ाडीह और भरवलिया की मिट्टी तुरंत भिगोकर प्रयोग में लाई जा सकती है। परंतु अन्य जगहों की मिट्टियां भिगोने के बाद हफ्ते या दस दिन के बाद काम में लाई जा सकती है। यहाँ की मिट्टी में एक विशेष विशेषता यह है, कि यह चटकती नहीं है। अर्थात भट्टी में पकाए जाने पर नष्ट नहीं होती है। भट्टी में दबाव के कारण, कुछ कलाकृतियां टूट जाती हैं। जिनको आसानी से ठीक किया जा सकता है।

औरंगाबाद गाँव में स्थित जो पोखरा है। वह यहाँ के कुम्हारों के लिए सुरक्षित है। इस पोखरे का प्रयोग, केवल औरंगाबाद के कुम्हार मिट्टी लेने के लिए ही कर सकते हैं। परंतु अगर इन कुम्हारों को अपने बगल के दो गाँव से मिट्टी लानी हो तो वहाँ से खरीद कर मिट्टी लाते हैं। यह मिट्टी कुम्हार दो हजार से ढाई हजार तक प्रति ट्राली के खरीद कर लाते हैं। एक ट्राली भर मिट्टी की कीमत दो से ढाई हजार रुपया होती है। कुम्हार टेराकोटा कलाकृतियों को बनाने के लिए, मिट्टी अधिकतर खरीद कर ही लाते हैं। जो उनके पास पोखरा है, उसकी मिट्टी का प्रयोग बहुत ही कम मात्रा में किया जाता है। इस विषय में पूछने पर कि, *"आप लोगों के पास अपना पोखरा है, तो आप लोग उसकी मिट्टी का प्रयोग क्यों नहीं करते हैं? क्यों आप लोग मिट्टी खरीद कर लाते हैं?"*

कुम्हारों ने उत्तर दिया, *"हम अपने पोखरे की मिट्टी को भविष्य के लिए बचाए हुए हैं। जिन दो स्थानो से हम, मिट्टी खरीद कर लाते हैं। वहाँ पर मिलना बंद हो जाए, तो हम अपनी मिट्टी का प्रयोग करके कलाकृतियों का निर्माण कर सकते हैं। यहाँ के उत्पादों के लिए खास प्रकार की काबिस मिट्टी का प्रयोग होता है, जिससे उत्पादों में एक विशेष प्रकार का लाल रंग आता है। यह मिट्टी तालाब की तलहटी से लगभग एक फीट मिट्टी हटाने के बाद मिलती है और इसकी मोटाई सिर्फ दो इंच होती है।"*

इसके अलावा, इन कलाकृतियों को रंग देने के लिए भी एक विशेष प्रकार की मिट्टी का प्रयोग होता हैं। उसी मिट्टी का नाम 'टेराकोटा' है। यह औरंगाबाद से सात किलोमीटर दूर स्थित 'बरगदही' गाँव में पाई जाती हैं। यहाँ पर काश्तकारों का खेत है। **बरगदही** गाँव से कारीगर मिट्टी की चोरी करके लाते हैं क्योंकि किसान अपने खेतों से मिट्टी निकालने नहीं देते। मिट्टी निकालने से खेतों में गड्ढा हो जाता है। यह मिट्टी खेतों में मात्र ऊपर ही एक इंच सतह तक पाई जाती है। यह लाल और हल्के पीले रंग लिए होती है। यह मिट्टी ₹ 500 प्रति किलो के हिसाब से बेची भी जाती है।

माटी को कला का रूप देने की प्रक्रिया

औरंगाबाद गाँव की टेराकोटा कलाकृतियाँ दिखने में जितनी खूबसूरत हैं उतनी ही श्रमसाध्य हैं। इनको निर्माण की प्रक्रिया लम्बी है। सर्वप्रथम मिट्टी को भूरभुरा बनाया जाता है। इसके पश्चात शाम को पानी द्वारा भिगो दिया जाता है। उसके बाद सुबह मिट्टी को अच्छे तरीके से मढ़ कर, उसे दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है। जहाँ इसे लोहे के लहछु नामक यंत्र से बारीक कटाई की जाती है। यह कटाई इसलिए की जाती है, कि मिट्टी में उपस्थित कंकड़–पत्थर को बाहर निकाला जा सके। मिट्टी की कटाई करने के बाद पैरों से दबाया जाता है। पैरों से खूब अच्छी तरह से दबाने से मिट्टी जमीन पर गोल चपटे आकार में परिवर्तित हो जाती है। फिर पुनः मिट्टी को एकत्र करके एक बार फिर से लहछु से कटाई की जाती है। उपयुक्त प्रक्रिया को दो बार और दोहराया जाता है। आगे की प्रक्रिया में इसे एक लकड़ी के तख्ते पर गुँथा जाता है। यह प्रक्रिया भी कंकड़–पत्थर निकालने के लिए ही की जाती है। अब मिट्टी चाक पर जाने के लिए तैयार हो जाती है। मिट्टी के गोल पिंड को चाक पर रखकर चाक को गोल– गोल घुमा कर कलाकार विभिन्न कलाकृतियों का निर्माण करता है।

किसी भी मूर्ति निर्माण के लिए सबसे पहले उसका आधार तैयार किया जाता है। यदि एक हाथी की मूर्ति का निर्माण किया जाना है, तो सबसे पहले चाक की सहायता से उसके पेट, पैर, सिर और सूंड का निर्माण किया जाएगा। आधार तैयार होने के पश्चात इसे एक दिन छाँव में सुखाने के लिए छोड़ा जाता है। ताकि यह अगली प्रक्रिया जुड़ाई के लिए तैयार हो सके। सूखने के पश्चात इसे पानी लगाकर जोड़ने की प्रक्रिया शुरू की जाती है। सर्वप्रथम हाथी के पेट और पैरों को आपस में जोड़ा जाता है और फिर सिर का भाग। इस प्रकार हाथी निर्माण की प्रक्रिया पूरी होती है। इसके बाद जितने भी कार्य होंगे वह पूरी तरह हाथ के द्वारा बिना चाक की सहायता से होंगे। जैसे– हाथी का खुर लगाना, आँख बनाना, कान लगाना, दाँत लगाना और हाथी की सजावट करना इत्यादि सब कार्य संपादित होने के बाद सुखाने के लिए छोड़ दिया जाता है। सुखाने का कार्य छायादार स्थान पर किया जाता है। इसे धूप में नहीं सूखाया जाता है,

क्योंकि तेज धूप के कारण कलाकृतियों में दरारे आ जाती हैं। जिससे कलाकृतियाँ खराब हो जाती हैं। इस प्रकार से खराब कलाकृतियों को सुधारा भी नहीं जा सकता। छायादार स्थान पर अच्छी तरह सूख जाने के बाद इन्हें हल्की धूप में रखा जाता है। इसके बाद रंगाई का कार्य किया जाता है। रंगाई और डिजाइन बनाने का कार्य महिलाएं करती हैं।

रंगाई के पश्चात यह पकाने के लिए तैयार हो जाती हैं। पकाने के क्रम में भट्टी की सतह में राख बिछाई जाती है ताकि गर्मी जमीन में ना जा सके। उसके बाद गोबर के कंडे मध्य भाग से नीचे की तरफ बिछाए जाते हैं। अब कलाकृतियों को सजाने का कार्य होता है। बड़ी कलाकृतियों को नीचे और छोटी कलाकृतियों को ऊपर एक के ऊपर एक रखा जाता है। इसके पश्चात इनके ऊपर पुनः कंडे बिछाए जाते हैं। उन्हें पुआल से ढका जाता है। पुआल से ढकने के बाद उसे पानी से भिगोकर मिट्टी का लेप लगाया जाता है। अब भट्टी आग डालने के लिए तैयार हो जाती है। भट्टी के मध्य भाग में छेद करके उसमें आग डाली जाती है। भट्टी में मूर्तियां तीन दिन में पक जाती हैं। भट्टी ठंडी होने के बाद उसमें से मूर्तियाँ निकाली जाती हैं। उसके बाद ये वितरण के लिए तैयार हो जाती हैं।

मिट्टी लाकर टेराकोटा रंग तैयार करने की प्रक्रिया –

सबसे पहले एक बोरा मिट्टी और दस किलोग्राम खट्टे आम के पेड़ का छिलका लिया जाता है (आम के पेड़ की जो सबसे ऊपर की परत होती है)। छिलके को गड़ासी के द्वारा छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं। एक बोरा मिट्टी, दस किलो आम के पेड़ का छिलका और दो किलो कास्टिक सोडा को मिलाकर मुसल के द्वारा कुटाई की जाती है, जिससे एकदम बारीक होकर सभी आपस में मिल जाते हैं। इसके बाद इसे सुखाकर रख लिया जाता है और जब कलाकृतियों को पकाने के लिए भठ्ठी जलानी होती है तो इसके दो दिन पहले, उसे फिर एक बार कूटा जाता है, जिससे यह पाउडर के रूप में हो जाता है और बड़े से बर्तन में इसका घोल बना लेते हैं। ग्रामवासी बताते हैं कि *"घोल बनाने के बाद हाथ के उंगलियों को एकदम सीधा करके, घोल में डालते हैं। तब नाखून पर पीला रंग आ जाता है। अगर यह रंग नाखून पर नहीं चढ़ा, हम जान जाएंगे कि हमारा रंग खराब हो गया है। अब यह किसी भी काम का नहीं है। अतः इस कार्य को बहुत ही सावधानी पूर्वक किया जाता है। घोल बनाकर रात भर इसे छोड़ दिया जाता है। अब इसे कोई छू नहीं सकता। फिर सुबह उसे सूती कपड़े से छानते हैं। जिस बर्तन में मिश्रण रात भर भिगोया जाता है, छानते समय वह बर्तन हिलना नहीं चाहिए। बहुत ही सावधानी पूर्वक, पात्र को धीरे से उठाकर सूती वस्त्र के द्वारा छाना जाता है। अब टेराकोटा रंग बनकर तैयार है। अब इसका प्रयोग कलाकृतियों को रंगने में किया जा सकता है।"*

उत्पाद

विभिन्न त्योहारों के लिए अलग–अलग प्रकार की कलाकृतियाँ बनाई जाती हैं। जैसे – दीपावली के लिए दीपक और गणेश लक्ष्मी की मूर्ति, छठ पूजा के लिए हाथी के ऊपर दीपक लगाकर मूर्ति तैयार की जाती है जिसमें छः दीपक होते हैं, छः दीपक से कम या अधिक नहीं होना चाहिए। हाथी–घोड़ा, झाड़–फूंक, सोखइती के लिए तथा रामनवमी के समय हाथी – घोड़ा महावतदार या देवी देवताओं के साथ बनाए जाते हैं। इन मूर्तियों में देवी देवताओं को

घोड़े–हाथी पर बैठे हुए रूप में बनाया जाता है। 'सालिना पूजा' 'खरतीतिया' 'खेतकराही' 'जेवनार' जैसे लोक पर्वों व अवसरों पर माटीकला के विभिन्न उत्पादों की विशेष भूमिका होती है।

श्रम विभाजन

टेराकोटा कलाकृतियों के निर्माण में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जैसे पुरुष के द्वारा हाथी का पूरा शरीर चाक की सहायता से तैयार किया जाता है। इसके बाद महिलाएँ हाथी के ऊपर आकृतियाँ उकेरने वे सजाने का कार्य करती हैं। हाथों से हाथी के गले का हार ,पीठ पर गद्दी, हाथी के सूँड का डिजाइन इत्यादि प्रक्रियाओं के द्वारा हाथी को खूब सुंदर से सजाने के कार्य करती हैं। इसी प्रकार घोड़ा, ऊंट, बैलगाड़ी, बग्घी, झूमर, मिट्टी के स्टूल, हिंदू देवी–देवताओं के विविध मूर्तियाँ, कछुआ, मछली, मेंढक, हिरण और घर इत्यादि कलाकृतियों पर भी सजावट करना महिलाओं का ही काम है। महिलाएँ जो विवाह करके इस गाँव में आती हैं, वो इस कार्य के बारे में कुछ भी नहीं जानतीं, क्योंकि उनके यहाँ इस प्रकार के कार्य नहीं होते हैं। यहाँ पर आने के बाद वो इस काम को सीखतीं हैं। कलाकृतियों पर डिजाइन बनाने का कार्य वह जल्दी सीख जाती हैं। इसके अलावा महिलाएँ घर के सभी कार्यों को करती हैं। जैसे खाना पकाना, पशुओं को चारा देना, बच्चों का ख्याल रखना इत्यादि।

प्रयुक्त होने वाले औजार

लहछू : यह लोहे से निर्मित औजार होता है। इसका प्रयोग एक हाथ के द्वारा नहीं किया जा सकता। इसे दोनों हाथों के प्रयोग द्वारा ही चलाया जा सकता है। लहछू का प्रयोग गुथी हुई मिट्टी की कटाई करने के लिए होता है।

चाकू : चाकू का प्रयोग टेराकोटा की कलाकृतियों में विविध– विविध प्रकार के डिजाइन या मिट्टी के विविध प्रकार के छोटे–छोटे टुकड़े काटने में किया जाता है।

फवड़ा : फावड़े का निर्माण लकड़ी द्वारा होता है, तथा कार्यअंग लोहे का बना होता है। इसका प्रयोग सूखे पोखरी से मिट्टी खोदकर निकालने तथा ट्राली में लादकर लाई गई मिट्टी को ट्राली से उतारने में किया जाता है।

स्केल : इसका प्रयोग मापन के लिए होता है। इसके द्वारा माप करके एक निश्चित अनुपात में कलाकृतियों का निर्माण किया जाता है।

गड़ासी : गड़ासी या तो संपूर्ण लोहे की होती है। अथवा इसकी मुठिया अथवा हैंडल प्लास्टिक या लकड़ी की होती है। इसका प्रयोग टेराकोटा की कलाकृतियों में टेराकोटा रंग तैयार करने में होता है। खट्टे आम के पेड़ के जो सबसे ऊपर की परत होती है, उन छिलकों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटने के लिए भी गड़ासी को प्रयोग में लाया जाता है।

मुसल : मुसल का निर्माण लकड़ी द्वारा किया जाता है। यह लंबा मोटा डंडा सा होता है, जिसके मध्य भाग में खड्डा सा होता है और छोर पर लोहे की शाम जड़ी रहती है। इसको एक हाथ से ही प्रयोग में लाया जाता है। इसका कार्यअंग दोनों तरफ होता है। मुसल का भी कोई

निश्चित पैमाना नहीं होता है। छोटा बड़ा किसी भी प्रकार का मुसल प्रयोग में लाया जा सकता है। टेराकोटा रंग तैयार करने के लिए प्रयोग होने वाली मिट्टी को कूटने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। मिट्टी को जमीन पर फैला कर मुसल के तेज प्रहार द्वारा कुटाई होती है।

गोल व्हील या बेरिंग व्हील : बेरिंग व्हील स्टूल नुमा गोल आकृति का होता है। यह लोहे का निर्मित होता है। इसके ऊपर कलाकृति को रखकर उसको पेंट करने अथवा डिजाइन बनाने का कार्य किया जाता हैं।

क्षेवन : क्षेवन एक रेशमी धागे का छोटा टुकड़ा होता है जो अनामिका अंगुली के बराबर पतले लकड़ी के टुकड़े में बंधा होता है। इसका प्रयोग चाक पर बनने वाली किसी भी वस्तु को काटकर उतारने के लिए किया जाता है।

पीड और पीटन : पीड दो प्रकार के होते हैं– गोल पीड और चिपटा पीड। इनके भी आकार का कोई निश्चित पैमाना नहीं होता है, कि इनकी लंबाई चाहे मोटाई का एक निश्चित आकार हो। यह किसी भी आकार का हो प्रयोग में लाया जा सकता है। पीड मिट्टी का बना होता है। इसका हाथ से पकड़ने का सिरा ऊपर की ओर तथा कार्यअंग नीचे की ओर होता है। इसको प्रयोग करने के लिए बाएं हाथ से पकड़ना पड़ता है। इसको सिर्फ एक हाथ से ही काम में लाया जा सकता है।

पीटन : पीटन लकड़ी द्वारा निर्मित होता है। इसका भी कोई निश्चित आकार नहीं होता है। इसका कार्यअंग गोल तथा हैंडल एक बेलनकार डंडे नुमा होता है। इसका और गोल पीड का प्रयोग सदैव एक साथ ही होता है। गोल पीड का प्रयोग चाक से बनाकर उतारे गए वस्तुओं को पतला करने के लिए होता है। चिपटे पीड का प्रयोग पटरानुमा मिट्टी को पीटकर और भी पतला बनाने में किया जाता है।

चाक : मिट्टी की कलाकृति निर्माण में चाक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पहले के जो चाक होते थे, वह पत्थर के बने होते थे। इन चाक का प्रयोग अब बहुत ही कम होता है, क्योंकि इसकी जगह इलेक्ट्रिक चाक ने ले ली है।

चकैठ : पत्थर के चाक तो किसी व्यक्ति द्वारा एक डंडे से घुमाया जाता है। इस डंडे को चकैठ कहते है।

घीरनी : यह लोहे का बना हुआ बेलनाकार औजार होता है। इसमें हत्था पीछे की ओर होता है। इसमें कार्यअंग लोहे के त्रिभुजाकार टुकड़े पर बेलनाकार आकृति का छोटा लोहे का भाग लगा होता है। इस लोहे के बेलनाकार भाग द्वारा, मिट्टी के बर्तनों पर विभिन्न आकृतियाँ उकेरी जाती हैं। इसका कोई निश्चित आकार नहीं होता है।

विश्लेषण :

लोक ज्ञान मानव मस्तिष्क का प्राकइतिहास है (स0सी0 राय, एन्थ्रोपॉलजी, 2016: 320)। इस कला को यहाँ के ग्रामीण लोग अत्यधिक पवित्रता की भावना से ग्रहण करते हैं क्योंकि इसकी शुरूआत का कारण उन्होने सोखइती (तन्त्र–मन्त्र) करने वाले व्यक्ति की इष्ट देवी के स्वप्न को बताया। आज भी डीह बाबा (ग्राम देवता) तथा कुल देवी–देवता को अर्पित करने वाली

वस्तुऐं बनाने में विश्वास व श्रद्धा का पूर्ण समावेश होता है। चढ़ावे की वस्तुओं को माटी से वैसा ही बनाया जाता है जैसा चढ़ाने का निर्देश स्वप्न में ईष्ट देवी ने दिया था। साथ ही जिस तालाब की मिट्टी से यह तैयार किया जाता है उसका भी संज्ञानात्मक पक्ष बहुत महत्वपूर्ण है। इस तालाब की मिट्टी से ग्रामवासी अपनी समृद्धि को जोड़ते है। यह तालाब मात्र तालाब न होकर उनकी श्रद्धा का केन्द्र है। बुर्जुग ग्रामीण कुम्हार कहते है,

"हम माटीकला के काम को अपनी कुलदेवी 'यादे माँ' और डीह बाबा के प्रति अपने समर्पण के रूप में मानते है। इसका आर्थिक पक्ष हमारे लिए गौण है, किन्तु इस गाँव के माटीकला कारीगरों को कभी धन की कमी नही होती, जबकि हम रंगने के लिए मिट्टी की चोरी करके लाते हैं। आज भी चढ़ाने के लिए बने हाथी, घोड़े का आकार–प्रकार 'यादे माँ' के निर्देश के अनुसार ही बनते हैं। ओ0 डी0 ओ0 पी0 ने इतना काम दिया है हमें उसे पूरा कर नहीं पा रहे हैं। यह भी 'यादे माँ' का ही वरदान है।"

यह परम्परा चार–पाँच पीढियों से लगातार चली आ रही है। क्रोबर कहते है संस्कृति अधिसावयवी (क्रोबर 1879:58) है। अर्थात् व्यक्ति जनम लेता है और मृत्यु को प्राप्त करता है किन्तु संस्कृति के तत्व थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ प्रवाहमान होते हैं। साथ ही इस कला के विविध पक्ष तब और भी स्पष्ट होते हैं जब इसे सम्पूर्ण ग्रामीण संरचना के साथ उसके सम्बन्धों के सन्दर्भ में समझा जाय। मैलिनोस्की के 'प्रकार्यवादी समाकलन' की अवधारणा से इसके विविध पक्ष और स्पष्ट किए जा सकते हैं, अर्थात् सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व धार्मिक सन्दर्भों से जुड़कर यह कला पूर्णता को प्राप्त करती है।

ग्राम देवताओं को अर्पित करने तथा अन्य अनुष्ठानों में प्रयोग होने वाली वस्तुयें (हाथी, घोड़े, ग्राम देवता) बनाने में प्राकृतिक रंगो का प्रयोग होता है। जबकि अन्य सामान समय के साथ बहुत रंग–बिरंगे होने लगे हैं। कलाकृतियों पर अधिक सजावट उकेरे जाने लगे हैं। लोक चित्रों के विश्लेषण व अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कलाओं में खाली स्थान समतावादी समाज का प्रतीक है जबकि अधिक घनी या भरी हुई कलायें स्तरित समाज का लक्षण है। (एम्बरः 1980:441)

परिवर्तन

उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा जनपदों के पारंपरिक शिल्प व हुनर को उद्यम का रूप देने के लिए शुरू हुई ओ0 डी0 ओ0 पी0 योजना में शामिल होने के बाद इस ग्राम का माटी शिल्प लोकल से ग्लोबल की सफल यात्रा पर है। इस शिल्प को जी आई टैग (जियलाजिकल टैग) भी हासिल है। टेराकोटा के ये उत्पाद बहुत सी ई– कामर्स कम्पनियों के आनलाइन प्लेटफार्म पर बिक्री के लिए उपलब्ध है। ग्रामीण लोग कहते हैं कि अब यह शिल्प गुलरिहा, पादरी वाला भगतपुरवा आदि गाँव तक फैल गया है। यहाँ के प्रजापति समुदाय के बच्चे दून स्कूल उत्तराखण्ड में माटीकला के शिक्षक हैं।

सन्दर्भ

हर्षकोविट्ज, एम0 जे0 :1955, कल्चरल एन्थ्रोपॉलजी, एल्फ्रेड ए नोक द्वारा प्रकाशित

बोआस, फ्रांज़ 1968, रेस, लैग्वेज ,.ड कल्चर, लोक्सियन मिसौरी, यू स ए प्रकाशन

मैलिनोस्की, एम जे, 1922, अर्गीनाट्स ऑफ द वेस्टर्न पैसिफिक रकलेज एण्ड केगन पाल लिमिटेड

क्रोबर, अल्फ्रेड 1952, द नेचर ऑफ कल्चर यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो

गुडनाऊ, डब्ल्य0 एच 1957, कल्चरल एंथ्रोपालजी एण्ड लिग्विस्टिक्स, बाब्स मेरिल रिप्रिंट सीरिज

एम्बर, आर सी मैल्विन एम्बर, पी एन पैरेग्राइन 2004, मानवविज्ञान, पीयरसन एजुकेशन्स इन्क, (दसवाँ संस्करण)

एन्थ्रोपालजी 2016, गवर्नमेन्ट ऑफ केरल (एस सी ई आर टी)

रसल आर वी और हीरालाल 1916, द ट्राइब्स एण्ड कास्ट ऑफ द सेंट्रल प्राविन्सेज ऑफ इंडिया, वाल्यूम टू, मैकमिलियम एण्ड कम्पनी लिमिटेड

चट्टोपाध्याय , कमला देवी, 1980, इण्डियाज़ क्राफ्ट ट्रेडीशन पब्लिकेशन्स डिविजन, नई दिल्ली।

काव्या पाल

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

मलिन बस्ती में महिलाओं की स्थितिः लखनऊ जिले के बालू अड्डा मलिन बस्ती का एक अनुभवजन्य अध्ययन

सार संक्षेप

वर्तमान परिदृश्य में समाजविज्ञानी, मानवविज्ञानी, नीति निर्माता और समाज का एक प्रबुद्ध वर्ग मुख्य रूप से समाज के अति पिछड़े, असुरक्षित व अतिसंवेदनशील समूह के बारे में चिंतित हैं और उनकी पीड़ा, उनकी जरूरतों और उनकी चिंताओं को नीति निर्माताओं के सामने उजागर करने का प्रयास करते रहे हैं, ताकि सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील और स्थानीय घटक स्पष्ट रूप से उनके रोकथाम, रणनीतियों को लागू करने में सहायता प्रदान की जा सके। इस प्रस्तुत अनुभवजन्य अध्ययन का उद्देश्य बालू अड्डा मलिन बस्ती, लखनऊ की महिलाओं की सामाजिक समस्याओं–शैक्षणिक स्थिति, व्यावसायिक स्थिति, स्वास्थ्य समस्याओं तथा उनके विवाह की आयु और उनकी सहमति के बारे में जानना है। इस अध्ययन में गहन मानवशास्त्रीय क्षेत्रकार्य के माध्यम से मलिन बस्ती, लखनऊ की महिलाओं को शामिल किया गया। इसमें महिलाओं के 50 घरों का नमूना चयन यादृच्छिक प्रतिचयन के आधार पर किया गया। साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन, समूह परिचर्चा, एवं वैयक्तिक अध्ययन आदि के साथ–साथ दृश्य–श्रव्य माध्यमों की सहायता से आकड़ो का संकलन किया गया। इस शोध में गुणात्मक और गणनात्मक दोनों प्रकार की शोध प्रविधि का उपयोग किया गया है और फिर प्रस्तुत अध्ययन में आकड़ो के विश्लेषण के लिए माइक्रोसॉफ्ट एक्सेल का उपयोग किया गया और प्रतिवेदन लिखने का काम पूर्ण किया गया। परिवारों के लिए निर्णय लेने के मामले में, यह पाया गया कि केवल 30 % महिलाओं को निर्णय लेने का समान अधिकार था। शैक्षणिक स्थिति भी बहुत कम थी यानी उस बस्ती में 83 % महिलाएँ निरक्षर थीं। स्वास्थ्य की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं थी। 13 % महिलाएं एनीमिया से पीड़ित थीं। बालू अड्डा मलिन बस्ती, लखनऊ की महिलाओं का अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भोजन की कमी, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी और गरीबी मुख्य कारक है जिसके कारण उनकी सामाजिक–आर्थिक और स्वास्थ्य की स्थिति कमजोर है, झुग्गी–झोपड़ियों में रहने वाली ये महिलाएं इन सबसे अधिक प्रभावित हैं। महिलाओं के लिए, सांस्कृतिक स्थिति और अपर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएं यौन और सामाजिक असमानता के नुकसान को जोड़ती हैं, जो न केवल संक्रमण के लिए उनकी भेद्यता को बढ़ाती हैं बल्कि उपचार के लिए उनके संसाधनों को भी सीमित करती हैं।

सूचक शब्द : महिलाओ की स्थिति, महिला स्वास्थ्य, गरीबी, आय, स्वास्थ्य और स्वच्छता।

(शोध छात्रा), मानवविज्ञान विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश, भारत
ईमेलः kavyapal786@gmail.com

परिचय–

भारत विश्व के सबसे विशालतम देशों में से एक है और अपनी विशालता में अनेकों विविधता ग्रहण किये हुए है। एक देश के भीतर इतनी सारी अलग–अलग विविधताएँ अपने आप में अदभुत हैं। जहां तक भारत जैसे विकासशील देश का प्रश्न है, मलिन बस्तियों की स्थिति की समस्या यहां अत्यधिक गंभीर है। लोगों की बुरी आर्थिक स्थिति बढ़ती जनसंख्या, उन्नत तकनीकी और धीमी गति से होने वाले औद्योगिकरण का ही परिणाम है। भारत में मलिन बस्ती की शुरुआत का उदय कब हुआ, इसका निश्चित समय नहीं बताया जा सकता है। लेकिन जैसे–जैसे समय व्यतीत हो रहा है, नई–नई मलिन बस्तियों का विस्तार हो रहा है। इस प्रकार मलिन बस्तियाँ सभी बड़े नगरों में विकसित हुई हैं। नगरीकरण और औद्योगिकरण ने जहां व्यक्तियों को विज्ञान, तकनीकी ज्ञान, शिक्षा और एक अच्छा वैज्ञानिक समझ दिया है वहीं करोड़ों लोगों को नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया है। इस नारकीय जीवन को रहस्यों में देखा जा सकता है।

2011 की जनगणना के आधार पर सीमा और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय द्वारा जारी एक रिपोर्ट के अनुसार देश में छह करोड़ से अधिक लोग मलिन बस्तियों में रहते हैं, जो शहरी भारत का 17% और भारत की कुल जनसंख्या का 5.4% है। इंग्लैंड या इटली की कुल जनसंख्या जितने लोग भारत में मलिन बस्तियों में रहने को मजबूर हैं। इनमें से 57 प्रतिशत मलिन बस्तियां तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र में हैं।

एक अनुमान के अनुसार 2017 तक देश की कुल मलिन बस्तियों की आबादी लगभग 10.4 करोड़ होगी। बुनियादी जरूरतों के लिए तरसने वाले इन मलिन बस्तियों में लोगों के रहन–सहन का स्तर, स्वास्थ्य, शिक्षा, मृत्यु दर, मानसिक तनाव आदि स्थिति विकराल और भयावह है। मलिन बस्तियों जैसे जटिल समाज में महिलाओं की स्थिति एक समान नहीं है और विशेष रूप से मलिन क्षेत्रों में जहां लोग सभी विशेषाधिकारों से वंचित हैं, यहां महिलाओं को अपने समाज में अपनी स्थिति से संबंधित प्रमुख समस्या का सामना करना पड़ता है। उनके साथ गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता है जो सिर्फ सेवा करने के लिए पैदा हुए हैं। मलिन बस्तियों में, कन्या भ्रूण हत्या, निम्न साक्षरता स्तर की महिलाएँ, और निम्न पोषण स्तर बहुत आम हैं (बनर्जी, 2012)। मलिन बस्तियों में, महिलाओं को कार्यबल का सामना करना पड़ता है, और पुरुषों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है। खराब आर्थिक स्थिति के कारण, मलिन बस्तियों में परिवार बच्चों को बाल श्रम के लिए धकेलते हैं। बचपन और किशोरावस्था में बेटियों की कम उम्र में उपेक्षा की जाती है और उन्हें घर के कामों की जिम्मेदारी दे दी जाती है, और अगर वह सबसे बड़ी है तो उसे अपने बच्चों की देखभाल करनी पड़ती है (बसु, ए. 1992)। किसी देश का समग्र विकास उसके लोगों, पुरुषों और महिलाओं दोनों के अधिकतम उपयोग पर निर्भर करता है। पिछले दो सौ वर्षों में आर्थिक और राजनीतिक रूप से महिलाओं के अधिकारों का पर्याप्त, ऐतिहासिक रूप से अभूतपूर्व विस्तार हुआ है। समय की प्रगति के साथ भारत में महिलाओं की कुल आबादी का लगभग आधा हिस्सा शामिल है। इस तथ्य को अब स्वीकार कर लिया गया है कि महिलाओं के विकास को सुनिश्चित किए बिना राष्ट्रीय विकास हासिल नहीं किया जा सकता है।

उद्देश्य–

प्रस्तुत अनुभवजन्य अध्ययन का उद्देश्य बालू अड्डा मलिन बस्ती, लखनऊ की महिलाओं की सामाजिक समस्याओं, शैक्षणिक स्थिति, व्यावसायिक स्थिति, स्वास्थ्य समस्याओं तथा उनके विवाह की आयु और उनकी सहमति के बारे में जानना है।

अध्ययन का क्षेत्र –

उत्तर प्रदेश की राजधानी के रूप में लखनऊ को नवाबों के शहर के नाम से जाना जाता है। इसे पूर्व का सुनहरा शहर, शिराज–ए–हिंद और भारत का कांस्टेंटिनोपल भी कहा जाता है। यह हमेशा एक बहु–सांस्कृतिक शहर रहा है। लखनऊ जिले की राज्य में दूसरी सबसे अधिक शहरी आबादी (66% से अधिक) है। इसके साथ ही लखनऊ शहर राज्य के साठ लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों में से एक है। 2011 की जनगणना के अनुसार, लखनऊ जिले की शहरी आबादी 3037718 है जो राज्य की कुल शहरी आबादी का 6.8 प्रतिशत से अधिक है। लखनऊ की लगभग 66% आबादी शहरी है। शहरी लिंग अनुपात प्रति 1000 पुरुषों पर 910 महिलाएं हैं। लखनऊ शहर में औसत साक्षरता दर 84.1 प्रतिशत, पुरुषों के लिए 87.3% और महिलाओं के लिए 80.5% है ।

बालू अड्डा मलिन बस्ती बटलर रोड पर बहुखंडी मन्त्री आवास लखनऊ के सामने स्थित है, जो कि वार्ड नंबर 33 में, राजा राम मोहन रॉय मार्ग, डाली बाग, लखनऊ में है। इस सम्पूर्ण बस्ती में लगभग 100 घर शामिल हैं। इन घरों में से कुछ खाली थे क्योंकि उनके निवासी कानूनी प्रलेखन की प्रक्रिया के लिए असम में वापस चले गए हैं। राष्ट्रीय नागरिकता पंजीकरण के माध्यम से कानूनी भारतीय नागरिकता प्राप्त करने की प्रक्रिया असम में चल रही है। इस प्रक्रिया ने उत्तर–पूर्वी सीमा से भारत में प्रवेश करने वाले अवैध आप्रवासियों की वर्तमान समस्या के साथ हमें एक संदेह में डाल दिया है और आगे उनकी पृष्ठभूमि के बारे में अधिक जानने के लिए हमारी जिज्ञासा बढ़ा दी है। उनके प्रवास के कारण के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि शक्तिशाली ब्रह्मपूत्र नदी में बाढ़ आने के कारण उनको संपत्ति और जीवन दोनों का भारी नुकसान हुआ। चूंकि उनकी अर्थव्यवस्था एक कृषि अर्थव्यवस्था थी, इसलिए इसने उनकी वित्तीय स्थिरता को भी प्रभावित किया। वे सभी कारण जो उन्होंने हमें दिए हैं, वे वास्तव में इस तथ्य के लिए सही हैं, लेकिन विभिन्न चीजें हैं जो लोगों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, उनकी नृवंशविज्ञान प्रोफाइल में प्रतिबिंबित कर रही हैं। किसी व्यक्ति की भाषा उस व्यक्ति के बारे में बहुत कुछ बता सकती है जो इसे बोलता है। यह संस्कृति का आधार बनाता है। इस प्रकार भाषाओं का अध्ययन मानवविज्ञानी द्वारा भौतिक नृविज्ञान, पुरातात्विक नृविज्ञान और सामाजिक–सांस्कृतिक नृविज्ञान के साथ चार मुख्य शाखाओं में से एक के रूप में माना जाता है। भाषा मानव के बीच संचार और सांस्कृतिक संचरण का प्रमुख साधन है। सम्पूर्ण मलिन बस्ती में बारपेटिया बोली (देशीः बोरपिटा) सामान्य रूप से बोली जाती है। यह बोली असम के वर्तमान बारपेटा जिला कामुपी की एक आधुनिक क्षेत्रीय उप बोली है। जब कोई व्यक्ति या एक समूह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलायन करता है तो उसकी संस्कृति और आदतें उसके साथ भी चलती हैं और यही वह है जो उसे उन लोगों से अलग बनाती है जो वह पलायन कर चुके हैं। बालू अड्डा मलिन बस्ती में रहने वाले अधिकतर परिवार मुस्लिम थे, इसलिए वे मुहर्रम,

ईद–उल–फितर और शब–ए–बरात आदि प्रमुख त्यौहार मनाते हैं। यहाँ पुरुष आमतौर पर विभिन्न रंगों की लुंगी और लंबी शर्ट पहनते हैं। महिलाएँ आमतौर पर नीले या हरे रंग की साड़ी पहनती हैं। युवा लड़कियां आमतौर पर घगरी (स्थानीय रूप से कहा जाता है) और ब्लाउज पहनती हैं। कर्ण फूल, नाक फूल, माला, तरहरार, गोलखरा, पाटामल, बैटफूल और सीतापति इस क्षेत्र के महिलाओं के कुछ पारंपरिक गहने हैं। इन लोगों के बीच पारंपरिक बारपेटियन ड्रेसिंग पैटर्न और गहने नहीं देखे गए।

शोध प्रविधि–

वर्तमान अध्ययन उत्तर प्रदेश के लखनऊ शहर के मलिन बस्ती बालू अड्डा में रहने वाले महिलाओं में गहन मानवशास्त्रीय क्षेत्रकार्य के माध्यम से किया गया। यह अध्ययन व्यक्तिगत रूप से उन महिलाओं के साथ रहकर किया गया। इसमें महिलाओं के 50 घरों का प्रतिदर्श चयन यादृच्छिक प्रतिचयन के आधार पर किया गया। इनके चयन का आधार उद्देश्यात्मक प्रविधि रहा है। तथ्यों के अवलोकन के लिए साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन, समूह परिचर्चा के साथ–साथ दृश्य–श्रव्य आदि प्रविधि का प्रयोग आकड़ो के संकलन में किया गया। इस शोध में गुणात्मक और गणनात्मक दोनों प्रकार की शोध प्रविधि का उपयोग किया गया है और फिर प्रस्तुत अध्ययन में आकड़ो के विश्लेषण के लिए माइक्रोसॉफ्ट एक्सेल का उपयोग किया गया और प्रतिवेदन लेखन का काम पूर्ण किया गया।

परिणामः

सामाजिक–सांस्कृतिक विशेषताएं –

(क) शारीरिक विशेषताएं– प्रस्तुत अध्ययन में महिलाओं की ऊंचाई मध्यम है जो 5' से 5' 6 इंच तक होती है। उनके शरीर के त्वचा का रंग हल्का भूरा से गहरे भूरे रंग का है। बालों का रंग भिन्न दिखाई देता है जो गहरे भूरे रंग से मध्यम काले रंग के बीच है।

(ख) लिंगानुपात– लिंगानुपात किसी आबादी में महिलाओं के लिए पुरुषों का अनुपात है। बालू अड्डा मलिन बस्ती में पुरुषों की संख्या 124 है और महिलाओं की संख्या 116 है। चूंकि बालू अड्डा मलिन बस्ती की आबादी में एक आदर्श लिंग अनुपात नहीं देखा जाता है, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बस्ती के अधिवास के बीच लिंगानुपात में असमानता व्याप्त है।

(ग) भाषा– बालू अड्डा मलिन बस्ती की आबादी में अधिकांश बंगला, असमी और हिंदी जैसी विविध भाषाओं को बोलते हैं। चूंकि वे प्रवासी हैं, इसलिए उनके जीवनके लिए हिंदी सीखना अनिवार्य था। इसलिए 50 परिवारों के सभी सदस्य द्विभाषी हैं।

(घ) भोजन और पेय– वे गैर–शाकाहारी हैं और वे मांस, मछली और अंडे का सेवन करते हैं। मुख्यतः भोजन में चावल, गेहूं शामिल करते हैं और इसके साथ ही चना और तुअर जैसे दालों का सेवन करते हैं। वे सभी प्रकार की हरी सब्जियों का भी उपभोग करते हैं। फल उनके लिए एक लक्जरी आइटम है। शराब का भी सेवन किया जाता है। समुदाय की

महिलाओं सहित 100 व्यक्तियों को आम तौर पर तंबाकू खाने की आदत है। 41% लोगों को केवल तम्बाकू चबाने की आदत है, जबकि 09.1% को धूम्रपान करने के साथ–साथ तम्बाकू को चबाने की आदत है।

(ड़) धर्म– बालू अड्डा मलिन बस्ती के 50 घरों की आबादी में 6% हिंदू हैं और शेष बहुमत 94% मुस्लिम है।

(च) त्यौहार– मलिन बस्ती की 94% आबादी मुसलमान है और ये लोग मुहर्रम, ईद–उल–फितर और शब–ए–बरात मनाते हैं। जबकि शेष 6% हिंदू हैं और वे दुर्गा पूजा, होली, दिवाली, आदि जैसे त्यौहार का जश्न मनाते हैं।

(छ) परिवार–

क्र. संख्या	परिवार का प्रकार	परिवारों की संख्या
1.	एकल परिवार	48
2.	विस्तृत परिवार	2
3.	कुल	50

क्र. संख्या	परिवार का प्रकार			
	एकल परिवार		विस्तृत परिवार	
	हिन्दू	मुस्लिम	हिन्दू	मुस्लिम
1.	2	46	1	1

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि बस्ती में कुल 50 परिवार हैं। जिसमें से 48 संख्या में परिवार 96.66% के प्रतिशत के साथ एकल परिवार हैं और बाकी 2 विस्तृत परिवार हैं यानी कुल परिवारों की कुल संख्या का 3.34% हैं।

(ज) विवाह– समुदाय में अंतर्विवाही और बहिर्विवाह दोनों विवाह होते हैं। समुदाय में लड़कियों

पाई चार्ट–1 18वर्ष से कम और 18 वर्ष से अधिक आयु में विवाह करने वाली लड़कियों का प्रतिशत।

की शादी की उम्र 15–16 वर्ष है और लड़कों की 18–20 वर्ष है । वर्तमान में बालू अड्डा मलिन बस्ती में रहने वाली 70% महिलाओं का बाल विवाह किया गया था। विवाहित महिलाओं की कुल संख्या में यह देखा गया है कि 30% महिलाओं की शादी कानूनी उम्र के बाद हुई थी। तीव्र गरीबी, असुरक्षित रहने की व्यवस्था, कमजोर सामाजिक नेटवर्क और नागरिक समाज की अनुपस्थिति सबसे आम कारण थे।

(झ) शैक्षणिक स्थिति–

क्र. संख्या	शैक्षणिक स्थिति	वयस्क महिलाओ का प्रतिशत
1.	निरक्षर	60
2.	साक्षर	30
3.	प्राथमिक	06
4.	माध्यमिक	03
5.	स्नातक	01

यह देखा गया है कि बस्ती में 60% वयस्क महिलाएं अनपढ़ थीं और केवल 30% महिलाएं साक्षर थीं। 6% महिलाओं को प्राथमिक शिक्षा मिली है। 3% महिलाओं को माध्यमिक शिक्षा मिली है।

(ण) व्यावसायिक स्थिति– अध्ययन के दौरान यह देखा गया कि कुल आबादी में से 70 लोग विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में काम कर रहे हैं। 11 महिलाएं पैकिंग के कार्य में लगी हुई हैं जो कि बस्ती के अधिकांश लोगों का मुख्य व्यवसाय है। नियोजित 44% लोग केवल इस व्यवसाय में लगे हुए हैं।

(त) घरेलू आय– आय का विश्लेषण बहुत महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों के लिए क्योंकि उनकी आय की बड़ी मात्रा बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने पर खर्च की जाती है। बच्चों की शिक्षा दूसरी प्राथमिकता बन जाती है। घर के आय स्तर की गणना परिवार के सभी सदस्यों की कुल आय को जोड़ करके की जाती है, लगभग 40 प्रतिशत परिवार थे जिसमें परिवार का एक सदस्य काम कर रहा था, लगभग 50 प्रतिशत में 2 सदस्य काम कर रहे थे और लगभग 10 प्रतिशत परिवार में 2 से अधिक परिवार के सदस्य काम कर रहे थे। घरेलू आय और व्यय का विवरण चित्र में दिया गया है। निम्नलिखित ग्राफ से यह स्पष्ट है कि ₹ 5000 या उससे कम की मासिक आय वाले 10 घर हैं। 5000–8000 रुपये के बीच आय वाला 20 घर है, रु. 8000–9000 के परिवार के 10 घर हैं और केवल 5 घर थे जिनकी मासिक आय ₹ 10000 से ऊपर थी। इन घरों के लिए औसत घरेलू आय प्रति माह लगभग 8500 रुपये है। लेकिन अगर हम 6 से 7 सदस्यों के परिवार के आकार के साथ आवश्यक वस्तुओं की बढ़ती कीमतों के हिसाब से देखें, तो इन घरों के लिए शिक्षा प्रदान करना मुश्किल हो जाता है। इसलिए, उनमें से अधिकांश को अपने बच्चों की शिक्षा के लिए सरकारी स्कूलों पर निर्भर रहना पड़ता है। जहां तक पिता के व्यवसाय का संबंध है, लगभग 80% कुशल और अकुशल मजदूरों के रूप में लगे हुए हैं, जो कि अनियमित नौकरियां और कम आय है।

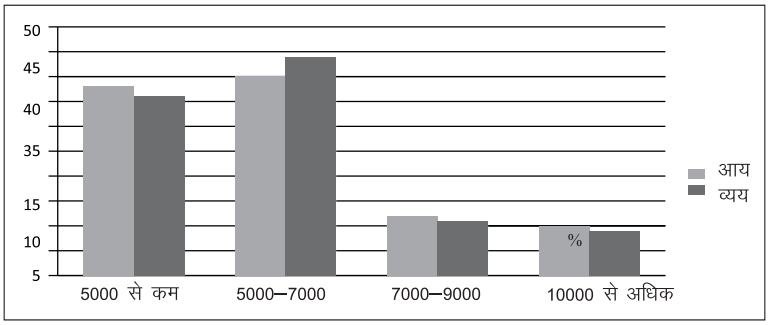

ग्राफ 1 – नमूना परिवार की आय और व्यय

(थ) बुनियादी सुविधाएं– वर्तमान में बालू अड्डा मलिन बस्ती में रहने वाली महिलाओं के लिए बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं– जैसे कि स्वच्छ पेयजल, उचित शौचालय, और अच्छी तरह से नियोजित जल निकासी प्रणाली। बिजली और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच अभी तक दूर है। अध्ययन क्षेत्र में झुग्गी के निवासियों को पीने के पानी का प्रमुख स्रोत सबमर्सिबल और एक हैंड पंप है। पीने का पानी झुग्गी निवासियों की प्रमुख समस्या रही है। बस्ती में विद्युत भी नहीं था, लेकिन लोगों ने इससे निपटने के लिए अपने वैकल्पिक साधन बना लिए है। सभी घरों में अपने मिनी–सोलर पैनल हैं, जिन्हें वे दिन के दौरान रिचार्ज करते हैं और रात में अपने घरों को रोशन करने के लिए उपयोग करते हैं।

(द) पुरुषों और महिलाओं के बीच में निर्णय लेने की स्थिति– परंपरागत रूप से महिलाएं सभी स्तरों पर निर्णय लेने में कम शामिल हैं। 32% परिवार ऐसे थे जहां घर के फैसला लेने में महिलाओं का बराबर का अधिकार है। 60% घर ऐसे थे वे जहां केवल पुरुषों द्वारा फैसला लिया जाता है । 8% घर मे विधवा महिला के परिवार थे जहां पर महिलाओं के द्वारा सभी फैसला होता है।

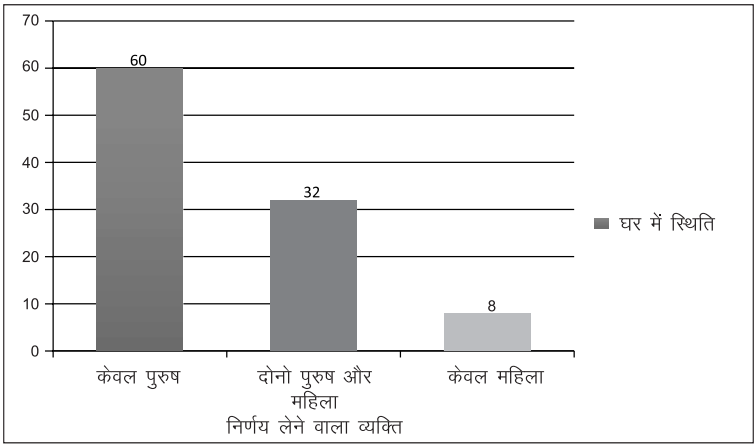

ग्राफ 2– परिवार के संबंध में सही निर्णय लेना

निष्कर्ष

समग्र विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकला है कि बालू अड्डा मलिन बस्ती की महिलाएं पूरी तरह से अपने पति पर निर्भर हैं चाहे वह उनके साथ बाहर जा रहीं हों या कोई पारिवारिक निर्णय ले रहीं हों। यहां की लड़कियों को जल्दी शादी और जल्दी मां बनने की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। ज्यादातर लड़कियों की शादी 10 से 18 साल की उम्र में कर दी जाती है, वे इतनी कम उम्र में ही मां बन जाती हैं और उन पर ढेर सारी जिम्मेदारियां आ जाती हैं। इसलिए, वे अपने जीवन के हर चरण में अपने अधिकारों से वंचित हैं। पोषण की कमी के कारण मलिन बस्ती की महिलाएं अपनी पूर्ण विकास क्षमता तक कभी नहीं पहुंच पाती हैं। इस क्षेत्र में रहने वाली कुछ महिलाएं बहुत ही छोटी और अविश्वसनीय रूप से कमजोर हैं। कुपोषण का संबंध गरीबी, जागरूकता की कमी और साक्षरता से है। अधिकांश निवासी कूड़ा बीनने वाले थे जिनकी एक दिन की आमदनी में केवल एक दिन का ही भोजन का खर्चा चल सकता था परिवार के लिए दिन में तीन बार पर्याप्त भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता था, क्यूंकि उनकी आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, व्यावसायिक, स्वास्थ्य स्थिति की अपनी सीमाएं उन्हें ऐसा करने को मजबूर करती है और उनके अपने समाज में यही स्थिति सभी परिवारों की होती है जो उनके अपने सामाजिक परिवेश के अनुरूप, सामजिक मूल्यों में बदलाव को प्रभावित करती रहती है और सामाजिक परिवर्तन का यह चक्र मलिन बस्तियों में रहने वाले महिलाओं को अपने दायरे से नहीं निकलने देती है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यहाँ की महिलाओं की स्थिति इतनी सुखद नहीं है।

संदर्भ

Basu, A.1992. "Culture the status of women and Demographic behavior", Oxford University Press, Oxford. https://trove.nla.gov.au/version/25223671

Banerjee, 2012. "Here's How the Status of Women has Changed in India" https://www.youthkiawaaz.com/2012/03/heres-how-the-status-of-women-has-changed-in- India/

Bhattacharya, N.N. n.d. "Morphology of the Towns of Assam with Special Reference to the City of Guwahati"

Croll, E. 2000. "Endangered daughter: Discrimination and Development in Asia" , Routeledge, London.

http://www.amazon.com/endangered-daughter-discrimination-in-asia/dp/04152

Dr. Mathew, R. 2013. &quote; Empowerment of Women Through Ages An Analysis & quot; Vol.-1, pp-10-45. httpps.//innovareaacademics.in/journals/index.php/ijis/article/view/10

Ghosh. 2008. "Never Done and Poorly Paid Women's Work in Globalizing India", women unlimited. New Delhi, pp.20-132

http://www.amaxon.in/never-done-and-poorly-paid-womens-work-globalizing-india/dp/8188965448

Gupta, K ; Arnold & Lhungdim, h . 2009. “Health and Living Conditions in Eight Indian cities. National Family Health Survey (NFHS) http://dhsprogram.com/pubs/pdf/OD58/OD58.pdf

Kiran. 2015. “Women in India: Role and Status of Women India” https://www.importantindia.com/20816/women-in-india-role-and-status-of-women-in-india

Lahkar, B.1990.”Slums of Guwahati City-A-Geographical Study, unpublished dissertation M.Phil. shodhgang.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/40665/11/11-chapter%203pdf

Chaitanya.n.d. “Crime Against Women Reported in Every Two Minutes in India”

https://scroll.in/article/753496/crime-against-women-reported-every-two -minutes-in-india/

Murthy, N. Linga., et.al.2007. “Towards Gender Equality: India's Experience” https://www.download-geek.com/sing-up.html?aff.id-8857& aff.subid=110& dp- pctx=2630543

Nair, J.1998. “Ladies and Law in Colonial India: A Social History”, Delhi Kali For Women journals.sagepub.com/doi/abs/10.1177/006996697830320012 7? journalcode=cisa

Sen, N.B. n.d. “Progress of Women's Education in Free India”, New Delhi: New Book Society of India, pp.207 shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/54195/15/15_bibiliography.pdf

Srinivasan, S. 2005. “Daughters or Dowries? The Changing Nature of Dowry Practices in South India”, World Development, Vol.33(4), pp. 593-615 https://www.researchgate.net/publication/223126295

Srinivas, M.N.1978. “The Changing Position of Indian Women”, In Srinivas, M.N.(Ed.), Collected essay, New York: Oxford University Press, pp.279-300 https://trove.nla.gov.au/work/25874871?q&versionId=311822

कुमार आदित्य[1], डॉ शैलेन्द्र कुमार मिश्र[2]

मानव
अंक : 1–2, जून–दिसम्बर, 2022
ISSN 2347-6591

नियमगिरी के संदर्भ में लोकतांत्रीकरण

नियमगिरी पहाड़ी ओड़िशा राज्य के दक्षिण–पश्चिम क्षेत्र में स्थित कालाहांडी एवं रायगड़ा जिले में अवस्थित है। इसका विस्तार 250 वर्ग किलोमीटर में है। नियमगिरी की पहाड़ियाँ 'विशिष्टतः असुरक्षित जनजातीय समूह' डोंगरिया कंध की एक मात्र रहवास स्थली है। वर्तमान में इनकी अनुमानित आबादी लगभग 10,000 है। वर्ष 2013 में यह समुदाय जन–आंदोलन के वैश्विक विमर्श में चर्चित हो गया। क्योंकि वेदांता (एक खनन कंपनी) के द्वारा इनके रहवास स्थली में बॉक्साइट खनन के प्रयासों को डोंगरिया कंध ने सतत आन्दोलनों के माध्यम से असफल कर दिया था। नियमगिरी आंदोलन दो तरह के तत्वमीमांसा के बीच का संघर्ष है। जिसमें वेदांता कंपनी के लिए नियमगिरी एक बॉक्साइट की खान है जबकि डोंगरिया कंध के लिए यह उनके धर्मदेवता 'नियमराजा' हैं। डोंगरिया कंध, नियमगिरी की पहाड़ियों में पोडू चास (स्थानारंतित कृषि) एवं बागवानी करके अपनी आजीविका चलाते हैं। आज से दो दशक पहले तक ये बाहरी दुनिया के ज्यादा संपर्क में नहीं आये थे। बाहरी दुनिया से संपर्क का एक मात्र माध्यम अनुसूचित जाति जिसे स्थानीय स्तर पर 'डोम्ब' के रूप में पहचाना जाता है। कंधमाल में इन्हें 'पानो' कहा जाता है। कंध आदिवासी, ओड़िशा के 62 अलग–अलग आदिवासी समुदायों में से एक हैं। देसिया कंध, कुटिया कंध एवं डोंगरिया कंध, कंध जनजति के तीन उपवर्ग हैं। जिसमें डोंगरिया एवं कुटिया कंध 'विशिष्टतः असुरक्षित जनजातीय समूह' हैं। डोंगरिया का अर्थ, डोंगर यानी पहाड़ पर रहने वाले लोगों से है।

वर्ष 2004 में ओड़िशा माइनिंग कंपनी एवं स्टरलाइट इंडस्ट्रीज लिमिटेड (वेदांता) के बीच नियमगिरी की पहाड़ियों में बॉक्साइट खनन के लिए करार के बाद उपजे जन–आंदोलन से यह समुदाय लोगों के विमर्श में आ गया। खनन विरोधी आंदोलन के पीछे का मूल तर्क परिवेश की सुरक्षा, डोंगरिया की परिक्षेत्र से जुड़ी धार्मिक भावना एवं वनाधिकार कानून 2006, के तत्वाधान में आदिवासियों को मिलने वाले संवैधानिक अधिकार थे। इसके आधार पर डोंगरिया कंध, कुटिया कंध एवं अन्य लोग आंदोलित हुए, जिन्हें जल–जंगल–जमीन के मुद्दों पर संघर्ष करने वाले क्षेत्रीय, राष्ट्रिय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं का सहयोग मिला। इस आंदोलन का मुख्य कालखंड 2004 से 2013 तक रहा है। 2013 में सुप्रीम कोर्ट के दिशा निर्देश में संपन्न कराये गए ग्रामसभा के आधार पर डोंगरिया कंध ने नियमगिरी से वेदांता के प्रस्तावित खनन परियोजना को एक सिरे से नकार दिया था। स्थानीय आंदोलनकारियों का ऐसा मानना है कि जबतक नियमगिरी की तलहटी में अवस्थित लान्जिगढ़ से वेदांता कंपनी के द्वारा स्थापित अल्युमिनियम रिफायनरी को बंद नहीं किया जायेगा तबतक नियमगिरी की पहाड़ी पर खतरा बरकरार रहेगा। इसलिए स्थानीय स्तर पर 2013 के बाद आजतक (2022) आंदोलन जारी है। 2013 में वेदांता के विरुद्ध मिली जीत के बाद आंदोलन का स्वरुप रूपांतरित हो गया है।

[1]शोध छात्र मानव विज्ञान विभाग, इलाहबाद विश्वविद्यालय,
[2]सहायक आचार्य, मानवविज्ञान विभाग, इलाहबाद विश्वविद्यालय

नियमगिरी आंदोलन की विशिष्टता आंदोलन के लोकतांत्रिक स्वरुप में सातत्यता के रूप में है। लोकतांत्रीकरण राज्य एवं जन के बीच सतत रूप से चलने वाला संवाद है। राज्य और समाज, समय–काल और परिस्थिति से प्रभावित होता है। रेडक्लिफ ब्राउन (1940) ने कहा था कि राज्य व्यवहारगत में अस्तित्वमान नहीं है बल्कि सामाजिक संरचना, राज्य की अपेक्षा व्यवहारगत में ज्यादा स्पष्ट है। वस्तुतः मनावविज्ञान का विस्तृत कालखंड राज्यविहीन समाज के अध्ययन में बीता है। एवं इसकी सैद्धांतिक पृष्ठभूमि का निर्माण भी ऐसे ही समाजों के अध्ययन के पश्चात हुआ है। अतः वैचारिक बाध्यता से मुक्त होकर राज्यविहीन या राज्य के न्यूनतम प्रभाव वाले क्षेत्रों में राज्य के तीव्र प्रभावों का अध्ययन मानवविज्ञान की एक नई विधा है। मानववैज्ञानिकों के द्वारा राज्यविहीन समाज का अध्ययन करना पिछड़ापन नहीं है बल्कि ऐसे समाजों के मूल्य को राज्य के सामने स्थापित करना एवं उसे सम्मान दिलाने का परोक्ष या अपरोक्ष प्रयास है।

वस्तुतः राज्य बहुत ताकतवर इकाई होती है, इसका प्रभाव सीधा जन पर पड़ता है। सत्ता परिवर्तन (Regime change) से राज्य की भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक उत्पादन के तरीके बदल सकते हैं। जैसे राज्य यह नियंत्रित कर सकती है कि आदमी कितने बच्चे पैदा करें। एक अच्छा राज्य बदलाव लाने से पहले समाज को प्रभावित करने वाले तत्व जैसे न्यायिक व्यवस्था, चुनाव प्रक्रिया, मीडिया, प्रशासन आदि का लोकतांत्रीकरण करता है। भारतीय समाज में बाल–विवाह, सती–प्रथा, छुआ–छूत जैसी सामाजिक कुव्यवस्था विद्यमान थी। लेकिन स्तरीकृत लोकतांत्रीकरण के प्रभाव ने समाज के व्यवहारिक इकाई में बदलाव लाने का कार्य किया एवं ऐसी कुप्रथाओं पर नियंत्रण पाया जा सका है।

नियमगिरी भी एक राज्यविहीन जन–संस्कृति का वाहक है। डोंगरिया कंध के लिये नियमगिरी की सीमा ही उसका राज्य है और इस सीमा के बीच कई छोटे–छोटे प्रशासनिक द्वीप बने हुए हैं। यह प्रशासनिक द्वीप कुडा–मुथा व्यवस्था से संचालित होते हैं। प्रसन्न कुमार नायक ने इस कुडा–मुथा व्यवस्था को गोत्र–संप्रभुता के रूप में पहचाना है। डोंगरिया कंध में गोत्र–संप्रभुता एक सामाजिक–राजनैतिक इकाई के रूप में कार्य करती है। नायक (1989) लिखते हैं कि डोंगरिया कंध के स्तरीकृत कुडा–मुथा व्यवस्था में सबसे बड़ा बदलाव राज्य के हस्तक्षेप से आया है। राज्य के हस्तक्षेप से यहाँ तात्पर्य 'डोंगरिया कंध डवलपमेंट एजेंसी' से है, जो कि रायगड़ा (दक्षिण ओड़िशा का एक जिला) में अवस्थित नियमगिरी परिक्षेत्र में डोंगरिया बहुल गाँवों में 1964 से सक्रिय है। नायक लिखते हैं कि डोंगरिया कंध समाज में सरकारी दायित्व का निर्वहन करने वाले आमतौर पर समाज के धार्मिक प्रतिनधि होते हैं। डोंगरिया कंध अपने क्षेत्रीय अस्मिता के लिए इतने जागरूक थे कि उनके लिये नियमराजा से बड़ा आजादी पूर्व और आजादी के बाद तक कोई राजा नहीं हुआ। वह बेशक तत्कालीन जोयपुर स्टेट को लगान देते थे लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वह उनको राजा मान लें। उनके मात्र एक ही राजा हैं "नियमराजा" बाकी सब पोरोजा (प्रजा) हैं।

वस्तुतः यह कोई अतिश्योक्ति नहीं है ना ही इस ज्ञान का उत्पादन नियमगिरी आंदोलन के लिये "आवश्यक ज्ञान" के उत्पादन को लक्षित करके लिखा गया था। इसका लेखन नियमगिरी आंदोलन के अस्तित्व से डेढ़ दशक पूर्व (1989) में किया गया है। डोंगरिया कंध के लिए उनका परिक्षेत्र एवं नियमराजा सदियों से महत्वपूर्ण रहा है। इस संप्रभुता की एक झलक घुमसुर विद्रोह

के समय मिलता है जब घुमसुर के राजा, अंग्रेजो के खिलाफ युद्ध छेड़ कर कंध समाज के पास शरण लेने चले गए। जहाँ चकरा बिसोई और डोरा बिसोई ने ब्रिटिश सरकार को घुटने पर आने को विवश कर दिया था। इतिहासकार निहार रंजन पटनायक (2019) लिखते हैं कि इस संघर्ष के दौरान पहली बार कंध और ब्रिटिश अधिकारी एक–दूसरे के विषय में परिचित हुए थे। रसल और मेक्फर्सन का संदर्भ लेते हुए पटनायक लिखते हैं कि वर्ष 1835 तक यहाँ पर नरबलि की सांस्कृतिक मान्यता इतना हावी था कि ब्रिटिश सरकार को इसपर नियंत्रण करने के लिये 50 वर्षों का समय लग गया। इनके स्वघोषित राज्य की अवधारणा इतनी प्रबल थी कि ब्रिटिश सरकार को घुमसुर विद्रोह का शमन करने के लिए एक पूरा रेजिमेंट लगाना पड़ गया था। जब वह बलपूर्व नियंत्रण करने में मात खा गए तब इन्होंने वृहद् स्तर पर कंध समाज से सांस्कृतिक संबंध स्थापित किये। जो कि आगे चल कर वर्ष 1845 में मेरिया एजेंसी के रूप में अस्तित्व में आया (पटनायक, 2019)।

वर्तमान संदर्भ में नियमगिरी परिक्षेत्र में बहुत बदलाव आया है। नियमगिरी परिक्षेत्र में सरकार का हस्तक्षेप बढ़ने से उन्हें अपने अधिकारों के विषय में जानकारी मिली है। और लोकतांत्रीकरण की प्रक्रिया का विकास हुआ है। डोंगरिया परिक्षेत्र में नियंत्रित लोकतांत्रीकरण हुए हैं। सफल लोकतांत्रीकरण एक सतत प्रक्रिया है। हम राज्य को किसी संवेदनशील समाज पर सीधे थोप नहीं सकते। ऐसा सिर्फ तानाशाही राज्य में संभव है। लेकिन नव–उदारवाद के प्रवाह ने वेदांता जैसी खनन आधारित कंपनियों को समर्थन देकर, डोंगरिया कंध जैसे समुदाय को उद्वेलित कर दिया है। इसलिए नियमगिरी पर जीवन बसर करने वाले आदिवासी विशेषकर डोंगरिया कंध को लिये उनके रहवास क्षेत्र, धार्मिक मान्यता एवं जीविकोपार्जन के सवालों के लिए राज्य के समक्ष प्रतिवादी प्रस्तुति के साथ आना पड़ा।

इन्होंने व्यवहारिक रूप से पहली बार राज्य, कानून, प्रशासन, मीडिया, गैर–भारतीय लोग, एक्टिविस्ट, मोबिलाइजेशन, संघर्ष और गैर सामाजिक–धार्मिक प्रतिनिधित्व के साथ सीधा संवाद किया।

आज इस आंदोलन के दो दशक बीतने को हैं। इस दरम्यान डोंगरिया समाज लोकतांत्रीकरण के तत्वों के प्रति मुखर हुआ है, जिसने समुदाय को नए स्वरूपों में विकसित किया है। हालाँकि यह अब भी आदिवासी ही हैं लेकिन इनकी चेतना राज्य के संदर्भ में जाग्रत हुई है। हालाँकि वेदांता ने लांजीगढ़ में नई असामनता को जन्म दिया है जिस कारण निर्धन एवं भूमिहीन लोग पैदा हुए हैं। वेदांता से वही लोग लाभ पा रहे हैं जो कि ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से सबल थे। वेदांता परियोजना के आसपास की स्थिति बहुत जटिल है। यहाँ अदृश्य बहिष्करण का उदय हो रहा है एवं लोगों का भीषण अवसाद असहजता से सहज अवस्था में पहुँच गया है। इसलिए मुर्छित चेतना का एक ही सहारा प्रतिवाद है। जिसे आंदोलन के लोकतांत्रीकरण से जिंदा रखा जा सकता है।

"मानव" के लेखकों के लिए दिशा–निर्देश

लेखकों से निवेदन है कि अपनी रचनाएँ प्रकाशन के लिए भेजते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखें :

1. "मानव" में मौलिक रूप से लिखे गए मानवशास्त्रीय / समाजशास्त्रीय / समाज विज्ञान से संबद्ध निबंध (परिप्रेक्ष्य आधारित), शोध आलेख (आनुभविक या क्षेत्रीय अध्ययन पर आधारित), संवाद (प्रतिष्ठित समाजशास्त्रियों / समाज वैज्ञानिकों के साथ साक्षात्कार) इत्यादि को प्रकाशन हेतु आमंत्रित किया जाता है।
2. इनकी शब्द–सीमा 3000–5000 शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिए जिसमें सारणी, ग्राफ इत्यादि सम्मिलित हैं।
3. निबंध व शोध आलेख के साथ 100–150 शब्दों का सार (abstract) व मुख्य शब्द (key words) भी संलग्न होने चाहिए। आलेख का शीर्षक, सार–संक्षेप और मुख्य शब्द अंग्रेजी में भी भेजें।
4. आलेख में सामग्री को इस क्रम में व्यवस्थित करें : आलेख का शीर्षक, लेखकों के नाम, पते और ई–मेल, लेखकों का परिचय, सार–संक्षेप (abstract), परिचर्चा, निष्कर्ष / सारांश और संदर्भ।
5. कृपया अपना आलेख टाइप करके वर्ड और पीडीएफ दोनों ही फॉर्मेट में भेजें। टाइप के लिए कृति देव 010 लिपि (kruti dev 010) का इस्तेमाल करें। फॉन्ट साइज 14 होना चाहिए तथा दो पंक्तियों के बीच डबल स्पेस अन्तराल हो। हस्तलिखित आलेख स्वीकार नहीं किए जाएँगे।
6. लेख में उद्धरण देते समय लेखक एवं वर्ष का ब्रैकेट में उल्लेख करे उदाहरण के लिए, (सबरवाल 1983) तथा पृष्ठ संख्या का उल्लेख करते समय इस तरह लिखे (सबरवाल 1983: 26). सह–लेखकों का उल्लेख करने हेतु (धनाग्रे एवं सबरवाल 2001) लिखे।
7. तालिका बनाते समय वर्ड फाइल में तालिका बनाने की दी गई सुविधा का इस्तेमाल करें या उसे excel में बनाएँ। हर ग्राफ की मूल एक्सेल कॉपी या जिस सॉफ्टवेयर में उसे तैयार किया गया हो उसकी मूल प्रति अवश्य भेजें। सभी तालिका और ग्राफ को एक स्पष्ट संख्या और शीर्षक दें।
8. अगर लेख में चित्रों का प्रयोग किया है और उसे कहीं और से लिया गया हो तो उसका स्रोत अवश्य लिखें। इस सूची में किसी भी संदर्भ का अनुवाद करके न लिखें, अर्थात संदर्भों को उनकी मूल भाषा में ही रहने दें। सन्दर्भ सूची में संदर्भों को हिंदी वर्णमाला के अनुसार सूचीबद्ध करें तथा निम्नलिखित क्रम में प्रस्तुत करे–
   - लेखक / लेखकों के नाम (वर्ष): किताब का नाम, प्रकाशक : स्थान
     रिफकिन, जेरेमी (1995): द एंड ऑफ वर्क, पुतनाम पब्लिशिंग ग्रुपः न्यूयॉर्क
   - किसी संपादित किताब की सूरत में लेखक / लेखकों के नाम (वर्ष): "आलेख का शीर्षक", किताब का नाम (संपादक), प्रकाशकः स्थानय पृष्ठ।

     झा, हेतुकर (1995): "कल्चर, मॉडर्नाइजेशन एंड पीजेंट सोसाइटी : द केस ऑफ बिहार", सोशियोलॉजी इन द रब्रिक ऑफ सोशल साइंस (भट्टाचार्य, आर. एंड घोष, ए. के.), एन्थ्रोपोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडियाः कलकत्ता, 455–464
   - किसी जरनल / पत्रिका में छपे लेख के मामले में लेखक / लेखकों के नाम (वर्ष): "लेख का शीर्षक,"पत्रिका / जरनल का नामः स्थान, वाल्यूम (अंक), पृ.।

     अलातास, एस.एच. (1972) : "द कैप्टिव माइंड इन डेवलपमेंट स्टडीज", इंटरनेशनल सोशल साइंसेस जर्नलः विली, 24(1), पृ. 9–25
   - किसी वेबसाइट का हवाला देने पर "लेख का शीर्षक", वेबसाइट का पता, देखा (तारीख, महीना, वर्ष)

     "व्हाई सम पीपल लव वाचिंग हॉरर मूवीज", HuffPost.
     https://www-huffpost-com/anxiety, देखे (31 अक्टूबर 2019)
9. ध्यान रखें कि आलेख किसी अन्य जगह पहले प्रकाशित नहीं हुआ हो तथा न ही अन्य भाषा में प्रकाशित आलेख का अनुवाद हो। यानी आपका आलेख मौलिक रूप से लिखा गया हो।
10. लेखकों से अपेक्षा है कि वे दूसरे किसी लेखक के विचारों और रचनाओं का सम्मान करते हुए ऐसे हर उद्धरण के लिए समुचित हवाला / संदर्भ देंगे। लेखक किसी भी साहित्यिक चोरी (प्लेगरिज्म) या कॉपीराइट उल्लंघन के लिए पूरी तरह से स्वयं जिम्मेदार होंगे। "मानव" जर्नल के संपादक किसी भी तरह से साहित्यिक चोरी या कॉपीराइट के उल्लंघन के लिए जिम्मेदार नहीं हैं।
11. प्रकाशन के लिए भेजी गयी रचनाओं पर अंतिम निर्णय लेने के पहले संपादक मंडल दो समीक्षकों की राय लेगा, अगर समीक्षक आलेख में सुधार की माँग करें तो लेखक को उन पर गौर करना होगा। संपादन व सुधार का अंतिम अधिकार संपादक के पास सुरक्षित है।
12. प्रकाशन के लिए स्वीकृत रचनाओं का कॉपीराइट लेखक के पास ही रहेगा।
13. लेखकगण अपनी रचनाएँ इस ईमेल editor.manav@gmail.com or vchandra009@gmail.com पर भेज सकते हैं।

ETHNOGRAPHIC & FOLK CULTURE SOCIETY
EXECUTIVE COMMITTEE : 2022

President	**: Sri G. Pattanaik (Lucknow)**
Vice President	**: Prof. T.N. Pandey (Santa Cruz, USA)**
	: Prof. P.K. Misra (Mysore)
	: Prof. B.R.K. Shukla (Lucknow)
	: Prof. A.P. Singh (Lucknow)
General Secretary	**: Prof. Sukant K. Chaudhury (Lucknow)**
Treasurer	**: Prof. J.N. Shukla (Lucknow)**
Joint Secretary	**: Dr. Arun Kumar Singh (Lucknow)**
Assistant Secretaries	**: Dr. Diwakar Upadhyay (Lucknow)**
	: Dr. Alok Chantia (Lucknow)
	: Dr. Santosh Upadhyay (Lucknow)
	: Dr. Anil Kumar (Lucknow)
Members	**: Prof. Nilika Mehrotra (Delhi)**
	: Prof. A.K. Pandey (Varanasi)
	: Prof. P.S. Vivek (Mumbai)
	: Prof. Gayatri Bhattacharya (Kolkata)
	: Prof. Nita Mathur (Delhi)
	: Dr. Rahul Patel (Allahabad)
	: Prof. Manoj Kumar Singh (Delhi)
	: Dr. A.S. Tiwari (Lucknow)
	: Dr. Keya Pandey (Lucknow)
	: Dr. Neetu Singh (Lucknow)
	: Prof. Sanjay Singh (Lucknow)
	: Dr. Sudha Rastogi (Lucknow)
	: Prof. D.R. Sahu (Lucknow)
Immediate Past President	**: Prof. T.N. Madan (Delhi)**
Immediate Past General Secretary	**: Prof. Nadeem Hasnain (Lucknow)**
Editor, The Eastern Anthropologist	**: Prof. P. Venkat Rao (Hyderabad)**
Editor, Indian Journal of Physical Anthropology and Human Genetics	**: Prof. U.P. Singh (Lucknow)**
Editor, Manav	**: Dr. Vinod Chandra (Lucknow)**
Director, D.N. Majumdar Museum	**: Dr. Anjali Chauhan (Lucknow)**
Director, Publication	**: Prof. S.M. Patnaik (Delhi)**
Honorary Librarian	**: Dr. Vibha Agnihotri (Lucknow)**